The Opinion V.13, N. 25 J-J 2024 **ISSN. 2277-9124**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.0(IIFS)

सामाजिक जीवन में तनाव रेचक के रूप में लोकगीतों की भूमिकाः एक विवेचना

डॉ. सन्तराम पाल,
सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग,
आचार्य नरेंद्र देव किसान पी.जी. कालेज, बभनान, गोंडा (उ.प्र.)

सारांशः

वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी तरह तनाव से ग्रसित है। ऐसे में आये दिन समाचार पत्रों, चिकित्सकों, मनोवैज्ञानिकों तथा समाजवैज्ञानिकों आदि के द्वारा इसकी मुक्ति के अनेक उपाय सुझाये जाते रहे हैं। वर्तमान में व्यक्तिगत तनाव, परिवार में माता–पिता और पुत्र–पुत्रियों के बीच छोटी–छोटी बातों को लेकर तनाव होना आम बात हैं। पति–पत्नी के बीच तनाव अनेक प्रकार की समस्याओं को जन्म देते हैं। इस स्थिति में अनेक शोध यह बताते हैं कि लोकगीतों के द्वारा विभिन्न सामाजिक सम्बन्धों की व्याख्या बेहतर ढंग से की जा सकती है तथा ये मन में उमंग, उत्साह, स्फूर्ति आदि को बढ़ाते हैं जिससे व्यक्ति या समाज पुनः कार्य करने के लिये आवृत हो जाते हैं।

बीज शब्दः सामाजिक तनाव, लोकगीत, औद्योगीकरण, नगरीकरण, सामूहिकता

मनुष्य की बढ़ती आवश्यकताओं ने उसके सामाजिक जीवन में तनावों को बढ़ाया है। वर्तमान समय में औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं अन्य प्रक्रियाओं ने इस तनाव को चरम पर पहुंचा दिया है। मनुष्य की बढ़ती आवश्यकताओं के कारण जब किसी की कोई इच्छा पूर्ण नहीं हो पाती तो उसके मस्तिष्क में तनाव उत्पन्न हो जाता है। औद्योगीकरण के कारण व्यक्ति का प्रव्रजन होता है जिससे वह अपने परिवार, समाज व संस्कृति से दूसरे सांस्कृतिक परिवेश में पहुँच जाता है। अब उसे नये मूल्यों, प्रतिमानों तथा प्रतीकों से सामना करना होता है जहाँ व्यक्ति अपने आप को ढालने में कठिनाई महसूस करता है। फलतः उसमें तनाव उत्पन्न होने लगता है। नगरीकरण के कारण व्यक्ति के सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन होने लगता है। वे प्राथमिक से द्वितीयक में बदल जाते हैं तथा सामूहिक भावना कमजोर पड़ने लगती है। ऐसे में व्यक्ति अकेला रह जाता है जिससे वह तनाव महसूस करता है। इस सम्बन्ध में **जी. के. सिंह एवं वृन्दा सिंह** लिखते हैं कि– "वर्तमान युग में भीड़–भाड़ वाली जिन्दगी में व्यक्ति एकदम अकेला एवं स्वयं केन्द्रित होकर रह गया है। दिन प्रतिदिन मानवीय मूल्यों के ह्रास होने से व्यक्ति में निराशा, अकेलापन, असंतोष, उत्तरदायित्यों की कमी, धन की बढ़ती चाहत इत्यादि ने जन्म लिया है, जिससे व्यक्ति अशांत, निराश, चिन्ताग्रस्त, परेशान एवं मानसिक रूप से बीमार एवं रोगग्रस्त हो गया है।''[1] इसी कड़ी में आप आगे लिखते हैं कि– ''अगर व्यक्ति रोगी, परेशान एवं तनाव में रहेगा तो निश्चित ही समाज भी रोगी एवं बीमार होगा।''[2] मानसिक तनाव के कारण व्यक्ति की मानसिक, शारीरिक एवं सामाजिक क्रियायें प्रभावित होती हैं जिससे समाज में तनाव उत्पन्न होता है। विभिन्न समाजशास्त्रियों जैसे दुर्खीम[3] एवं राबर्ट किंग मर्टन[4] के अनुसार सामाजिक तनाव की उत्पत्ति सामाजिक संरचना में ही निहित होती है। अनेक अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि संगीत, मानसिक–शांति एवं शारीरिक–स्फूर्ति लाने में योगदान देता है। **सत्यवती शर्मा** कहती हैं कि– ''संगीत प्रत्येक स्थिति में प्रणय प्रदान करने वाला एक महत्वपूर्ण आधार है, भौतिक साधनों की सहायता से उद्देश्य को प्राप्त न कर सकने से व्यक्ति में निराशा और आत्महीनता के दोष उत्पन्न हो जाते हैं लेकिन संगीत ही एक ऐसा आधार है जो असफलता की स्थिति में भी 'ईश्वरीय इच्छा' का विश्वास दिलाकर व्यक्ति को पुनः दोगुने उत्साह से अपना कार्य करने की प्रेरणा देता है। संगीत व्यक्ति के जीवन के महत्व को स्पष्ट करके पवित्र भावनाओं का विकास करके तथा मानसिक चिन्तन से छुटकारा दिलाकर व्यक्तित्व का विकास करने में सबसे अधिक सहायक होता है। यदि मनोवैज्ञानिक आधार पर संगीत के महत्व को समझने का प्रयत्न किया

जाये तो स्पष्ट होता है कि संगीत व्यक्ति के मन को सबसे अधिक नियंत्रित करता है।''[5] इसी तरह **विनय गोयल** अपने एक लेख में लिखते हैं कि– ''संगीत की तरह काम कर सके ऐसी कोई आसान दवा दिमाग के लिये नहीं बनी। अगर बढ़ती उम्र में दिमाग की सेहत को चुस्त रखना चाहते हैं तो संगीत सुनिये या कोई वाद्य सीख लीजिए यह पूरे मस्तिष्क के लिये बहुत अच्छा व्यायाम है।''[6] **विनय गोयल** आगे लिखते हैं कि– ''संगीत तनाव को कम करने, रक्तचाप को नियंत्रित रखने तथा दर्द को कम करने के साथ ही ध्यान, नींद, मूड और स्मृति की गुणवत्ता में सुधार करता है।''[7] इस सम्बन्ध में **अंर्स्ट फिसर** लिखते हैं कि– ''कला का सारभूत काम जादू करना नहीं बल्कि लोगों को प्रबुद्ध बनाना तथा कर्म की प्रेरणा देना है।''[8] इस प्रकार उपर्युक्त अध्ययन यह बताते हैं कि संगीत मानसिक तनाव को कम करने तथा सामाजिक समरसता लाने में योगदान देते हैं।

तनाव वास्तव में शरीर विज्ञान एवं स्नायुविज्ञान की एक प्रमुख अवधारणा है। तनाव जैविक प्राणियों का ही एक विशेष गुण है। शरीर विज्ञान में तनाव से तात्पर्य उस स्थिति से है जो स्नायुओं की सिकुड़न से उत्पन्न होता है तथा जिसके फलस्वरूप माँसपेशियों में खिचाव आ जाता है। मनोविज्ञान के संदर्भ में तनाव व्यक्ति में दबाव की उस स्थिति का द्योतक है जिसकी उत्पत्ति विपरीत प्रेरकों के फलस्वरूप होती है। जब कभी कोई आवश्यकता जागृत होती है तब व्यक्ति के आंतरिक क्षेत्र में तनाव उत्पन्न हो जाता है। उद्देश्य की प्राप्ति के बाद तनाव मिट जाता है। परंतु, मनुष्य की आवश्यकताएँ अनंत होती हैं जिस कारण वह कभी भी तनाव में आ जाता है। **हरिकृष्ण रावत** कहते हैं कि– "सामाजिक समूहों में दमित संघर्ष, मतभेद तथा विरोध जो सामान्यतः एक लम्बे अर्से से चला आ रहा होता है के फलस्वरूप उत्पन्न भावनात्मक स्थिति सामाजिक तनाव की द्योतक है। इस स्थिति की उत्पत्ति हित–समूहों के दबाव, पारस्परिक अज्ञानता, विभिन्न परम्पराएं, अकुशल नेतृत्व तथा पर्यावरण की वे शक्तियों हो सकती हैं जो मानव नियंत्रण से परे होती हैं जैसे विपरीत मौसम या अपर्याप्त संसाधन आदि।"[9] **कुर्ट लेविन** के अनुसार– "समूहों के मध्य तनावों की उत्पत्ति विरोधी–विचारों, प्रेरकों अथवा मूल्यों के कारण होती है। ये तनाव, समूहों के बीच असंतुलन की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं।"[10] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सामाजिक तनाव एक ऐसी स्थिति हैं जिसमें दो समूह आपस में सहयोग न करके, वैमनस्य, संघर्ष तथा विरोध आदि के लिये प्रवृत्त होते हैं।

दूसरी तरफ लोकगीत हैं। इसके बारे में **विद्या चौहान** लिखती हैं कि– "गीत, मानव के आत्म एवं अनात्म भावों की लयात्मक अभिव्यक्ति होते हैं। इसी गीत परम्परा की एक धारा जब अपनी देशज बोलियों में लोकवाणी को प्रवाहित करने लगी तो उसे लोकगीत के नाम से ज्ञापित किया गया।''[11] लोकगीतों का सृजन सामूहिक चेतना द्वारा स्वभाविक रीति से होता है वह किसी निश्चित एवं नियंत्रित संगीतात्मक अथवा साहित्यिक प्रक्रिया का परिणाम नहीं होता है। जीवन की सहज क्रियाओं और व्यापारों में व्यस्त जन–मन के सरल, स्वभाविक और स्वच्छन्द भाव गीतों का रूप लेकर उनकी वाणी द्वारा उद्भूत होने लगते हैं। लोकगीतों में लौकिक सभ्यता, संस्कृति, आचार, व्यवहार, रीति–रिवाज एवं परम्पराओं, मान्यताओं आदि का चित्रण रहता है। इस सम्बन्ध में **राम नरेश त्रिपाठी** लिखते हैं कि– लोकगीत युग के दर्पण कहे जा सकते हैं। लोकगीतों में लोकसमाज की प्रत्येक घटना और प्रत्येक स्थिति अपने हर्ष–विषादात्मक अस्तित्व के साथ सन्निहित रहती है। देश का सच्चा इतिहास और उनका नैतिक और सामाजिक आदर्श इन गीतों में ऐसा सुरक्षित है कि इनका नाश हमारे लिये दुर्भाग्य की बात होगी।''[12] लोकगीतों को स्पष्ट करते हुऐ **सूर्यकरण पारीक एवं नरोत्तम स्वामी** लिखते हैं कि– ''आदिम मनुष्य के हृदय के गानों का नाम ही लोकगीत है। मानव जीवन की, उसके उल्लास की, उसकी उमंगों की, उसकी करूणा की, उसके समस्त सुख–दुख की कहानी इनमें चित्रित है। न जाने कितने काल को चीरकर ये गीत चले आ रहे हैं। काल का विनाशकारी प्रभाव इन पर नहीं पड़ता, किसी की कलम ने इन्हें लेखबद्ध नहीं किया, पर ये अमर हैं।''[13]

प्रस्तुत शोध के उद्देश्य इस प्रकार हैं– 1.व्यक्ति के मानसिक तनाव को कम करने में लोकगीतों के योगदान का अध्ययन करना। 2.व्यक्ति के मानसिक संतोष पर लोकगीतों के प्रभावों का अध्ययन करना। 3. सामाजिक समरसता बढ़ाने में लोकगीतों के प्रभावों का अध्ययन करना।

ज्ञान के विस्तार हेतु एवं उपलब्ध आँकड़ों के सत्यापन के निहितार्थ शोध कार्य अपरिहार्य होता है। क्योंकि, किसी भी क्षेत्र से सम्बन्धित तथ्यों का प्रमाणीकरण, नवीनीकरण एवं सत्यापन अनुसंधान के द्वारा ही किया जा सकता है। प्रस्तुत शोध कार्य में शोध की वर्णनात्मक विधि का प्रयोग कर लोकगीतों एवं सामाजिक तनाव से सम्बन्धित वास्तविक एवं विश्वसनीय ऑकड़ों को प्राप्त करने के लिये प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के ऑकड़ों को एकत्र कर शोध कार्य को पूर्ण किया गया है। प्राथमिक ऑकड़े स्वयं स्थल पर जाकर मूल स्रोतों एवं साक्षात्कार अनुसूची द्वारा एकत्र किये गये हैं। जबकि, द्वितीयक आँकड़े लोकगीतों एवं सामाजिक तनाव से सम्बन्धित विभिन्न प्रकाशित पुस्तकों, शोध पत्र–पत्रिकाओं, समाचार पत्रों आदि से एकत्र किये गये हैं।

चिन्तन और जिज्ञासा मानव की मूल प्रवृत्तियाँ है। उपकल्पना, मानव की मूल वृत्ति के साथ ही साथ सामाजिक अनुसंधान की प्रथम सीढ़ी है। अनुसंधान कार्य प्रारंभ करने से पूर्व अनुसंधान के कारणों, समस्याओं के समाधान एवं परिणाम के बारे में हम जो एक निश्चित पूर्वानुमान बना लेते है, उसे ही उपकल्पना कहते हैं। प्रस्तुत शोध में परीक्षण की उपकल्पनाएँ निम्नलिखित हैं– 1. लोकगीत सामाजिक तनाव को कम करते हैं। 2. लोकगीत समाज से कम हो रहे हैं, जिस कारण सामाजिक तनाव में वृद्धि हो रही है। 3.लोकगीत एवं सामाजिक तनाव में कोई सम्बन्ध नहीं है।

प्रस्तुत अध्ययन के लिये जनपद अयोध्या की तहसील बीकापुर के परसुही ग्रामसभा का चयन किया गया है। इस ग्रामसभा की कुल जनसंख्या 1060 है जिसमें 490 महिलाएँ तथा 570 पुरुष हैं। अध्ययन क्षेत्र में कुल 250 परिवार हैं जिसमें 180 संयुक्त तथा 70 परिवार एकल हैं, परंतु ऐसा नहीं है कि जो एकल परिवार हैं वे पूर्णतः एकल हैं वरन् वे किसी न किसी प्रकार से संयुक्त परिवार से सम्बन्धित हैं। अध्ययन हेतु 150 उत्तरदाताओं का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन से किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र में लोकगीतों के रूप में गारी, बनरा जोकि विवाह के समय गाये जाते हैं, सोहर जो कि बच्चे के जन्म के समय गाये जाते हैं, भजन, जो कि धार्मिक उत्सवों में विशेष रूप से गाये जाते हैं, फाग, जो होली के समय गाये जाते हैं, भजन–कीर्तन, जो नवरात्रि के समय गाये जाते हैं तथा आल्हा गायन, जो बरसात के समय गाया जाता है। इसके अतिरिक्त बारामासी, रसिया, कजरी, आल्हा, सैरा, बिरहा, नौटंकी तथा फसल आने के समय गाये जाने वाले अनेक लोकगीत प्रचलित है।

प्रस्तुत अध्ययन में तथ्यों को संकलित कर इनका सारणीयन एवं सांख्यिकीय विश्लेषण निम्नलिखित प्रकार से किया गया है–

तालिका क्रमांक–1.0

लोकगीतों से जुड़ाव सम्बन्धी उत्तरदाताओं के विचार

क्रम सं.	स्थिति	संख्या	प्रतिशत
1.	स्वयं गाते तथा सुनते हैं	120	80
2.	केवल सुनते हैं	30	20
योग		**150**	**100**

तालिका क्रमांक 1.0 से स्पष्ट है कि सबसे अधिक 80 प्रतिशत उत्तरदाता लोकगीत स्वयं गाते तथा सुनते भी हैं। 20 प्रतिशत उत्तरदाता लोकगीत केवल सुनते हैं, स्वयं गाते नहीं हैं। इससे स्पष्ट है कि चयनित अध्ययन क्षेत्र में लोकगीत बहुतायत रूप में पाये जाते हैं तथा सभी उत्तरदाता किसी न किसी प्रकार से लोकगीतों से सम्बन्धित हैं।

तालिका क्रमांक–2.0

लोकगीतों से तनाव कम होता है? के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं के विचार

क्रम सं.	स्थिति	संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	135	90
2.	नहीं	–	–
3.	कह नहीं सकते	15	10
योग		**150**	**100**

तालिका क्रमांक 2.0 से स्पष्ट है कि सबसे अधिक 90 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि लोकगीत सामाजिक तनाव को कम करते हैं। 10 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि इस बारे में वे कुछ कह नहीं सकते हैं।

तालिका क्रमांक–3.0

लोकगीतों से तनाव कैसे कम होता है? के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं के विचार

क्रम सं.	स्थिति	संख्या	प्रतिशत
1.	विषय वस्तु द्वारा	105	70
2.	मनोरंजन द्वारा 30	20	
3.	अन्य के द्वारा 15	10	
योग		150	100

तालिका क्रमांक 3.0 स्पष्ट होता है कि सबसे अधिक 70 प्रतिशत उत्तरदाता तनाव को कम करने में लोकगीतों की विषय–वस्तु को मानते हैं। उनके अनुसार लोकगीतों में ऐसे शब्द होते हैं जो मनुष्य के अंतिम लक्ष्य मोक्ष की याद दिलाते है तथा वर्तमान में समाज को उसके ही दर्शन कराते हैं। 20 प्रतिशत उत्तरदाता लोकगीतों के द्वारा होने वाले मनोरंजन को तनाव कम करने का तरीका मानते हैं। केवल 10 प्रतिशत उत्तरदाता लोकगीतों के संगीत, ढोलक, मजीरा की थाप आदि को तनाव कम करने का तरीका मानते हैं।

उपरोक्त सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट होता है कि लोकगीत सामाजिक तनाव को कम करते हैं तथा व्यक्ति को अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों का बोध कराकर सामाजिक समरसता बढ़ाने में योगदान देते हैं। इस प्रकार शोध के प्रथम एवं द्वितीय उद्देश्य की पूर्ति एवं प्रथम उपकल्पना सही सिद्ध होती है और इसी तरह तृतीय उपकल्पना ख़ारिज होती है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि लोकगीत प्रायः सामाजिक तनाव को कम करते हैं। लोकगीतों में कुछ ऐसी सामग्री होती है जो समाज को असफलता की स्थिति को 'ईश्वरीय इच्छा' बताकर, उसे मिलकर कार्य करने के लिये प्रेरित करती है। अध्ययन के दौरान इस प्रकार के अनेक लोकगीत पाये गये हैं जो धैर्य और ईश्वर में विश्वास को महत्व देते हैं। मनोरंजन के द्वारा लोकगीत व्यक्ति में आनंद भर देते हैं तथा आनन्दित व्यक्ति प्रत्येक व्यक्ति से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करता है।

इसी प्रकार लोकगीतों में परिवार एवं नातेदारी के विभिन्न संबंधों में पति–पत्नी के सम्बन्ध, माता–पिता के प्रति पुत्र के सम्बन्ध, भाई–बहिन के सम्बन्ध, चाचा–भतीजे के सम्बन्ध, ननद–भाभी एवं देवर के सम्बन्ध, जीजा एवं साली के सम्बन्ध एवं अन्य नाते–रिश्तेदारों के सम्बन्धों की सुन्दर व्याख्या सरल एवं सहज भाषा में मिलती है जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों से अच्छी तरह से सजग हो जाता है। पीहर एवं ससुराल पक्ष के नातेदारों की व्याख्या विवाह आदि के समय गाये जाने वाले लोकगीतों में मिल जाती है।

लोकगीतों के माध्यम से समाज अपनी संस्कृति से परिचित होता है और प्रत्येक समाज की संस्कृति उसके लिये आदर्श होती है। इस आदर्श संस्कृति को लोग बचाने का प्रयास करने लगते हैं। लोकगीतों के माध्यम से शत्रु भी मित्र हो जाते है। एक बात का उल्लेख करना भी यहाँ आवश्यक है कि अनेक लोकगीतों की मंडलियों त्यौहारों के समय उनके घरों में जाकर लोकगीतों का प्रदर्शन करते हैं जिनके परिवार में एक वर्ष के अंदर किसी सदस्य की मृत्यु हुई है ताकि जिस परिवार में सदस्य की मृत्यु के बाद जो तनाव या दुख व्याप्त है उसे कम किया जा सके। इसी प्रकार विवाह के समय अनेक प्रकार के लोकगीत जैसे गारी, बनरा–बनरी आदि विशेष रूप से गाये जाते हैं, ऐसा इसलिये किया जाता है, ताकि विवाह के समय किये जाने वाले कार्य की थकान व तनाव से बचा जा सके।

लोकगीतों का प्रदर्शन समूह में होता इसीलिए जो लोग इनमें सहभागिता करते हैं वे आपस में प्राथमिक सम्बन्धों की भाँति व्यवहार करते हैं। वे आपस में एक दूसरे के सुख–दुख में शामिल होना अपना परम कर्त्तव्य मानते हैं। अध्ययन के दौरान यह भी देखने में आता है कि लोकगीतों में सहभागिता के बाद इसमें सहभागी हुए लोग प्रायः क्रोधित नहीं होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि लोकगीतों में सहभागिता से सामाजिक व्यवस्था में भी तनाव कम हो जाते हैं।

संदर्भः

1. सिंह,जी.के. एवं वृन्दा(2006),सामुदायिक स्वास्थ्य एवं शिक्षा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृ.–05.
2. सिंह,जी.के. एवं वृन्दा(2006),सामुदायिक स्वास्थ्य एवं शिक्षा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृ.–06.
3- Jones, Robert Alun (1986), 'Emile Durkheim: An Introduction to Four Major Works', Sage Pub., p.30.
4- Merton, Robert K.(1957), 'Social Theory and Social Structure', The Free Press, New York, p.12-36.
5. शर्मा,सत्यवती(1965),संगीत का समाजशास्त्र, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृ.–170.
6. गोयल,विनय(2016),दिमाग के व्यायाम है नृत्य और संगीत, रसरंग, दैनिक भास्कर, पृ.–03
7. गोयल,विनय(2016),दिमाग के व्यायाम है नृत्य और संगीत, रसरंग, दैनिक भास्कर, पृ.–03
8. फिशर,अंर्स्ट(1960),कला की जरूरत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.–17.
9. रावत,हरिकृष्ण(1968),समाजशास्त्र विश्कोश, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ.–348.
10. लेविन,कुर्ट(1968),हरिकृष्ण रावत, समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ.–346–348.
11. चौहान,विद्या(1972),लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, प्रगति प्रकाशन, आगरा, पृ.–73.
12. त्रिपाठी,रामनरेश(1958),कविता कौमुदी भाग–५, नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, मुम्बई, पृ.–40.
13. पारीक,सूर्यकरण एवं स्वामी,नरोत्तम(1968),राजस्थान के लोकगीत, मंगल प्रकाशन, जयपुर, पृ.–1–2.

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थितिः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. कल्पना सिंह
असि. प्रोफेसर – समाजशास्त्र
वंशा देवी पी.जी. कॉलेज गजाधरपुर, गद्दोपुर, जौनपुर (उ. प्र.)

सारांश– *''भारत एक प्राचीन सभ्यता है जहाँ सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक धारणाएं हमेशा से ही महत्वपूर्ण रही हैं। भारतीय समाज का इतिहास महिलाओं की स्थिति को लेकर जटिल रहा है। सदियों से समाज में महिलाओं की भूमिका और स्थिति में लगातार परिवर्तन होता आया है। कभी महिलाओं को देवी का दर्जा दिया गया, तो कभी उन्हें पितृसत्तात्मक संरचनाओं के अधीन रखा गया। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति को समझना आवश्यक है क्योंकि इससे सामाजिक नीतियों और सुधारों का मार्ग प्रशस्त होता है। इस शोध–पत्र का उद्देश्य समाज में महिलाओं की स्थिति का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन करना है, जिसमें हम विभिन्न ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक पहलुओं के आधार पर महिलाओं की स्थिति का विश्लेषण करेंगे।''*

कुन्जी भूत शब्द– बाल विवाह ,सती प्रथा,पर्दा प्रथा,आर्थिक निर्भरता,यौन उत्पीड़न,संरचनात्मक परिवर्तनों ।

भारतीय समाज की प्रमुख विशेषता पितृसत्ता रही है, जिसमें पुरुषों को प्रमुखता और महिलाओं को अधीनस्थ माना गया है। पितृसत्तात्मक संरचना ने महिलाओं के जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित किया है – चाहे वह घर हो, कार्यस्थल हो, या समाज में उनकी पहचान हो। पारंपरिक रूप से भारतीय समाज में महिलाएं घर की देखभाल और परिवार की सेवा करने के लिए जिम्मेदार मानी जाती रही हैं। महिलाओं का कार्य घरेलू जिम्मेदारियों तक सीमित रहा है, जबकि पुरुषों को घर के बाहर काम करने की स्वतंत्रता और आर्थिक निर्णय लेने का अधिकार दिया गया। शिक्षा के क्षेत्र में भी पितृसत्तात्मक धारणाओं का प्रभाव देखा जा सकता है। भारतीय समाज में लंबे समय तक लड़कियों की शिक्षा को महत्व नहीं दिया गया। इसके अलावा, महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता को भी सीमित किया गया, जिससे वे पुरुषों पर निर्भर रहीं। विवाह के बाद महिलाओं को अपने पति और ससुराल वालों की इच्छाओं के अनुसार जीवन जीने की अपेक्षा की जाती रही है। पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं की पहचान उनके पति या पिता से जुड़ी होती है, जो उन्हें एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में पहचानने में बाधा डालती है। महिलाओं की स्थिति का अध्ययन करने के लिए सबसे पहले हमें भारतीय समाज के ऐतिहासिक संदर्भ पर ध्यान देना होगा। वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक, महिलाओं की सामाजिक स्थिति में कई परिवर्तन हुए हैं।

वैदिक काल: वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति काफी सम्मानजनक और सशक्त मानी जाती थी। इस काल में महिलाओं को समाज में पुरुषों के समान अधिकार और अवसर प्राप्त थे। उनकी स्थिति निम्नलिखित रूप से परिलक्षित होती थीः

1. वैदिक काल की महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने का पूरा अधिकार था। वेदों में महिलाओं का अध्ययन और अध्यापन का उल्लेख मिलता है। कई महिलाओं को ''ब्रह्मवादिनी'' कहा जाता था, जो वेदों और उपनिषदों का ज्ञान रखती थीं।
2. महिलाएं धार्मिक अनुष्ठानों और यज्ञों में भाग लेती थीं। वे पति के साथ धर्म के कार्यों में समान रूप से शामिल होती थीं और कुछ धार्मिक अनुष्ठान वे स्वयं भी संपन्न कर सकती थीं।

3. वैदिक काल में महिलाओं को विवाह करने और पति चुनने की स्वतंत्रता थी। उन्हें ''स्वयंवर'' के माध्यम से अपने जीवन साथी चुनने का अधिकार प्राप्त था।
4. महिलाओं को संपत्ति का अधिकार था, और वे अपने परिवार के आर्थिक निर्णयों में भी भाग लेती थीं।
5. समाज में महिलाओं को उच्च सम्मान प्राप्त था। गार्गी और मैत्रेयी जैसी विदुषियों के नाम से यह सिद्ध होता है कि महिलाएं उस समय न केवल समाज में बराबरी का दर्जा रखती थीं, बल्कि ज्ञान और बुद्धिमत्ता के क्षेत्र में भी अग्रणी थीं।
6. परिवार में महिला को 'गृहिणी' का महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। वह परिवार का केंद्र मानी जाती थी और घर के समस्त कार्यों की देखरेख करती थी।

हालांकि, बाद के कालों में महिलाओं की स्थिति में गिरावट आई, लेकिन वैदिक काल में उनका समाज में उच्च स्थान और अधिकार स्पष्ट रूप से दिखते हैं।

उत्तर वैदिक काल – उत्तर वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति में काफी बदलाव आया, और यह स्थिति वैदिक काल की तुलना में कमजोर होती गई। इस समय महिलाओं के अधिकारों और उनकी सामाजिक स्थिति में गिरावट देखी गई। उत्तर वैदिक काल (लगभग 1000–500 ईसा पूर्व) में समाज में महिलाओं की स्थिति में कई बदलाव हुए। इस काल के दौरान सामाजिक संरचनाएँ जटिल हो गईं, और पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने समाज पर अधिक नियंत्रण प्राप्त कर लिया। उत्तर वैदिक काल में धर्म और अनुष्ठानों पर अधिक जोर दिया गया, जिससे समाज में वर्गीय विभाजन स्पष्ट हुआ। यज्ञ और अनुष्ठान अब मुख्यतः पुरुषों द्वारा संचालित होने लगे, और महिलाओं की धार्मिक भागीदारी सीमित हो गई। वैदिक धर्म में महिलाओं का धार्मिक अनुष्ठानों में सक्रिय भूमिका समाप्त हो गई। यज्ञों में महिलाओं की भागीदारी सीमित हो गई, और वेदों का अध्ययन और पढ़ाई महिलाओं के लिए धीरे–धीरे निषिद्ध हो गया।

उत्तर वैदिक काल में महिलाओं के संपत्ति अधिकारों में भी कमी आई। उन्हें संपत्ति पर अधिकार कम मिलता था, और उनका सामाजिक और आर्थिक योगदान सीमित हो गया। इस काल में अभी तक पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं था, लेकिन महिलाओं की स्वतंत्रता और सार्वजनिक जीवन में उनकी भागीदारी कम होने लगी थी।

मध्यकालीन युग में महिलाओं की स्थिति–

मध्यकालीन भारत (लगभग 8वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी तक) में महिलाओं की स्थिति और अधिक जटिल हो गई। इस समय के समाज में कई सामाजिक–धार्मिक प्रथाओं ने महिलाओं की स्थिति को कमजोर किया। मुस्लिम आक्रमणों और इस्लामिक शासन के प्रभाव के कारण भारत में ''पर्दा प्रथा'' प्रचलित हुई, जिससे महिलाओं को घर की चारदीवारी तक सीमित कर दिया गया।महिलाओं की शिक्षा पर भी रोक लगाई जाने लगी, और उन्हें सार्वजनिक जीवन से लगभग अलग कर दिया गया।

बाल विवाह और सती प्रथा जैसी अमानवीय प्रथाएँ प्रचलित हो गईं। बाल विवाह से महिलाओं को उनकी स्वतंत्रता और शिक्षा से वंचित कर दिया गया, जबकि सती प्रथा ने उनके जीवन पर कड़ा नियंत्रण स्थापित किया। विधवाओं की स्थिति बेहद दयनीय हो गई। उन्हें न केवल समाज से अलग कर दिया गया, बल्कि उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा और अधिकार भी छीन लिए गए।

मध्यकालीन समाज में धार्मिक कट्टरता बढ़ी, और महिलाओं को धर्म और समाज में निर्णय लेने की प्रक्रिया से बाहर कर दिया गया। धार्मिक अनुष्ठानों और सामाजिक कार्यों में उनकी भागीदारी सीमित हो गई, और उन्हें केवल घर के कार्यों तक सीमित कर दिया गया। इस समय के सामंती और जमींदारी व्यवस्था ने महिलाओं की स्थिति को और कमजोर कर दिया। जमींदारों और शासकों के घरों में महिलाओं की स्थिति दासियों और सेविकाओं जैसी हो गई थी। महिलाओं को संपत्ति और विरासत के अधिकार नहीं

दिए जाते थे, और उनका मुख्य उद्देश्य परिवार के मान–सम्मान की रक्षा करना माना जाता था। मध्यकालीन साहित्य और कला में महिलाओं की छवि अक्सर पितृसत्तात्मक विचारधारा के अनुसार बनाई गई थी। महिलाओं को आदर्श रूप से एक पत्नी, माता और दासी के रूप में प्रस्तुत किया गया।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखा जाए, तो उत्तर वैदिक और मध्यकालीन युग में महिलाओं की स्थिति में गिरावट कई कारकों के कारण हुई।1–पितृसत्तात्मक संरचना– समाज में पितृसत्तात्मक विचारधारा की मजबूती और पारिवारिक संरचनाओं के नियंत्रण ने महिलाओं को सार्वजनिक जीवन से हटा दिया।

2– धार्मिक और सांस्कृतिक प्रतिबंध– धर्म और अनुष्ठानों में महिलाओं की भागीदारी सीमित हो गई, और धार्मिक संस्थाओं ने भी महिलाओं की स्थिति को कमजोर किया। 3– सामाजिक असमानता– जाति और वर्ग विभाजन ने भी महिलाओं की स्थिति को कमजोर किया, विशेषकर निम्न जातियों की महिलाओं की स्थिति अत्यधिक कमजोर थी। 4–आर्थिक निर्भरता– जमींदारी और सामंती व्यवस्था के तहत महिलाओं को आर्थिक स्वतंत्रता नहीं दी गई, जिससे वे पुरुषों पर निर्भर हो गईं। समग्र रूप से, उत्तर वैदिक और मध्यकालीन युगों में महिलाओं की स्थिति में गिरावट मुख्यतः पितृसत्ता, धर्म, और सामाजिक विभाजनों के परिणामस्वरूप हुई। इन दोनों युगों में महिलाओं की स्वतंत्रता, शिक्षा, और सामाजिक अधिकारों का ह्रास हुआ।

औपनिवेशिक युग – ब्रिटिश शासनकाल के दौरान महिलाओं की स्थिति को सुधारने के प्रयास हुए। राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर और महात्मा गांधी जैसे समाज सुधारकों ने सती प्रथा के उन्मूलन और विधवा पुनर्विवाह को बढ़ावा दिया। इस समय समाज में महिलाओं की शिक्षा और अधिकारों पर जोर दिया गया।

19वीं और 20वीं सदी में भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए कई सामाजिक सुधार आंदोलनों का उदय हुआ। इन आंदोलनों ने महिलाओं के अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ाई और उनकी सामाजिक स्थिति को बेहतर बनाने में योगदान दिया। राजा राममोहन राय और सती प्रथा का उन्मूलनः राजा राममोहन राय ने सती प्रथा के खिलाफ आंदोलन चलाया, जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने इस प्रथा को अवैध घोषित किया। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने विधवा पुनर्विवाह और बाल विवाह के उन्मूलन के लिए महत्वपूर्ण प्रयास किए। इन आंदोलनों ने महिलाओं को पुनः समाज में स्थान दिलाने की दिशा में बड़ा कदम उठाया। गांधी जी के नेतृत्व में स्वतंत्रता संग्राम के दौरान महिलाओं को बड़े पैमाने पर स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने का अवसर मिला। महिलाओं की राजनीतिक और सामाजिक स्थिति में सुधार लाने के लिए गांधी जी ने जोर दिया।

स्वतंत्रता के बाद महिलाओं की स्थिति–

स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान ने महिलाओं को समानता और स्वतंत्रता के अधिकार दिए। महिलाओं के उत्थान के लिए कई कानूनी और संस्थागत सुधार किए गए।

1. **संवैधानिक अधिकार–** भारतीय संविधान में अनुच्छेद 14, 15 और 16 के तहत महिलाओं को समानता का अधिकार दिया गया। इसके अलावा, अनुच्छेद 39 (ए) में राज्य को यह निर्देश दिया गया है कि वह महिलाओं और पुरुषों के बीच समान अवसर प्रदान करे।
2. **कानूनी सुधार–** महिलाओं की स्थिति को बेहतर बनाने के लिए कई कानून बनाए गए जैसे कि बाल विवाह निषेध अधिनियम, दहेज निषेध अधिनियम, घरेलू हिंसा अधिनियम, और महिलाओं के कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न निषेध अधिनियम।

3. **शैक्षिक और आर्थिक क्षेत्र में उन्नति–** शिक्षा और रोजगार के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है। सरकार ने महिलाओं की शिक्षा के लिए कई योजनाएं शुरू कीं जिससे महिला साक्षरता दर में वृद्धि हुई है। साथ ही, महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वतंत्र बनाने के लिए भी कई प्रयास किए गए।

समकालीन समाज में महिलाओं की स्थिति

आज के समाज में महिलाएं विभिन्न क्षेत्रों में अग्रणी भूमिका निभा रही हैं, लेकिन अभी भी कई चुनौतियां बनी हुई हैं।

1. **शैक्षिक और पेशेवर क्षेत्र में योगदान–** आधुनिक भारत में महिलाएं विज्ञान, राजनीति, व्यापार, खेल, और कला जैसे विभिन्न क्षेत्रों में उत्कृष्ट प्रदर्शन कर रही हैं। इंदिरा नुई, मैरी कॉम, किरण मजूमदार शॉ जैसी महिलाओं ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत का नाम रोशन किया है।

2. **लिंग असमानता–** फिर भी, भारतीय समाज में लिंग आधारित भेदभाव अभी भी मौजूद है। कार्यस्थल पर महिलाओं के साथ होने वाला भेदभाव, वेतन असमानता, और घर के भीतर उनके प्रति होने वाली हिंसा जैसी समस्याएं आज भी समाज में गहराई से व्याप्त हैं।

3. **महिला सशक्तिकरण–** महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए सरकार और गैर–सरकारी संगठनों द्वारा कई योजनाएं चलाई जा रही हैं। 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ', 'सुकन्या समृद्धि योजना', और 'उज्ज्वला योजना' जैसी योजनाओं ने महिलाओं के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लाने का प्रयास किया है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से महिला सशक्तिकरण–

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से महिला सशक्तिकरण को न केवल सामाजिक सुधारों से जोड़ा जा सकता है, बल्कि मानसिकता परिवर्तन और सामाजिक संरचनाओं में बदलाव से भी जोड़ा जा सकता है। महिलाओं के सशक्तिकरण का अर्थ है उन्हें सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक अधिकार प्रदान करना ताकि वे स्वतंत्र रूप से अपने जीवन के निर्णय ले सकें। भारतीय समाज में सांस्कृतिक और धार्मिक धारणाएं महिलाओं के सशक्तिकरण में बाधा डालती हैं। समाजशास्त्रियों के अनुसार, महिलाओं की स्थिति में सुधार तभी संभव है जब पितृसत्ता, परंपरागत सोच और सांस्कृतिक मान्यताओं को चुनौती दी जाए। महिला सशक्तिकरण के लिए शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता अनिवार्य हैं। शिक्षित महिला समाज में न केवल अपनी पहचान स्थापित करती है, बल्कि समाज के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान देती है।

उपरोक्त विवेचनों से स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति का ऐतिहासिक विकास मिश्रित रहा है। वैदिक काल में महिलाओं को उच्च सम्मान प्राप्त था, लेकिन मध्यकालीन समाज में उनका स्थान घटता गया और पितृसत्तात्मक संरचनाओं का प्रभाव बढ़ा। पारंपरिक रूप से महिलाएं परिवार की देखभाल, बच्चों के पालन–पोषण और घरेलू कार्यों तक सीमित रहीं। हालांकि, आधुनिक समय में शहरीकरण, शिक्षा, और सामाजिक जागरूकता के प्रसार के साथ उनकी भूमिकाएं व्यापक हो रही हैं। शिक्षा महिलाओं के सशक्तिकरण का महत्वपूर्ण कारक है। पिछले कुछ दशकों में महिलाओं की शिक्षा और रोजगार में वृद्धि हुई है, जिससे वे अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक हो रही हैं और आत्मनिर्भर बन रही हैं। भारतीय संविधान और विभिन्न कानूनों के माध्यम से महिलाओं को अधिकार दिए गए हैं, जैसे कि संपत्ति का अधिकार, दहेज प्रथा का उन्मूलन, और घरेलू हिंसा से सुरक्षा। हालांकि, इन कानूनों के क्रियान्वयन में अभी भी चुनौतियां हैं। भारतीय समाज में आज भी महिलाओं को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जैसे कि लैंगिक भेदभाव, घरेलू हिंसा, दहेज प्रथा, और बाल विवाह। ग्रामीण क्षेत्रों में ये समस्याएं अधिक गंभीर हैं। महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है, लेकिन अभी भी कार्यस्थल पर समानता और समान वेतन की समस्याएं मौजूद हैं। असंगठित क्षेत्रों में महिलाओं का शोषण और असुरक्षा की स्थिति बनी हुई है। महिलाओं की बढ़ती जागरूकता, कानूनी सुरक्षा और शहरीकरण के कारण समाज में महिलाओं का स्थान

धीरे–धीरे मजबूत हो रहा है। वे अब राजनीति, विज्ञान, शिक्षा, और उद्यमिता जैसे क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति में सुधार हो रहा है, लेकिन पितृसत्तात्मक संरचनाओं और सांस्कृतिक धारणाओं को बदलने के लिए अभी भी लंबा रास्ता तय करना बाकी है। महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए शिक्षा, कानूनी सुधार, और सामाजिक जागरूकता आवश्यक है।

इन निष्कर्षों से स्पष्ट है कि भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति में सुधार हो रहा है, लेकिन उन्हें समृद्ध, समान और सशक्त समाज का हिस्सा बनने के लिए और भी सामाजिक एवं संरचनात्मक परिवर्तनों की आवश्यकता है। साथ ही महिलाओं के प्रति समाज में व्याप्त पूर्वाग्रहों को समाप्त करने के लिए जागरूकता अभियान चलाना। महिला शिक्षा को प्रोत्साहित करना और उनके लिए रोजगार के नए अवसर उपलब्ध कराना। घरेलू हिंसा, कार्यस्थल पर उत्पीड़न, और अन्य समस्याओं के समाधान के लिए कड़े कानूनों का पालन सुनिश्चित करना। महिलाओं के नेतृत्व को बढ़ावा देना और उन्हें महत्वपूर्ण निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में शामिल करना।

संदर्भ ग्रंथः

1. अमृता बसु (2005)''महिलाओं का सामाजिक सशक्तिकरणः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन'' ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
2. मजूमदार डी.एन. (2001)''भारतीय समाज में महिला का स्थान'' मैकमिलन
3. दुबे लीला (1996) ''महिलाएं और समाज'' रावत पब्लिकेशन
4. वंदना शिवा (2004) ''विकास, पर्यावरण और महिलाः एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण''
5. राष्ट्रीय महिला आयोग – ''महिलाओं की स्थिति पर रिपोर्ट'' (भारत सरकार, 2018)
6. एन.सी.ई.आर.टी. (2016) ''भारत में महिला शिक्षा और सामाजिक सशक्तिकरण''
7. यूनिसेफ इंडिया (2017)''भारत में बालिका शिक्षा और स्वास्थ्य का महत्व''

महिलाओं की प्रस्थिति परिवर्तन में सरकारी प्रयासों तथा अन्य कल्याणकारी कार्यक्रमों की भूमिका

प्रो0 अन्जू
आचार्य, समाजशास्त्र विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,
गोरखपुर उत्तर–प्रदेश
जया तिवारी
शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,
गोरखपुर उत्तर–प्रदेश

सारांश

समाजशास्त्रीय साहित्य में 'प्रस्थिति' शब्द से तात्पर्य है, सामाजिक जीवन में किसी व्यक्ति को समाज द्वारा प्रदान किया गया 'पद' जैसे–पति–पत्नी, माता–पिता आदि। प्रत्येक पद के साथ कई भूमिकाएँ जुड़ी होती हैं। महिलाओं की प्रस्थिति परिवर्तन का अर्थ है आत्म परिवर्तन और पुरूष एवं महिला दोनों की भूमिकाओं में परितर्वन महिलाओं की प्रस्थिति में सुधार के लिए भारत साहित विश्व के लगभग सभी देशो में सरकारी एवं गैर सरकारी स्तर पर अनेक प्रयास किये जा रहें है। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक विषमताओं को समाप्त करने के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में अनेक वैधानिक नियमों का निर्माण किया गया। महिलाओं के लिए शिक्षा को अनिवार्य किया किया गया, विवाह की आयु बढ़ा दी गयी, क्रमिक एकल विवाह को मान्यता दी गयी तथा विवाह में उनकी सहमति को अनिवार्य किया गया, अब लड़कियों का विवाह उनके इच्छा के विरूद्ध नहीं किया जा सकता है। तलाक को कानूनी दर्जा दिय गया, दहेज को निषेद्य किया गया, वेतन को समान किया गया, महिलाओं की राजनीति में प्रतिनिधित्व बढ़ाने के लिए उन्हें आरक्षण दिया गया, राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया गया, महिलाओं के प्रति दुर्व्यवहार को रोकने के लिए घरेलू हिंसा अधिनियम–2005 को लागू किया गया तथा समय–समय पर केन्द्र सरकार द्वारा महिलाओं के लिए अनेक योजनाएँ चलाई गई हैं। जिसमें से कुछ प्रमुख योजनाओं को इस शोध पत्र में संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया गया है। उपरोक्त प्रयासों के फलस्वरूप महिलाओं की प्रस्थिति में सुधारात्मक परिवर्तन हो रहा है। आज की महिलाएँ अबला, असहाय व त्याग की मूर्ति व दोयम दर्जे की शिकार प्रति नहीं हो रही हैं। उन्हें स्वतंत्रता व समानता का अधिकार दिया जा रहा है जिसकी वो हकदार हैं।

मुख्य शब्द – महिला, प्रस्थिति, भूमिका, परिवर्तन, समानता, संवैधानिक प्रावधान।

भारतीय संविधान ने मौलिक अधिकारों तथा राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों के द्वारा प्रत्येक भारतीय को समानता प्रदान किया है। वयस्क मताधिकार के साथ–साथ संविधान ने वे सभी अधिकार महिलाओं को भी प्रदान किये जो भारतीय सामाजिक परम्पराओं के द्वारा पहले से ही पुरुषों को प्राप्त था। महिलाओं की प्रस्थिति में सुधार के लिए भारत सरकार ने 1953 में 'केन्द्रीय सामाजिक कल्याण बोर्ड' की स्थापना की तथा पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से महिलाओं के अधिकारों, शिक्षा, स्वास्थ्य और उनकी आर्थिक निर्भरता को कम करने पर विशेष बल दिया गया। भारतीय महिलाओं की प्रस्थिति के अध्ययन तथा प्रस्थिति सुधार हेतु 1972 में राष्ट्रीय समिति की स्थापना किया जो 1975 में अपना प्रतिवेदन प्रकाशित किया। इसने यह स्पष्ट किया कि महिलाओं की सभी क्षेत्रों में भागीदारी, भूमिकाएँ, अधिकार, शिक्षा,

लिंगानुपात तुलनात्मक रूप से पुरुषों से निम्न है। शिक्षा, व्यवसाय व नौकरी का अवसर केवल कुछ शहरी उच्च वर्ग की महिलाओं को ही प्राप्त है जबकि ग्रामीण व निम्नवर्गीय महिलाएँ अभी भी इससे वंचित है। जिसका प्रमुख कारण उनका परम्परागत सामाजिक निषेधों में विश्वास करना, पितृसत्ता की बेड़ियाँ तथा जागरूकता की कमी है।

शैलेन्द्र मौर्य (2007) ने अपने अध्ययन में बताया कि महिला विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत सरकार द्वारा ऐसी योजनाओं का क्रियानवयन किया जा रहा है जिससे महिलाओं का सर्वांगीण विकास सुनिश्चित किया जा सके।[2] देवी (1997) ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि व्यक्तियों के स्थान पर समूहों को सहायता प्रदान की जाये और कार्यक्रम को प्रभावी व उपयुक्त बनाने के लिए महिलाओं की आर्थिक स्थिति की सुधारा जाये।

लेकिन तमाम अध्ययनों से यह अनुभव किया गया कि सिर्फ सरकारी प्रयासों से ही महिलाओं की प्रस्थिति में सुधार नहीं किया जा सकता हैं बल्कि इसके लिए यह आवश्यक है कि महिलाएँ स्वयं अपनी प्रस्थिति सुधार के प्रति जागरूक हों साथ ही यह भी देखा गया हैं कि इन विधि–विधानों के क्रियान्वयन में विभिन्न प्रकार की बाँधाएँ आ रही है। इन बाँधाओं में सबसे बड़ी व महत्वपूर्ण बाधा भारतीय समाज का परम्पराओं पर आधारित होना हैं। इन परम्पराओं के साथ–साथ भारतीय सामाजिक संरचना भी वैधानिक, राजनैतिक व सामाजिक सुधारों से सम्बन्धित विधानों का विरोध करती मालूम पड़ती है।

महिलाओं की प्रस्थिति परिवर्तन में सूचना का अधिकार एवं जागरूकता एक महत्वपूर्ण माध्यम हैं। उनकी प्रस्थिति सुधार के लिए उन पहलुओं को मजबूत बनाने की आवश्यकता है। जिसका सीधा संबंध स्वावलंबन और उत्थान से है। शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र इनमें प्रमुख हैं। इसके लिए भारतीय संविधान द्वारा निर्मित कानून तथा सरकार द्वारा किये गये प्रयासों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित प्रकार से हैं–

1. भारत में सन् 1854 में स्त्री शिक्षा को ईस्ट इंडिया कम्पनी के द्वारा स्वीकार किया गया तथा स्वतंत्रता के बाद 1986 के राष्ट्रीय शिक्षा नीति में महिलाओं को शिक्षा देना जरूरी समझा गया।
2. विशेष विवाह अधिनियम 1954
3. हिन्दू विवाह अधिनियम 1955
4. दहेज निषेध अधिनियम 1961
5. समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976
6. संविधान का 73वां संशोधन अधिनियम 1992
7. राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम 1990
8. घरेलू हिंसा अधिनियम 2005
9. बेटी बचाओं बेटी पढ़ाओं योजना–22/01/2015
10. प्रधानमंत्री उज्ज्वल योजना–01/05/2016, 10/08/2021
12. सुकन्या समृद्धि योजना–22/01/2015
13. फ्री सिलाई मशीन योजना
14. समर्थ योजना
15. सुरक्षित मातृत्व आश्वासन सुमन योजना

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना 2015

'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना' मानव संसाधन विकास मंत्रालय, महिला बाल विकास मंत्रालय, परिवार कल्याण मंत्रालय तथा स्वास्थ्य मंत्रालय के संयुक्त प्रयास से 22 जनवरी सन् 2015 को प्रधानमंत्री

श्री नरेन्द्र मोदी द्वारा हरियाणा के पानीपत से प्रारम्भ किया गया। यह योजना मुख्य रूप से शिशु लिंगानुपात में सुधार लाने तथा बालिकाओं की शिक्षा को सुनिश्चित करने के लिए शुरू किया गया। इस योजना का कार्य लिंग पक्षपात को रोकना, लिंग चयन प्रक्रिया को समाप्त करना, लड़कियों के शैक्षिक स्तर में वृद्धि कर सभी क्षेत्रों में उनकी भागीदारी बढ़ाना एवं लैंगिक भेदभाव को समाप्त कर समाज में लैंगिक समानता स्थापित करना है।

सुकन्या समृद्धि योजना 2015

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ अभियान के अन्तर्गत लड़कियों की शिक्षा तथा विवाह में सहायता करने या लड़की के भविष्य को सुरखित करने के उद्देश्य से 'सुकन्या समृद्धि योजना' को शुरू किया गया। इस योजना के तहत माता–पिता या अभिभावक अपने 10 वर्ष से कम आयु के बेटी के नाम से निकटतम बैंक या डाकघर में खाता खोलकर उसमें न्यूनतम 250 रू0 तथा अधिकतम 1.50 लाख रूपये प्रति वर्ष की दर से 15 वर्ष तक जमा करना होता है जिस पर लगभग 8 प्रतिशत तक का ब्याज सरकार द्वारा प्रदान किया जाता है। यह ब्याज की दर भारतीय रिवर्ज बैंक के द्वारा घटाया या बढ़ाया जा सकता है।

वन–स्टाप सेंटर योजना 2015

महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा निर्भया फण्ड से दो मुख्य योजनाएँ चलायी जा रही है। पहला वन स्टॉप सेंटर (ओ0एस0सी) जिसे 'सखी केन्द्र' के नाम से भी जाना जाता है। दूसरा 'महिला हेल्पलाइनों का सार्वभौमिकरण योजना' (ओ0एम0सी0)। हिंसा और संकट के समय अवयस्क लड़कियों सहित सभी महिलाओं की सहायता के लिए केन्द्र सरकार द्वारा 'सखी केन्द्र' योजना को तैयार किया गया। केन्द्र, राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों को इसके लिए वित्तीय सहायता देता है। वन स्टॉप सेंटर योजना निजी और सार्वजनिक दोनों स्थलों पर महिलाओं के विरूद्ध होने वाली हिंसा तथा अपराध को रोकने तथा पीड़िता को सहायता प्रदान करने का कार्य करता है। साथ ही सभी पीड़ित बालिकाओं और महिलाओं को एक ही स्थान पर समन्वित रूप से सहायता प्रदान करता है।

महिला हेल्प लाइन योजना 2015

इस योजना को 1 अप्रैल 2015 को लागू किया गया। इस योजना के द्वारा हिंसा से पीड़ित सभी महिलाओं को 24 घण्टे की अपातकालीन टोल–फ्री हेल्पलाइन से सेवाएँ प्रदान की जाती है। यह हेल्पलाइन प्रत्येक राज्यों तथा केन्द्रशासित प्रदेशों में स्थापित किया गया है। सार्वजनिक और निजी सभी क्षेत्रों में हिंसा से ग्रसित महिलाओं को 24 घण्टे और सप्ताह में सात दिन फोन सहायता, ई–मेल, वेब पेज, फेसबुक, ट्विटर, माईगव आदि के माध्यम से सहायता दी जाती है।

स्टैंड–अप इण्डिया 2016

स्टैंड–अप इण्डिया योजना के तहत प्रत्येक बैंक शाखा द्वारा एक अनुसूचित जाति और एक अनुसूचित जनजाति तथा एक महिला उद्यमी को 10 लाख से एक करोड़ तक के लोन की सुविधा प्रदान कर महिला उद्यमिता को बढ़ावा दिया जा रहा है। इस योजना को सन् 2025 तक के लिए बढ़ा दिया गया है।

महिला ई–हार्ट योजना 2016

इस योजना को 'महिला एवं बाल विकास मंत्रालय' तथा 'राष्ट्रीय महिला कोष' दोनों के पहल से 7 मार्च सन् 2016 को लॉन्च किया गया। यह 'डिजिटल इण्डिया' का हिस्सा है जो स्टैंड–अप इण्डिया के रूप में महिला उद्यमियों को सशक्त बनाकर अर्थव्यवस्था में उनकी वित्तीय भागीदारी को मजबूत करता है। महिला ई–हार्ट एक ऑनलाइन मार्केटिंग प्लेटफार्म है। इस ई–प्लेटफार्म पर महिला उद्यमियों द्वारा निर्मित उत्पादों को प्रदर्शित किया जाता है। यह देश का पहला महिला केन्द्रित मार्केटिंग ई–पोर्टल है।

प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना 2016

प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना, महिलाओं को मिट्टी के चूल्हें से मुक्त करने के लिए 1 मई सन् 2016 को पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्रालय द्वारा शुरू किया गया। गरीबी रेखा से नीचे जीवन–यापन करने वाले परिवारों के महिला सदस्य को इस योजना के तहत मुफ्त रसोई गैस कनेक्शन दिया जाता है। इस योजना का उद्देश्य खाना पकाने के लिए उपयोग में लाये जाने वाले पारम्परिक ईधनों (जीवाश्म ईधन) की जगह पर महिलाओं को मुफ्त एलपीजी गैस कनेक्शन प्रदान करके उन्हें सशक्त करना तथा उनके स्वास्थ्य स्तर को बेहतर बनाना था।

प्रधानमंत्री मातृ बन्दना योजना 2017

यह योजना 1 जनवरी सन् 2017 से लागू किया गया। इसमें 19 वर्ष या इससे अधिक आयु की गर्भवती महिलाओं और बच्चों को स्तनपान कराने वाली माताओं को तीन किस्तों में 5000 रू0 की सहायता राशि दी जाती है। यह राशि गर्भवती महिलाओं को आर्थिक सहायता के लिए दिया जाता है जिससे कि उनके पोषण तथा दैनिक आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके।

महिला शक्ति केन्द्र योजना 2017

'महिला शक्ति केन्द्र योजना' महिला एवं बाल विकास मंत्रालय की ओर से वर्ष 2017 में महिलाओं के संरक्षण एवं सशक्तिकरण के लिए शुरू किया गया। इसके माध्यम से ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं को सामाजिक क्रिया–कलापों में बढ़–चढ़कर भाग लेने तथा उनके कौशल क्षमता को विकसित करने के लिए उन्हें प्रेरित किया जाता है। यह योजना मुख्यतः तीन स्तरों, राष्ट्रीय, राज्य और जिला स्तर पर कार्य करती है।

महिला उद्यमिता मंच 2018

महिला उद्यमियों को ऑनलाइन सुविधाएँ देने के लिए केन्द्र सरकार ने नीति आयोग के द्वारा 16 दिसम्बर सन् 2018 को महिला उद्यमिता प्लेटफार्म को शुरू किया गया। यह एक व्यावसायिक योजना है जो पूरी तरह से 'नारी शक्ति' को समर्पित है। यह योजना मुख्य रूप से तीन आधारों पर बनाया गया है। पहला 'इच्छा शक्ति' यह इच्छुक महिलाओं को अपना व्यवसाय शुरू करने के लिए प्रेरित करती है। दूसरा 'ज्ञान शक्ति' यह उद्यमिता को बढ़ाने के लिए महिला उद्यमी को ज्ञान और उद्यमिक माहौल प्रदान करने में सहायता करता है। तीसरा 'कर्मशक्ति' यह उद्यमियों को व्यवसाय स्थापित करने और उसे आगे क्रियान्वित करने में व्यवहारिक सहायता देता है।

सुरक्षित मातृत्व आश्वासन सुमन योजना 2019

केन्द्रीय स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय के द्वारा इस योजना को 10 अक्टूबर 2019 को शुरू किया गया। इसका प्रथम लक्ष्य शत–प्रतिशत सुरक्षित प्रसव अस्पताल में कराने तथा मातृ एवं शिशु मृत्युदर को कम करना है। इस योजना के अन्तर्गत सभी गर्भवती महिलाओं तथा नवजात शिशुओं का सुरक्षित प्रसव से लेकर जन्म के 6 माह तक के शिशु और माता को मुफ्त स्वास्थ्य देखभाल और सेवाएँ प्रदान की जाती है।

महिला सुरक्षा और समानता के लिए बनाए गए उपर्युक्त सभी अधिनियमों तथा चलाये जा रहे सभी योजनाएँ महिलाओं की प्रस्थिति सुधारने में कारगर साबित हो रहे हैं परन्तु सामाजिक सुधार और जन–जागरूकता की गति इतनी धीमी है कि इसके उद्देश्य अनुसार परिणाम प्राप्त नहीं हो पा रहे हैं। हमें इस दिशा में अत्यन्त ही तीव्र गति से जन–जागृति और लोगों को शिक्षित करने की आवश्यकता है। क्योंकि 'शिक्षा' और 'जागरूकता' ही सभी दोषों से छूटकारा दिलाने का तथा महिलाओं का समग्र विकास करने के लिए आधारभूत साधन है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

* महाजन, कमलेश धर्मवीर, (1997): कन्टेम्प्रोरी इंडियन वूमेन, न्यू एकडमिक पब्लिशन, लक्ष्मी नगर, न्यू देलही.
* देसाई, नीरा, (1980): वूमेन इन माडर्न इंडियन, वोरा एण्ड कम्पनी बाम्बे.
* घोष, एस.के., (1989): वूमेन इन ए चेन्जिंग सोसायटी, आशीष पब्लिशिंग हाउस, न्यू देलही.
* इन्द्रा, (1951): स्टेटस आफ वूमेन इन अन्सिएंट इंडिया, बाम्बे, .
* कुमारी, प्रतिमा, (1975): चेंजिग वैल्यूज अमंग यंग वूमेन, रावत पब्लिकेशन.
* श्रीनिवास, एम.एन., (1928): द चेजिग पंजिशन आफ इडियन वूमेन, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
* आहूजा, राम, (1992): राईट्स आफ वूमेन–अ फेमिनिस्ट पर्सपेक्टिव, रावत पब्लिकेशन, जयपुर.
* मेहता, रमा, (1970): द वेस्टर्न एजूकेटेड हिन्दू वूमेन, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बाम्बे.
* Hate, C.A. : Changing Status of women in Developing India, A lite publication, Bombay.
* Hate, C.A. : (1930): The Socio-Economic condition of Educated women, A lite Publication.

बढ़ते उम्र के साथ स्वास्थ्य एवं खुशहाली : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

प्रो0 अंजू
समाजशास्त्र विभाग,
दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,
गोरखपुर, उ0प्र0
सुमन सिंह
शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग,
दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,
गोरखपुर, उ0प्र0

सारांश
उम्र बढ़ना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। हर व्यक्ति के जीवन में यह पड़ाव आता है। लेकिन उम्र बढ़ने के साथ–साथ ही उनेक समस्याएँ भी उत्पन्न होती है। जैसे स्वास्थ्य एवं अपने को खुशहाल बनाने रखने की समस्या। युवाओं में पश्चिमी जीवन शैली का आकर्षण और अन्य भौतिकापरक प्रक्रियाओं में उनमें भारतीय सामाजिक मूल्यों का ह्रास कर दिया है। नई पीढ़ी की परोक्ष/अपरोक्ष रूप से बुजुर्गों के प्रति संवेदनहीन बना दिया है। नई पीढ़ी के मूल्यों में आया यह बदलाव व बुजुर्गों के अन्तिम चरण को समस्याओं और तनाव से भर दिया है। प्रस्तुत अध्ययन इसी भौतिकतावादी और संस्कृति के नेतृत्व से उत्पन्न जटिलताओं और बढ़ते उम्र के साथ अपने स्वास्थ्य एवं खुशहाली को बनाये रखके की, इसी चुनौती को समझने का प्रयास है।

मुख्य शब्द : वृद्धावस्था, वृद्धाश्रम, स्वास्थ्य, खुशहाली, शारीरिक बदलाव, मानसिक बदलाव, आर्थिक स्थिति, परिवार,

प्रस्तावना

आयु बढ़ना प्राकृतिक परिवर्तन की एक क्रामिक, सतत प्रक्रिया है जो प्रारंभिक व्यस्तता काल से भी आरम्भ हो जाती है। प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था के दौरान, शरीर की बहुत सी क्रिया क्षमता धीरे–धीरे कम होने लगती है, इसी को वृद्धावस्था भी कहते हैं।

उम्र बढ़ने के साथ–साथ व्यक्ति के जीवन में स्वास्थ्य और खुशहाली एक महत्वपूर्ण भूमि निभाते हैं। इस अवस्था में शरीर इतना दुर्बल हो जाता है कि प्रत्येक बुर्जुग को किसी न कियी प्रकार की सहायता की आवश्यकता होती है। साथ ही व्यक्ति की मानसिक क्षमता भी कम होने लगती है एवं उसकी यादाश्त कमजोर हो जाती है इससे भी कहीं अधिक जरूरत बुढ़ापे में व्यक्ति को भावनात्मक सहारे की जरूरत होती है और उम्र बढ़ने के साथ–साथ व्यक्ति के जीवन में अनेक समस्याएँ आती है। जिसमें स्वास्थ्य समस्या एक महत्वपूर्ण कारक है। जैसे कम सुनाई देना, कम दिखाई देना, मनोवैज्ञानिक समस्याएँ, उच्च रक्तचाप, मधुमेह इत्यादि। एक सर्वे के मुताबिक 30 से 50 फीसदी बुजुर्गों मे ऐसे लक्षण मौजूद थे जो उन्हे अवसाद के शिकार बनाते हैं। भारत के सन्दर्भ में यह स्थिति और भी चिन्ताजनक है क्योंकि एक सरकारी रिपोर्ट के मुताबिक भारत के बुजुर्ग आबादी अगले दशक में 41 प्रतिशत तक बढ़ जाने का अनुमान है।

भारत में वैदिक संस्कृति में वृद्धजनों को परिवार व समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त था। आश्रम तथा पुरुषार्थ व्यवस्था ने व्यक्ति के दायित्व इस तरह निर्धारित किये जाते हैं कि वृद्धजन मानसिक तनाव से दूर रहकर अपने जीवन को उपयोगी बनाते थे तथा एक खुशहाल जीवन व्यतीत करते थे। परन्तु बदलते

समाज में वृद्धों की स्थिति पहले जैसी नहीं रह गयी है। आज औद्योगीकरण, नगरीकरण, व्यापारीकरण, आधुनिक शिक्षा एवं वैश्वीकरण ने भारतीय समाज तथा भारत के संयुक्त परिवार पर अपना महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। संयुक्त परिवार के टुटने एवं एकाकी परिवार के बढ़ने से भी वृद्धों के जीवन पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। आज भारतीय समाज मेंपरम्परा एवं आधुनिकता में द्वन्द देखा जा सकता है। बदलती हुयी भारतीय सामाजिक संरचना जिसमें एकाकी परिवार, संचार, यातायात के साधनों का विकास बदलते सामाजिक मूल्य, शिक्षा, व्यक्तिवादिता आदि ने वृद्धों को सामाजिक स्थिति को चुनौती दी है। परिणाम स्वरूप वे स्वयं को कमज़ोर एवं असहाय महसूस कर रहे है। जिससे उन्हें शारीरिक तथा सामाजिक क्षति पहुँचती है।

1981 में अंतर्राष्ट्रीय वृद्धों को होने वाली समस्याओं से बचने के लिए पहली बार वैज्ञानिक विचार–विमर्श किया गया। भारत में भी वृद्ध कल्याण केन्द्र जैसी संस्थायें कार्य कर रही है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1999 को वरिष्ठ नागरिक वर्ष घोषित कर इस ओर सभी का ध्यान आकर्षित किया। भारत ने भी वर्ष 2000 को राष्ट्रीय वृद्ध वर्ष घोषित किया।

पूर्व अध्ययन :

लिना ए0 अशोक के0 पद्मा एम0 कामथ बी, (2009) ने वृद्धजनों के सामाजिक एवं स्वास्थ्यगत समस्या के विषय में अध्ययन किया है। अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि अधिकांश वृद्धजन जो स्वास्थ्यगत समस्याओं से पीड़ित थे, वे 60–69 वर्ष के आयु वर्ग के थे और परिवार की उपेक्षा के शिकार थे। शोध इस तथ्य पर प्रकाश डालता है कि भारत में वृद्धजनों की सामाजिक सुरक्षा और मानसिक देखभाल के लिए बड़ी समख्या में परामर्श केन्द्रों की स्थापना किया जाए। वृद्धों को मिलने वाली सुरक्षा के मापदण्डों को लचीला बनाकर ज्यादा से ज्यादा वृद्धजनों को लाभान्वित किया जा सकता है।

जे0एच0 शुल्डन (1948) ने अपनी पुस्तक 'द सोशल मेडिसिन ऑफ ओल्ड ऐज' में अकेलेपन शब्द की धारणा का उल्लेख सर्वप्रथम किया। उन्होंने ने इस बात पर जोर दिया था कि अकेलापन सामाजिक परिस्थितियों का सीधा परिणाम नहीं होता वरन् व्यक्तिगत प्रतिक्रिया बाहरी सिथति जिसके द्वारा वृद्ध विभिन्न प्रतिक्रिया करते हैं। यह बहुत कुछ सामाजिक हानि से सम्बन्धित है। जैसे कि पति और पत्नी की मृत्यु, किसी प्रियजन की मृत्यु। संक्षेप में कह सकते हैं कि अकेलापन सम्बन्धों में कमी अथवा सम्बन्धों की हानि से सम्बन्धित नकारात्मक अनुभव है।

ट्यूनस्टॉल (1966) के अनुसार एक वृद्ध व्यक्ति थोड़े से रिश्तेदार हैं उसका सामाजिक रूप से पृथक होने की संभावना अधिक है। एक वृद्ध व्यक्ति अपने बच्चों के साथ या तो आर्थिक मदद के लिए रहता है या अपने आप को सामाजिक अकेलापन से दूर रखने के लिए रहता है।

राव (1975) ने वृद्ध जनों के शारीरिक समस्याओं के अध्ययन में यह पाया कि उच्च रक्तचाप, मधुमेह, मानसिक समस्या, हड्डी तथा जोड़ों में दर्द, वृद्धावस्था की आम बात ही है।

हैमिल्टन (1991) ने अपने में पाया कि औद्योगिकरण तथा नगरीकरण के कारण आये परिवहनों का प्रभाव वृद्धों पर पड़ा है जो भूमिका एवं स्तर में ह्रास के रूप में दिखायी देता है जिसके परिणाम स्वरूप वृद्धजन कमजोर तथा उपेक्षित है।

सिन्हा (1989) ने अपने अध्ययन में यह बताया कि ऐसे व्यक्ति जो सामाजिक घटनाओं से तनाव रहित रहते हैं, वे कुंठावों के प्रभाव का सामना करने में सक्षम होते हैं वे अपने अटद्वेदों को आसानी से हल करके संतोष तथा उपलब्धित की प्राप्ति कर सकते हैं। वस्तुतः अचछा समायोजन, प्रसन्नता, आत्मविश्वास, सामाजिकता, अतिरिक्त संवेंगो से मुक्ति स्व–सम्मान तथा उत्पादक क्रियाशीलता का परिचायक होता है। परिणामतः ऐसी स्थिति में वृद्धजन तनावमुक्त जीवन व्यतीत करते हैं।

विक्टर डिसूजा (1994) ने यह पाया कि आधुनिक समाजों में बढ़ती उम्र के साथ सामंजस्य की समस्या बड़ी है, तथा वृद्ध आर्थिक और सामाजिक स्तर पर सुरक्षा की दृष्टि से कमजोर अमहसूस करते हैं।

सुशीला मैथ्यू (1997) : वृद्धावस्था की अवधारणा पश्चिम देशों से ली गयी है। इसमें ऐसे व्यक्ति आते हैं, जिन्हें सामाजिक, आर्थिक कारणों से परिवार में व्यक्ति रखना नहीं चाहते तथा अपना घर खो चुके हैं। भारत में बहुत सी ऐजेन्सी हैं, जो ऐसे वृद्धों के लिए वृद्धाश्रम की संचालन करती हैं और उनका देखभाल करती हैं। परन्तु भारतीय संस्कृति के अनुसार परम्परागत विचारों ने बढ़ते वृद्धाश्रमों के प्रति चिन्ता व्यक्त की हे। वृद्धावश्रमों को प्रधानता नहीं देना चाहिए क्योंकि यह पारिवारिक संस्कृति और सामाजिक मूल्यों के टूटने को दर्शाती है। यह भारतीय मूल्यों के अनुरूप नहीं है।

अध्ययन का औचित्य :

उम्र बढ़ना एक स्वभाविक प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया से प्रत्येक व्यक्ति को गुजरना पड़ता है। उम्र बढ़ने के साथ–साथ व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक बदलाव आना एक स्वभाविक प्रक्रिया है। उस उम्र में स्वास्थ्य से सम्बन्धित अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं तथा शारीरिक समस्याओं के कारण व्यक्ति को सामाजिक मेल–जोल कम हो जाता है और आज के भौतिकवादी युग में परिवार में भी उसे उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है, जिससे वह अपने आपको अर्थहीन समझने के लिए बाध्य हो जाते हैं। अपनी पारी में जीवन व समाज से सामंजस्य बैठाने की कोशिश करते हैं। यह एक प्रासंगिक शोध का विषय है।

समाज में लम्बे समय से जड़ पकड़े सामाजिक मूल्य भौतिकता के भट चढ़ रहे हैं और नयी पीढ़ी गणितिय जोड़ घटाने से सही मार्ग को लेकर किंचित भ्रमित से हैं। पश्चिमी जीवन शैली की आकर्षण और अन्य भौतिकतापरक प्रक्रियाओं ने केवल जीवन को जटल बनाया है बल्कि इससे नयी पीढ़ी को परोक्ष, अपरोक्ष रूप से बुजुर्गों के प्रति संवेदनहीन भी बनाया है। वृद्ध व्यक्ति अपने पूरे जीवन काल में समाज की बदलती परिस्थितियों का गवाह होता है, परन्तु अचानक समाज में आये परिवर्तन उसे नयी पीढ़ी के प्रति उदासीन करते हुए उसके अंतिम चरण को समस्याओं और तनावों से भर देता है। प्रस्तुत अध्ययन इसी नव उदारवादी और भौतिकवादी संस्कृति से उत्पन्न जटिलताओं और बढ़ते उम्र के साथ स्वास्थ्य और खुशहाली के सामंजस्य को समझने का एक प्रयास हे।

प्राक्कल्पना :

1. बढ़ते उम्र के साथ व्यक्तियों में शारीरिक, आर्थिक और मानसिक समस्याएँ बढ़ती जाती हैं।
2. वृद्धजनों की देखभाल में परिवारों की उदासीनता बढ़ रही है।
3. उम्र बढ़ने के साथ–साथ व्यक्तियों में सामाजिक समायोजन में बाधा उत्पन्न होती है।
4. उम्र बढ़ने के साथ व्यक्ति के जीवन में स्वास्थ्य और खुशहाली एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

शोध के उद्देश्य :

1. उम्र बढ़ने के साथ–साथ व्यक्ति के जीवन में कौन–कौन सी समस्याएँ आती हैं, इसका अध्ययन करना।
2. बढ़े हुए उम्र के व्यक्ति (वृद्ध) की बीमारियों की स्थिति की जानकारी।
3. वृद्धों के अस्पताल जाने की स्थिति, स्वास्थ्य मूल्यांकन, पारिवारिक निर्णयों में वृद्धों की भूमिका के मूल्य, खाली समय का प्रयोग, सामाजिक समायोजन में बाधक तत्व तथा समाज के साथ उनका सामंजस्य का स्तर का अध्ययन करना।

अध्ययन पद्धति :

प्रस्तुत अध्ययन अन्वेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक शोध अभिकल्प पर आधारित है। इस अध्ययन का क्षेत्र उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जनपद में स्थित मानस विहार कालोनी के वृद्धजनों का चयन दैव निदर्शन

विधि से किया गया है। जिनका समग्र 80 है, जिसमें से 50 प्रतिशत वृद्धजनों का चयन किया गया है। इस तरह से 40 वृद्धों का अध्ययन वैयक्तिक साक्षात्कार के आधार पर किया गया है। इस अध्ययन हेतु एक साक्षात्कार अनुसूची का निर्माण किया गया है जिसमें जीवन में स्वास्थ्य एवं उनके खुशहाली और अन्य पहलुओं पर उत्तरादाताओं से सूचना संकलित की गयी है।

विश्लेषण :

1. बढ़ते उम्र के साथ–साथ स्वास्थ्य संतुलन एवं बीमारी की स्थिति :

बढ़ते उम्र के साथ होने वाली बीमारियों का प्रभाव व्यक्ति में दिखायी देने लगता है। इस अवस्था में बीमारियों के चलते एक व्यक्ति अपने स्वास्थ्य संतुलन रख पाता है कि नही। इस सम्बन्ध में उनकी स्थिति जानने का प्रयत्न किया गया है। जिसका वर्णन तालिका नं0–1 में देखा जा सकता है।

तालिका नं0–1

सूचनादाताओं में बीमारियों की स्थिति

कारक	आवृत्ति	प्रतिशत
1. उच्च रक्तचाप	07	17.5%
2. मधुमेह	10	15%
3. हृदय रोग	04	10%
4. चलने–फिरने की समस्या	09	22%
5. देखने सुनने की समस्या	08	20%
6. अन्य	02	5%
योग	40	100%

तालिका नं0–1 का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उम्र बढ़ने के साथ व्यक्ति में शारीरिक समस्याओं की स्थिति के अन्तर्गत 17.5 प्रतिशत लोग उच्च रक्तचाप की समस्या से पीड़ित हैं तथा 15 प्रतिशत मधुमेह की समस्या सेग्रसित हैं और हृदय रोग से पीड़ित लोगों का प्रतिशत 10 है। जिसमें चलने–फिरने की समस्या वालों का प्रतिशत 22.5 है। 20 प्रतिशत लोग देखने–सुनने की समस्या से पीड़ित है तथा अन्य समस्याओं से पीड़ित लोगों की संख्या 5 प्रतिशत है।

2. बढ़ते उम्र के व्यक्ति का परिवार में भूमिका :

एक व्यक्ति जो अपनी पूरी जिन्दगी परिवार के भरण–पोषण और एक मुखिया की जिम्मेदारी में बिताता है। हमेशा परिवार के लोग उसका निर्णय मानते हैं, किन्तु उम्र बढ़ने के साथ परिवार में उसका महत्व धीरे–धीरे घटने लगता है। परिवार में उसकी भूमिका में कमी आती है, कहीं न कहीं परिवार के महत्वपूर्ण निर्णयों में उन्हें नजर–अन्दाज किया जाता है, जो कि उसे खुशियों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखता है। परिवार के निर्णयों में उसकी भूमिका का विश्लेषण तालिका नं0–2 में किया गया है।

तालिका नं0–2

पारिवारिक निर्णयों में सूचनादाता की भूमिका

भूमिका	आवृत्ति	प्रतिशत
1. सूचना मात्र	18	45%
2. निर्णयात्मक भूमिका	10	25%

3. उपेक्षा	08	20%
4. कोई भूमिका नही	04	10%
योग	40	100%

तालिका नं0–2 का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि 45 प्रतिशत ऐसे लोग जिन्हें पारिवारिक निर्णयों की सूचना मात्र दी जाती है तथा 25 प्रतिषत लोगों की भूमिका निणयात्मक होती है, तो वहीं 20 प्रतिशत लोग ऐसे हैं जिनकी परिवार में निर्णय लेने में उपेक्षा की जाती है। 10 प्रतिशत ऐसे भी हैं जिनकी परिवार में निर्णय लेने में कोई भूमिका नहीं होती है। इस सन्दर्भ में देखा जाए तो 50 प्रतिशत से अधिक ऐसे लोग हैं जिनकी भूमिका परिवार के निर्णयों में नहीं या कम होती है।

3. बढ़ते उम्र के साथ सामाजिक समायोजन में बाधक तत्व :

समाज में समयोजन करने में व्यक्ति का बढ़ता उम्र विभिन्न प्रकार का बाधा पहुँचाता है। एक व्यक्ति का खराब स्वास्थ्य, सामाजिक व्यवस्था, समाज के बदलते मूल्य और नई पीढ़ी का व्यवहार तथा अन्य कई ऐसे कारक हैं जो उनके समायोजन में बाधक बनते हैं। जिसका वर्णन तालिका नं0–3 में देखा जा सकता है।

तालिका नं0–3

बढ़ते उम्र के साथ सामाजिक समायोजन में बाधक तत्व

बाधक तत्व	आवृत्ति	प्रतिशत
1. नयी पीढ़ी का व्यवहार	07	17.5%
2. बदलते मूल्य	05	12.5%
3. निजी खराब स्वास्थ्य	16	40%
4. सामाजिक व्यवस्था	8	20%
5. अन्य	04	10%
योग	40	100%

तालिका नं0–3 में वर्णित तथ्यों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि बढ़ते उम्र के साथ समयोजन में नयी पीढ़ी का व्यवहार 17.5 प्रतिशत बाधक है तथा 12.5 प्रतिशत बदलते मूल्यों से उनका समयोजन बाधित होता है। समयोजन में सर्वाधिक बाधक तत्व उनका निजी खराब स्वास्थ्य है जिसका प्रतिशत 40 है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था उनके समायोजन में 20 प्रतिशत बाधा पहुँचाते हैं। सामाजिक समयोजन में अन्य प्रकार के भी बाधक तत्व होते हैं जिनकी संख्या 10 प्रतिशत है।

4. उत्तरादाता का स्व मूल्यांकन :

बढ़ते उम्र के साथ व्यक्ति सदैव परिवार तथा समाज के साथ सामंजस्य बनाने हेतु प्रयासरत रहता है, क्योंकि एक व्यक्ति अपनी पूरी जिन्दगी में परिवार, समाज और राष्ट्र के निर्माण में ही लगा रहता है। एक व्यक्ति अपने बच्चों को समय और परिस्थितियों के अनुकूलन करना सिखाता है। वह स्वयं भी समाज से सामंजन स्थापित करने का प्रयत्न करता है किन्तु फिर भी कहीं न कहीं समस्याएँ आती रहती हैं। बढ़ते उम्र के साथ व्यक्ति के सामने सामाजिक सामंजस्य की समस्याएँ आती हैं। इस संदर्भ

में उत्तरदाता व्यक्तियों के स्वयं मूल्यांकन का स्तर जानने का प्रयास किया गया है, जो तालिका नं0–4 में देखा जा सकता है।

तालिका नं0–4

बढ़ते उम्र के साथ समाज के साथ स्वयं से सामंजस्य का स्तर

सामंजस्य का स्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
1. उच्च स्तर	23	57.5%
2. निम्न स्तर	13	32.5%
3. कह नहीं सकते	04	10%
योग	40	100%

तालिका नं0–4 का विश्लेषण करने पर हमें यह ज्ञात होता है कि व्यक्ति बढ़ते उम्र के साथ किस प्रकार वर्तमान परिस्थितियों में सामंजस्य बिठाता है और खाजी समय का प्रयोग किस प्रकार करता है तथा उसके समायोजन में बाधक तत्व से कैसे सामंजस्य स्थापित करता है। एक व्यक्ति अपने बढ़ते उम्र के साथ सामंजस्य से किस स्तर तक संतुष्ट है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति का बढ़ते उम्र के साथ सामंजस्य का उच्च स्तर 57.5 प्रतिशत है जबकि सामंजस्य का निम्न स्तर 32.5 प्रतिशत का है, वही 10 प्रतिशत ऐसे लोग है जिनका उत्तर है कि इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकते।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत बढ़ी उम्र के साथ स्वास्थ्य एवं खुशहाली से सम्बन्धित समस्याओं से सम्बन्धित समस्त पहलुओं की विवेचना किया गया है। जैसा कि अध्ययन में पाया गया है कि उत्तरदाताओं द्वारा उनकी सभी समस्याओं का अध्ययन जैसे – आर्थिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी, व्यावहारित, सामाजिक सामंजस्य तथा तनाव सम्बन्धी समस्यायों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि बढ़ती उम्र के साथ–साथ विभिन्न प्रकार के समस्याओं से सामना करना पड़ता है।

वर्तमान भौतिकवादी समाज में एक वृद्ध व्यक्ति अपनी स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं, तथा परिवार में अपनी उपेक्षा जैसी विभिन्न परिस्थितियों का सामना करता हुआ जीवन के अन्तिम पड़ाव से गुजर रहा है। समाज में विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों, मूल्यों का संक्रमण, नई पीढ़ी का व्यवहार और समायोजन में बाधक तत्वों के कारण भी बुजुर्गों में तनाव की स्थिति भी बढ़ रही है। नई पीढ़ी में बुजुर्गों के प्रति संवेदना एवं संजीदगी पैदा करना तथा साथ ही वरिष्ठ पीढ़ी को बदलाओं के अनुसार अपने को ढालना ही प्रस्तुत समस्या का समायोपयोगी हल हो सकता है।

सन्दर्भ :

1. अग्रवाल, उमेश चन्द, 'बढ़ते बुजुर्ग, घटती सूरक्षा' कुरुक्षेत्र, वर्ष 55 अंक–12, अकटूबर 2009, पृ0 54
2. कुमार अनिल, सिंह उदयभान, उदारवादी समाज में शिक्षक : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण्र। राधाकमल मुखर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 2018, अंक 1, जनवरी–जून 2018
3. जी0एल0 शर्मा, सामाजिक मुद्दे, रावत पबिल्केशन।
4. शर्मा, स्वार्णा कांटा, वृद्धावस्था, बागवा से आबक, बुकाहोलिक पब्लिकेशन।
5. राष्ट्रीय वृद्ध नीति राष्ट्रीय वृद्धजन शिक्षा संसाधन केन्द्र, इन्दिरा गाँधी, राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।
6. राय सत्येन्द्रनाि, वृद्धावस्था से सुखी जीवन, पब्लिकेशन प्रभात प्रकाशन।
7. हिमांशु रक्ष, स्वयंसेवी संस्था एजवेल फाउंडेशन।
8. शेल्डर द सोशल मेडिसीन ऑफ ओल्डऐज, अप्रकाशित शोध प्रबंध, पृ0 21
9. Lena A, Ashok, Padma, Karnath U, Hamath, A Health and Social problem of the Elderly: A Cross -sectional study in Udupi Taluka, Karnataka, Department of Community Medicine, Kasturba Medical College, Mangalore, India Original, Article, Jul. 2009

लैंगिक समानता एवं महिला सशक्तिकरण का वर्तमान समाज पर प्रभाव

प्रो0 अंजू
आचार्य, समाजशास्त्र विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर यूनिवर्सिटी गोरखपुर, उत्तर प्रदेश
पूर्णिमा तिवारी
शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर यूनिवर्सिटी गोरखपुर, उत्तर प्रदेश

सारांश

लैंगिक समानता एक सुदृढ़ और सुरक्षित समाज की वह नींव है जिस पर विकास रूपी इमारत बनाई जा सकती है। लैंगिक समानता का तात्पर्य यह नहीं है कि हम एक दूसरे की नकल करें, यह तो अस्वीकार अनुकरण होगा। लैंगिक समानता का अर्थ है कि हम एक दूसरे की विशेषताओं, योगदानों और भिन्नताओं का समायोजन करें। समाज में उपस्थित प्रत्येक व्यक्तियों के जैविक अंतर होने के बावजूद समाज के प्रत्येक संसाधन, अधिकार तथा अवसर इत्यादि के लिए भविष्य के विकास में समानता, आर्थिक भागीदारी, निर्णय के लिए स्वतंत्रता, जीवन जीने इत्यादि में समानता का अधिकार होना चाहिए। 2015 में संयुक्त राष्ट्र महासभा की 70वीं बैठक में अग्रिम 15 वर्षों के लिए सतत विकास के 17 लक्ष्य निर्धारित किए गए जिसमें लक्ष्य पांच लैंगिक समानता प्राप्त करने के साथ ही महिलाओं और लड़कियों को सशक्त करना है। प्रस्तुत शोध पत्र में लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण की व्यवहारिक आवश्यकताओं को प्रतिपादित करते हुए इसके लिए कानूनी, संवैधानिक तथा संस्थागत प्रयासों का मूल्यांकन किया गया है। लिंग और समानता तथा महिला सशक्तिकरण पर समाज में प्रचलित भेदभाव का स्पष्टीकरण करते हुए इसके उत्तरदाई कारणों की खोज करके अग्रिम बाधाओं से निपटने के लिए कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिए गए हैं, इसके कार्य योजना से समाज पर सकारात्मक प्रभाव होगा।

मुख्य शब्द – सुदृढ़, आर्थिक भागीदारी, सशक्तिकरण, सामरिकता, समावेशन, प्रकार्यवादी, जेंडर बजटिंग, उदारवादी, सार्वजनिक, एलजीबीटीक्यू, अभिव्यक्ति

लैंगिक समानता–

किसी भी समाज और शासन की सफलता का आंकलन इस बात से समझा जा सकता है कि वहां की महिलाएं कितनी संरक्षित एवं पोषित हैं। समाज में परिवर्तन की गति अति तीव्र है, समाज के विभिन्न क्षेत्रों सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक एवं धार्मिक आदि में। इन सभी परिवर्तनों में यदि सबसे अधिक प्रभावित होता है तो वह है व्यक्ति, वह किस तरीके से स्वयं को परिवर्तित करता है क्योंकि उसकी चिंता, तनाव तथा कुंठा सबसे पहले वह, अपने सबसे पास वाले पर निकलता है क्योंकि समाज सबसे पहले होता है घर के अंदर जितनी तीव्रता से समाज बदल रहा है, उतनी तीव्रता से हमारी मानसिक रूपरेखा नहीं बदल रही है। समाज में तथा परिवारों में जिस तीव्रता से बाह्य परिवर्तन आ रहा है उस तीव्रता से व्यक्तिगत रूप से हम उसे एकीकृत नहीं कर पा रहे हैं। किसी भी समाज को सुव्यवस्थित तथा सुसंगठित रूप से चलाने के लिए समाजीकरण की अहम भूमिका होती है, परिवार की संस्कृति का बच्चों की मानसिकता पर गहरा प्रभाव पड़ता है क्योंकि समाज 'हम' से बनता है, हम जैसे ही घर के बाहर जाते हैं हम समाज हो जाते हैं। जब हम एक दूसरे से जुड़ जाते हैं या अंतर क्रिया करते हैं तो समाज बन जाते

हैं। जो कुछ भी कृत्य हम कर रहे होते हैं वह अपने लिए ही करते हैं और हम किससे सुरक्षा या सामानता मांग रहे हैं स्वयं से?

इतिहास में लिंग समानता की महत्वपूर्ण घटनाएं, लिंग समानता के लिए संघर्ष और चर्चाएं इतिहास के चारों ओर देखी जा सकती हैं। विश्व भर में महिलाओं ने लिंग समानता के लिए संघर्ष किया है और इतिहास में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। महिलाओं के समान अधिकारों, उच्चतम न्याय और सामरिकता के लिए लड़ाई निरंतर जारी है, जो समाज में बदलाव लाने के लिए आवश्यक है। यू एन वूमेन, संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशों का समर्थन करती है, इस संस्था द्वारा मुख्य मानक निर्धारित किए गए हैं–महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण, महिलाओं के विरुद्ध हिंसा को समाप्त करना एवं शांति की स्थापना, महिलाओं का नेतृत्व तथा राजनीतिक भागीदारी, सुरक्षा एवं मानवीय कार्यवाही।

महिला किसी भी देश की वह आधारशिला है जिसके बिना किसी भी मजबूत परिवार, समाज और राष्ट्र की परिकल्पना ही नहीं की जा सकती है। हमारे देश के संविधान में समय–समय पर महिलाओं की स्थिति को मजबूत बनाने के लिए संशोधन किए गए हैं जिसका मुख्य कारण पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं के साथ लैंगिक आधार पर भेदभाव तथा परंपराओं, रीति रिवाज एवं मान्यताओं के जाल में लिप्त होने के कारण उन्हें समाज में बराबरी का दर्जा नहीं मिलता। यू एन वूमेन और यू एन डी पी संस्था द्वारा महिला सशक्तिकरण के लिए मुख्यता पांच मानक निर्धारित किए गए हैं–शिक्षा, श्रम तथा वित्तीय समावेशन, अच्छा स्वास्थ्य तथा जीवन, कौशल निर्माण का ज्ञान, निर्णय लेने में भागीदारी और हिंसा से मुक्ति। सशक्तिकरण से तात्पर्य उसे प्रक्रिया से है जिसमें व्यक्ति अपने जीवन से जुड़े सभी निर्णय को स्वतंत्र रूप से लेने और उसे क्रियान्वित करने की क्षमता आ जाती है, सशक्तिकरण कभी समाप्त न होने वाली एक प्रक्रिया है। नोबेल पुरस्कार विजेता रोजलीन यालोव के शब्दों में, "मानवता गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी, अशिक्षा, गृह युद्ध आदि से सदियों से जूझ रही है और अभी भी अगर पुरुषों को लगता है कि वह इन समस्याओं का समाधान अकेले ढूंढ लेंगे तो वह अपने तथा अपनी भावी पीढ़ी के साथ क्रूर मजाक कर रहे हैं"।

भारत के संदर्भ में यदि महिला सशक्तिकरण का मूल्यांकन किया जाए तो उत्तर भारत एवं दक्षिण भारत के तुलनात्मक संदर्भ में देखा जा सकता है कि दक्षिण भारत के राज्यों में जिन्होंने महिलाओं को वेतन भोगी श्रमिक के रूप में प्रोत्साहित किया उन समाजों ने अपनी आर्थिक समस्याओं के साथ–साथ अपने सामाजिक समस्याओं का भी समाधान ढूंढ लिया है। वहीं दूसरी तरफ उत्तर भारतीय राज्यों ने आर्थिक शक्ति के रूप में स्वीकार नहीं किया परिणाम स्वरुप इन समाजों की ना तो आर्थिक समस्याएं उलझी और ना ही सामाजिक समाज को स्वस्थ तथा प्रकार्यवादी रूप देने के लिए समावेशी मानवीय विकास की आवश्यकता है।

लैंगिक समानता भारतीय संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों, मौलिक कर्तव्यों और नीति निर्देशक सिद्धांतों में उल्लेखित है। भारतीय संविधान महिलाओं को न केवल समानता का दर्जा प्रदान करता है, बल्कि राज्य को महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए सकारात्मक कदम उठाने का अधिकार देता है। लैंगिक समानता के लिए कानूनी प्रावधानों के अलावा किसी देश के बजट में महिला को सशक्त करने के लिए तथा बाल कल्याण के लिए किए जाने वाले धन आवंटन को **जेंडर बजटिंग** के नाम से संबोधित किया जाता है। महिलाओं के विरुद्ध होने वाले भेदभाव को समाप्त करने और लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए 2015 से भारत सरकार ने औपचारिक रूप से वित्तीय बजट में जेंडर उत्तरदाई बजटिंग को अंगीकार किया था जिसका उद्देश्य राजकोषीय नीतियों के द्वारा लिंग संबंधी समस्याओं का समाधान करना है। लिंग समानता का उत्तरदायित्व भारतीय संदर्भ में पश्चिमी नारीवादी दृष्टिकोण नहीं हो सकता भारत का संविधान और सरकार की नीतियां उदारवादी दृष्टिकोण में विश्वास करती हैं।

भारतीय संविधान और लैंगिक समानता–

लैंगिक समानता अर्थात हर क्षेत्र में पुरुषों और महिलाओं दोनों को समान अवसर प्रदान करना, चाहे वह कार्य स्थल हो, अर्जित वेतन हो या प्रदान किए गए अवसर हो। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, अनुच्छेद 15, अनुच्छेद 16 और अनुच्छेद 39 कुछ महत्वपूर्ण अनुच्छेद हैं जो सामान्य की अवधारणा को व्याख्यायित करते हैं।

अनुच्छेद 14 समानता के अधिकार की बात करता है। यह एक मौलिक अधिकार है जो सुनिश्चित करता है कि प्रत्येक भारतीय नागरिक को कानून के समक्ष समान अवसर दिया जाए जाति, वर्ग, धर्म, लिंग, नस्ल आदि के आधार पर। अधिकांशत महिलाओं का कम उम्र में विवाह हो जाने के कारण उनके लिए उच्च शिक्षा हासिल करना और रोजगार के क्षेत्र में अग्रसर होना मुश्किल हो जाता है, जिससे वह हर छोटी छोटी चीज के लिए पुरुषों पर निर्भर हो जाती हैं।

अनुच्छेद 15 राज्य जाति, वर्ग, धर्म, लिंग आदि के आधार पर लोगों के बीच भेदभाव नहीं करेगा। कार्य स्थलों पर दी जाने वाली मजदूरी और पुरुषों तथा महिलाओं के साथ किया जाने वाला व्यवहार आसमान नहीं होना चाहिए।

अनुच्छेद 16 सार्वजनिक क्षेत्र की नौकरियों की नियुक्ति से संबंधित मामलों में भारत के सभी नागरिकों को समान अवसर प्रदान किए जाने चाहिए और ऐसे रोजगार के लिए धर्म, लिंग, जाति आदि के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए।

अनुच्छेद 39 पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए समान वेतन की बात करता है। पुरुषों और महिलाओं को उनके द्वारा किए जा रहे समान कार्य के लिए दिए जाने वाले वेतन में कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए।

अधिनियम एवं विधायन–

सती प्रथा निषेध अधिनियम, 1829,1987
हिंदू विधवा पुनर्विवाह, 1856
बाल विवाह निरोधक अधिनियम, 1929
मुस्लिम शरण अधिनियम, 1937
वेश्यावृत्ति निवारण अधिनियम, 1956 2005
प्रसूति सुविधा अधिनियम, 1961
समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976
लिंग परीक्षण तकनीकी अधिनियम, 1994
घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005

संस्थागत प्रयास–

राष्ट्रीय महिला आयोग, 1992, 31 जनवरी
महिला एवं बाल विकास मंत्रालय,2006, 30 जनवरी
राष्ट्रीय महिला कोष स्थापना, 1993
महिला दिवस, मातृत्व दिवस, बेटी दिवस
महिला हेल्पलाइन योजना (1090),2012,6 अगस्त

उपर्युक्त विवेचनाओं से स्पष्ट है कि समाज में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति गाड़ी के पहिए की तरह जिस प्रकार समाज रूपी गाड़ी निरंतर गतिशील है और इस गतिशीलता को बनाए रखना के लिए दोनों की आवश्यकता बराबर है। समाज के विभिन्न क्षेत्रों में महिला एवं पुरुष की समान सहभागिता द्वारा देश के सर्वांगीण विकास का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। लैंगिक समानता को ही सतत विकास का आधार माना गया क्योंकि लैंगिक समानता को बढ़ावा देना महिला सशक्तिकरण के लिए अति महत्वपूर्ण शर्त है। देश की लगभग आधी

आबादी का प्रतिनिधित्व महिलाएं करती हैं समावेशी विकास महिलाओं के प्रतिनिधित्व के अभाव में असंभव है।

सुझाव–

- 'भारत में लैंगिक समानता के प्रति जागरूकता फैलाने में स्कूली शिक्षा और सामाजिक संस्कृति भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, यौन शिक्षा, जागरूकता अभियान, कन्या भ्रूण हत्या का पूर्ण उन्मूलन, दहेज और बाल अपराध के कुप्रभाव इत्यादि के प्रति जागरूकता का संदेश समाज तक पहुंचाया जाना चाहिए।
- समाज में महिला और पुरुष का उनकेअधिकारों, जिम्मेदारियां और अवसरों के क्षेत्र में समान माना जाए उनकी भिन्नताओं का सम्मान किया जाए और उन्हें बराबरी का अधिकार प्राप्त हो।
- महिलाओं को पुरुषों की तुलना में समान कार्य के लिए अपेक्षाकृत कम वेतन दिया जाता है जिससे महिलाओं की आर्थिक स्वाधीनता, आत्म सम्मान और जीवन की गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
- लैंगिक पहचान और अभिव्यक्ति के अधिकार जिसमें ट्रांसजेंडर (एलजीबीटीक्यू) को उनकी आत्म निर्धारित लैंगिक पहचान और अभिव्यक्ति का सम्मान, स्वीकार तथा सुरक्षा मिलनी चाहिए।
- महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और निर्णय लेने की अवसरों में समान भागीदारी तथा महिलाओं के आत्मसम्मान, आत्मरक्षा, आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास को बढ़ाने के लिए उन्हें सकारात्मक रूप से प्रोत्साहित करना चाहिए ।
- महिलाओं के साथ पुरुषों की साझेदारी और सहयोग को बढ़ावा देना, जिससे दोनों को सामान जिम्मेदारी और लाभ का अनुभव प्राप्त हो सके।

➢ **संदर्भ ग्रंथ सूची** –

- डॉ. वी. एन. सिंह, आधुनिकता एवं नारी सशक्तिकरण, रावत पब्लिकेशंस, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ 189 दृ 206 ।
- नासिरा शर्मा, औरत के लिए औरत, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली 2010, पृष्ठ 7।
- भारतीय समाज में लैंगिक समानता ट्रांसजेंडर अधिकार–भारतीय प्रकाशन
- भारत का संविधान–जय नारायण पांडे
- दैनिक जागरण, 13 अक्टूबर 2020
- राष्ट्रीय सहारा, 8 मार्च 2012, अलका आर्य।
- जनसत्ता, 8 मार्च 2021

भारत में अनूसूचित जनजाति एवं जनसंख्यात्मक विवरण : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

सुष्मिता सिंह
शोध छात्रा – समाजशास्त्र विभाग
स्वतंत्रता संग्राम सेनानी विश्राम सिंह राजकीय पीजी कालेज चुनार मिर्जापुर

प्रस्तावना – सम्पूर्ण विश्व में सभ्य और असभ्य कहे जाने वाले दो भिन्न – भिन्न समाज विद्यमान रहती है। सभ्य समाज में वे होते हैं जो आधुनिक दृष्टिकोण से शिक्षा के नये आयामों को स्वीकार कर अपनी संस्कृति, जीवन, मूल्य, व्यवहार, धार्मिक मूल्यों एवं मान्यताओं, आचार विचारों में परिवर्तन लाकर पर्यावरणीय परिस्थितियों से सामंजस्य स्थापित कर आगे पढ़ते है जिसे हम शिक्षित व सभ्य समाज की श्रेणी में रखते हैं।

वही दूसरी ओर असभ्य समाज में वे होते हैं जो अनन्तकाल तक अपनी संस्कृति विचार एवं मान्यताओं को अपनाते हुए जंगलो, पहाड़ों एवं पठारी क्षेत्र में निवास करते हैं। शिक्षा एवं परिवर्तन के नये आयामों से कोषो दूर अपनी पुरानी परम्पराओं पर ही अपना सम्पूर्ण जीवन जीते है जिन्हे हम आधुनिक दृष्टिकोण से पिछड़े असभ्य समाज की श्रेणी में रखते हैं।

वास्तविकता यह है कि सभ्य और असभ्य समाज के बीच एक लम्बी रेखा खीची हुई है जो इन दोनों समाजों को एक दूसरे से पृथक–पृथक करती है। इसी पृथकता के कारण ही हम इस असभ्य समाज को ''जनजाति'' की संज्ञा देते है। जनजाति लोग जैसी परिस्थिति वेश–भूषा निवास स्थान एवं रहन–सहन के साथ रहते हैं, उन्ही के आधार पर उन्हें कई नामों से सम्बोधित करते हैं। इन्हें – जंगली, वनवासी, वन्यजाति, आदिवासी, आदिम जाति, गिरिजन, देशज, एवोरिजनल आदि और इनमें आदिम रूप की झलक पाते हुए ''आदिवासी'' जैसे नामों से पुकारा करते हैं।

इस आदिवासियों को विश्व के समस्त मानवशास्त्रियों व समाजशास्त्रियों ने अलग – अलग नामों से सम्बोधित किया है – रिजले एवं लेके के साथियों ने इन्हें ''आदिवासी'' (एवॉरिजिस) नाम से पुकारा है। सर वेल्स ने इन्हें ''पर्वतीय जनजातियों'' (हिलट्राइव) की संज्ञा दी तथा हट्टन की नजर में ये ''आदिम जातिय'' प्रिमिटिव ट्राइल्स) के रूप में जाने गए सन् 1921 की जनगणना रिपोर्ट में इन्हें ''पहाड़ी'' व ''वन्य जाति'' के नाम से पहचान मिली। बाद में सन् 1931 की जनगणना रिपोर्ट में इन्हें ''आदिम जनजाति'' का नाम दिया गया प्रसिद्ध भारतीय समाजशास्त्री जी.एस.घुरिये जनजातियों को ''पिछड़े हुए हिन्दु'' कहा है। श्री एम.एल. श्रीकान्त के अनुसार जनजातियाँ विभिन्न समयों में विभिन्न नामों से जानी गयी है जैसे – अरण्यक, परज, आदिवासी मुख्य हैं।

इस प्रकार सभी विचारकों ने जनजातियों के लक्षणों के अनुरूप उन्हें विभिन्न नामों से विभूषित किया जिसमें विदेशी एवं भारतीय सभी प्रकार के विचारक सम्मिलित हैं। इन सभी मानवशास्त्रियों व समाजशास्त्रियों के मतभेद के कारण भारत में जनजातियों के लिए एक सटीक नाम पर विचार किया गया जिसमें भारतीय संविधान ने देश के जनजातियों के लिए एक नई परिभाषा का पादुर्भाव किया जिसमें इन जनजातियों को हमारे संविधान के अनुसार ''अनुसूचित जनजातियों'' (Scheduled Tiribes) नाम से सम्बोधित किया गया।

मुख्य शब्द – आदिवासी, जनजाति, जनसंख्या, जनगणनावर्ष।

जनजातियों की विशेषताएँ –

श्यामचरण दूबे के अनुसार भारतीय सन्दर्भ में किसी भी जनजाति को सन्तोषजनक एवं निश्चित रूप से परिभाषित करना एक कठिन कार्य है, उनके द्वारा कुछ ऐसे सूचकों का वर्णन किया गया है, जिसके आधार पर जनजाति लोगों को भारत के अन्य लोगों से अलग किया जा सकता है। जनजातिपन के आधार को निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है –

1. वे भारत भूमि के सबसे पुराने निवासी हो।
2. उनकी अन्य लोगों से तुलनात्मक भौगोलिक पृथकता होनी चाहिए।
3. अपनी सांस्कृतिक अनुपमता, भाषा, संस्थाओं, विश्वास और प्रथाओं आदि के आधार पर वे समाज के अन्य लोगों से काफी भिन्न नजर आते हो।
4. जनजाति के सदस्यों में परिवर्तन की न्यूनतम अभिलाषा होनी चाहिए। उनमें एक प्रकार की मनोवैज्ञानिक रूढ़िवादिता होनी चाहिए जो उन्हें उनकी प्राचीन प्रथाओं से जोड़े रखें।
5. उनके प्रोद्यौगिक एवं आर्थिक विकास के स्तर निम्न हों।
6. वे घने जंगलों एवं पहाड़ों में अपेक्षाकृत पृथक जीवन बिताते रहे हों।

भारत में अब तक जनजातियों को कई नामों से सम्बोधित किया जाता रहा है। किन्तु आजादी के बाद संविधान निमार्ण समिति के अध्यक्ष डॉ० भीमराव अम्बेडकर के नेतृत्व में जनजातियों के लिए संवैधानिक नाम के रूप में ''अनुसूचित जनजाति'' का प्रयोग होना आरम्भ हुआ।

भारत में जनगणनाओं के आधार पर जनजाति जनसंख्या तथा प्रतिशत का ब्यौरा –

जनगणना वर्ष	भारत में जनजातियों की जनसंख्या	जनजातियों की जनसंख्या प्रतिशत में (भारत की सम्पूर्ण जनसंख्या)
1951	1,91,16,98	5.36
1961	2,98,83,070	6.51
1971	38,015,162	6.14
1981	5,38,00,000	7.58
1991	6,78,00,000	8.05
2001	8,83,26,240	8.2
2011	10,42,81,034	8.6

इस सारणी द्वारा 1951 से लेकर 2011 तक के जनगणनाओं में जनजाति जनसंख्या एवं जनजातियों के जनसंख्या का प्रतिशत (भारत की सम्पूर्ण जनसंख्या में) स्पष्ट किया गया है। 1951 की शताब्दी में जनजातिय जनसंख्या में 25.65 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज हुई। भारत–पाक विभाजन के बाद 1971 के जनगणना में जनजातियों की संख्या 6.18 से घटकर 6.1 प्रतिशत हो गई।

भारत में अनुसूचित जनजातियों की सर्वाधिक जनसंख्या ''मध्य प्रदेश'' में पाई जाती है। इसके बाद ये अनुसूचित जनजातियां उड़िसा तथा बिहार में पाई जाती है। केन्द्रशासित प्रदेशों में भी जनजाति जनसंख्या पाई जाती है। इन जनजातियों का सर्वाधिक प्रतिशत भाग 8 राज्यों में पाया जाता है। मध्य प्रदेश, बिहार, उड़िसा, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, आन्ध्रप्रदेश तथा पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा तथा मणिपुर

राज्यों में लगभग एक तिहाई जनसंख्या जनजातियों की है। अण्डमान निकोबार में अधिकांश जनसंख्या जनजातीय लोगों की है।

भारत में अन्य राज्यों की तुलना में सबसे कम जनसंख्या जनजातियों की उत्तर प्रदेश प्रदेश में पाई जाती है। जनगणना 2011 के अनुसार उत्तर प्रदेश की कुल जनसंख्या 19,98,12,341 हैं। जिसमें अनुसूचित जनजातियों का प्रतिशत केवल 0.06 ही प्राप्त हुआ है। यदि 2001 के जनगणना के अनुसार देखे तो यह प्रतिशत और कम 0.01 प्रतिशत की प्राप्त हुआ है। अतः अन्य राज्यों की तुलना में जनजातीय जनसंख्या का प्रतिशत इस राज्य में काफी कम है।

भारतीय संविधान की धारा 550 में विभिन्न जनजातियों को अनुसूचित जनजाति घोषित किया गया हैं। सन् 1941 में की गई जनगणना में जनजातियों की कुल जनसंख्या 2,7,12,000 दर्ज की गई थी। भारत–पाक विभाजन के बाद 1951 में इनकी कुल संख्या घटकर 1,91,16,498 हो गई जो उस समय देश की कुल जनसंख्या का 5.36 प्रतिशत था। सन् 1956 में राज्यों के पुर्नगणन के बाद अनुसूचित जनजातियों की कुल संख्या 2 करोड़ 25 लाख आँकी गई।

भारत में 1941 से लेकर 2011 तक अनुसूचित जनजातियों के अन्तर में काफी बदलाव आते रहे हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या 1,21,085,497,7 (17.70) हैं, जिसमें अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या 1,042,810,34 (8.6 प्रतिशत) दर्ज की गई और इन जनजातियों के जनसंख्या वृद्धि पर प्रकाश डाले तो 2001 में जहाँ 25.5 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गई थी, वही 2011 में यह जनसंख्या वृद्धि दर घटकर 23.7 प्रतिशत हो गई यह एक विचारणीय समस्या है कि जहाँ एक ओर हमारे देश में अन्य जातियों में जनसंख्या वृद्धि में बढ़त पायी गयी वही दुसरी ओर जनजातियों के जनसंख्या वृद्धि दर में बढ़त के बजाय कमी पाई गयी हैं।

क्षेत्र आधारित भारत की प्रमुख जनजातियाँ –

प्रमुख जनजातियाँ	निवास क्षेत्र
मुण्डा हो सन्थाल	छोटा नागपुर का पठार (बिहार)
सन्थाल	झारखण्ड के जंगलों में
गारो, खासी, जयन्तियाँ	पूर्वोत्तर राज्यों में
भोटिया जोनसार बाबर	उत्तराखण्ड
तोड़ा	तमिलनाडु
बकराल, गुज्जर	जम्मू कश्मीर
हिल मारिया गोड़	मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़
कूकी	असम के लुसाई प्रदेश में

भिल	गुजरात, राजस्थाना, मध्यप्रदेश के कुछ क्षेत्र
जुआंग	उड़िसा की क्योंझर व धेनकनाल रियासतों में
नागा जनजाति	नागालैण्ड
नायर जनजाति	गुजरात का मालावार तट
पनिका जनजाति	मध्य प्रदेश
चेंचू जनजाति	हैदराबाद

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आहुजा राम – सामाजिक समस्याये रावत पब्लिकेशन नई दिल्ली।
2. नदीम हसनैन – जनजातीय भारत (आठवाँ संस्करण)।
3. गुप्ता एवं शर्मा – सामाजिक मानवशास्त्र साहित्य भवन पब्लिकेशन (आगरा)।
4. गिलिन और गिलिन – सांस्कृतिक मानवशास्त्र।
5. डी. एन. मजुमदार, टी.एन. मदान – सामाजिक मानवशास्त्र परिचय।
6. डॉ. बी.आर.अम्बेडकर – शुद्रों की खोज, लखनऊ, बहुजन कल्याण प्रकाश।
7. गुप्ता, दीपांकर (एडी) – स्ट्रटीफिकेशन इन इण्डिया, न्यू देलही, रोज पब्लिकेशन,1992

पत्र – पत्रिकायें :–

- दैनिक समाचार एवं पत्र – पत्रिकाएँ व कुरूक्षेत्र में प्रकाशित लेख।

****

युवा वर्ग में बढ़ते नशे की समस्या : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

शिवम सिंह
शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग
महाराज बलवंत सिंह पी०जी० कॉलेज गंगापुर, वाराणसी
प्रो० आलोक कुमार कश्यप
महाराज बलवंत सिंह पी०जी० कॉलेज
गंगापुर, वाराणसी

सारांश

नशीले पदार्थों का उपयोग आदिकाल से ही विविध रूपों में हो रहा है। नशीले पदार्थों की उपयोगिता स्वास्थ्य समस्याओं के निराकरण में काफी लंबे समय से रही है, लेकिन आजकल इसका प्रयोग बहुधा व्यसन या लत के रूप में होने लगा है। व्यक्ति अपने निजी कर्म से इसका उपयोग अत्यधिक मात्रा में करने लगा है, और एक तरह से वह इसका व्यसनी हो गया है। व्यसनी होने के कारण व्यक्ति का निजी और सामाजिक परिवेश दूषित हो गया है और वह विघटन का शिकार हो गया है।

मुख्य शब्दः नशीले पदार्थों का व्यसन, तस्करी निषेध दिवस, व्यसन, युवा वर्ग

प्रस्तावना–

आज के समय में नशा युवा वर्ग में पनपने वाला एक ऐसी बुराई है जो गांव से लेकर शहरों तक फैली हुई है। आज का युवा वर्ग पथ भ्रमित हो रहा है, और वह अपने समस्याओं से जब छुटकारा नहीं पता, तो उन्हें भूलने के लिए नशा का सहारा लेना शुरू करता है।

आज हमारे सामने एक सबसे बड़ी सामाजिक समस्या पैदा हो रही है, युवा वर्ग नशे का शिकार हो रहा है, जो कल के होने वाले देश के बहादुर कर्णधार हैं, आज वही हुआ सबसे ज्यादा नशे का शिकार हो रहे हैं, जिनका देश की उन्नति में अपनी ऊर्जा दे करना है, वह युवा अपनी बहुमूल्य शारीरिक और मानसिक ऊर्जा को चोरी लूटपाट और हत्या जैसी सामाजिक कुरीतियों में नष्ट कर रहे हैं।

आज का 90% युवा किसी न किसी प्रकार के नशे का शिकार है। जिस तरह से तकनिकीकरण (टेक्नोलॉजी) विकसित हुई है,ठीक उसी भांति नशे के सेवन में भी टेक्नोलॉजी विकसित हुई है। आज का युवा मदिरा और हेरोइन जैसे नशीले पदार्थों का नशा नहीं बल्कि दवाओं का भी प्रयोग नशे के रूप में करने लगा है, इसकी सबसे बड़ी वजह यह है, कि इस तरह की दवाई आसानी से युवाओं की पहुंच में है,और इसके सेवन से घर या समाज में किसी को एहसास भी नहीं होता कि इस व्यक्ति ने किसी नशीले पदार्थों का सेवन किया है, वर्तमान समय की चकाचौथ भरी समाज में व्यक्ति इतना स्वार्थी हो गया है,कि उसे मालूम ही नहीं रहता की उसका बच्चा किस रास्ते पर जा रहा है, और क्या कर रहा है, कोई परवाह नहीं बस बच्चे की ख्वाहिश है,पूरी करते जा रहे। आज नशीले पदार्थों के सेवन से लोग अपना जीवन नर्कमय बना रहे हैं। ये नशीले पदार्थ क्षणिक समय के लिए नशा करते हैं, जिसमें व्यक्ति सुख की अनुभूति करता है और नशे का प्रभाव खत्म होते ही जब वास्तविकता में आता है, तो व्यक्ति फिर से नशीले पदार्थ को लेना चाहता है, कुछ ही दिनों में उसे इन नशीले पदार्थों की लत लग जाती है।

स्कूल कॉलेज में ड्रग्स नशीली दवाइयां चोरी छुपे विक्रय की जा रहे हैं जो की युवाओं के भविष्य को काल के गर्त में धकेल रही है। इन नशीले पदार्थों का प्रयोग करने के बाद जल्द से जल्द इसकी लत लग जाती है। इसके बाद लोग चाह कर भी इससे छुटकारा नहीं ले पाते हैं। बच्चे अपनी पॉकेट मनी को खर्च करके इसे ग्रहण करने लगते हैं। जल्द ही यह सेवन करने वाले व्यक्ति को पूरी तरह से गर्त में धकेल देती है। आज देश के कई राज्यों में इन नशीले पदार्थ को चोरी छुपे खरीदा और बचा जा रहा है।

अंतर्राष्ट्रीय नशीले पदार्थ सेवन और तस्करी निरोध दिवस–

सर्वप्रथम संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा वर्ष 1987 में अंतरराष्ट्रीय मादक पदार्थ सेवन और तस्करी निरोध दिवस मनाया गया था। विश्व ड्रग्स रिपोर्ट वर्ष 2017 के अनुसार जो की संयुक्त राष्ट्र ड्रग्स और अपराध कार्यालय (UNOD) ने जारी किया, लगभग एक चौथाई बिलियन लोगों ने वर्ष 2015 में कम से कम एक बार नशीले पदार्थों का उपयोग किया है। इसमें से लगभग 29.5 मिलियन लोग या वैश्विक वयस्क आबादी का 0.6% नशीले पदार्थ व्यसन के उपयोग से होने वाले रोगों से पीड़ित थे।

भारत में प्रत्येक वर्ष 2 अक्टूबर को राष्ट्रीय मादक पदार्थ विरोधी दिवस मनाया जाता है, जिसका उद्देश्य भारत को नशीले पदार्थों से मुक्त और सम्मान को बनाए रखना है। नशीले पदार्थों का सेवन करना हमारे समाज के लिए सबसे ज्यादा हानिकारक है। यह प्रवृत्ति व्यक्ति को ही नहीं बल्कि समाज को भी समान रूप से प्रभावित करती है तथा इसके कारण सही दिशा में निर्णय लेने की क्षमता में कमी और करियर परिवार सगे संबंधी दोस्तों एवं नागरिक भावना की तुलना में नशीले पदार्थों के सेवन को भावना प्राथमिकता देती है।

राष्ट्रीय कार्यक्रम मादक द्रव्य मिशन दुरुपयोग की रोकथाम और तस्करी निरोध से संबंधित स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय (MOHFW)) और सामाजिक न्याय और सशक्तिकरण मंत्रालय (MSJE), भारत सरकार देश में शराब और मादक पदार्थों की मांग में कमी के लिए नीतियों और मादक द्रव्य मुक्ति कार्यक्रम (DDAP) के साथ कार्यरत है।

नशीले पेय पदार्थों के दुरुपयोग की रोकथाम से संबंधित कई ई स्वास्थ्य वेब आधारित कार्यक्रम है, जैसा की राष्ट्रीय मादक पदार्थ निर्भरता उपचार (NDDTC), दिल्ली ने ई मदद (alcoholwebindia-in/intervention) और परिवार कल्याण संस्थान ने तंबाकू समाप्ति के लिए शुरू किए गए एम–सेशन कार्यक्रम (nhp-gov-in/quit&tobacco) का संचालन किया। राजस्व विभाग, केंद्र सरकार स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम 1985 और स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम 1988 में अवैध आवागमन की रोकथाम की अनुपालन करता है।

भारत में नशीले पदार्थ व्यसन की स्थिति –

संयुक्त राष्ट्र रिपोर्ट के अनुसार दक्षिण एशिया में भारत हेरोइन का बड़ा उपभोक्ता देश है वर्ष 2001 के एक राष्ट्रीय सर्वेक्षण में भारतीय पुरुषों में अफीम सेवन की उच्चतर 12– 60 साल की उम्र तक के लोगों में 0.7% प्रतिमा देखी गई है, रिपोर्ट के अनुसार 2008 में भारत ने 17 मेट्रिक टन हेरोइन खपत और वर्तमान में 60–70 मीटर प्रति वर्ष अफीम की खपत होती है।

सर्वेक्षणों के अनुसार भारत में पंजाब को ड्रग्स की समस्या से सर्वाधिक पीड़ित पाया जाता है। भारत सरकार के सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय के अध्ययन में पंजाब के 10 जिलों भटिंडा, फिरोजपुर, जालंधर, कपूरथला, गुरदासपुर, होशियारपुर, पटियाला, संगरिया, मोगा और तरनतारन को शामिल किया

गया है। पंजाब में ड्रग्स का सेवन करने वालों की संख्या 232856 है। 89% नशा करने वाले शिक्षित और साक्षर हैं, पंजाब में सबसे अधिक गांव 56% में होता है।

नशीली दवाओं का सेवन रोकने के उद्देश्य से हरियाणा सरकार ने शराब और पदार्थ (ड्रग्स) दुरुपयोग के रोकथाम के लिए सहायता के केंद्रीय क्षेत्र योजना नामक एक योजना लागू की है, इस योजना के तहत शहरी स्थानीय निकाय, योग्य गैर सरकारी संगठनों और पंचायती राज संस्थाओं को सरकार की तरफ से वित्तीय सहायता प्रदान की गई है, जो नशे की पुनर्वासन के लिए संपूर्ण सेवाएं प्रदान करेंगे। सामाजिक सुधार व्यसन से मुक्त करने में लगे चरित्र से बरदास ट्रस्ट और एनजीओ (NGO) ने कहा है, कि जेलों में लगभग 80% कैदी तंबाकू, गांजा, स्मैक, अल्कोहल के आदी हैं। इन्होंने सुझाव दिया है कि जेल में कैदियो की निराशा दूर करने के लिए अधिक सलाहकारों की आवश्यकता है,जो इन्हें इसके दुष्परिणामों से बचा सके।

नारकोटिक्स कंट्रोल ब्यूरो के दिल्ली जोनल यूनिट में ट्रक दुरुपयोग के खिलाफ लड़ाई में नारकोटिकड्रग्स एंड साइकॉट्रॉपिक सब्सटेंस एक्ट 1985 के अनुसार समान शक्ति रखने वाले पुलिस, उत्पाद शुल्क, राजस्व खुफिया निदेशालय जैसे हितधारकों का उपयोग करने का सुझाव दिया है। संस्था ने एनडीपीएस की धारा 64 लागू करने की आवश्यकता पर जोर दिया है, जिसने कहा गया है अपनी इच्छा से इलाज करने वाले के लिए अभियोजन पक्ष द्वारा या परीक्षा प्रदान की गई है, कि अगर व्यसन का पूर्ण रूप से इलाज नहीं किया जाता है, तो अभियोजन पक्ष द्वारा किया जा रहा है इलाज रोका जा सकता है।

नशीले पदार्थों का युवा वर्ग में प्रभाव –

संपूर्ण विश्व में नशीले पदार्थों के सेवन से सबसे ज्यादा किशोर वर्ग जूझ रहा है, हमारा देश भी इसके सेवन से अछूता नहीं है। यह संपूर्ण विश्व की गंभीर समस्या है जिसका प्रभाव भारत जैसे आदर्श देश पर भी अत्यधिक मात्रा में पड़ा है। आज की युवा पेड़ है, नशीले पदार्थों के सेवन से अपने लक्ष्य को भूल रही है,और वह अपने जीवन को बर्बाद करके अपने माता–पिता को भी कष्ट दे रही है। नशीले पदार्थों के सेवन से किशोर माता–पिता की आशाओं के विपरीत निकलने से स्वयं को उपहास का पत्र तो बनाते ही है, लेकिन परिवार को भी तनाव युक्त करते हैं ।

युवा वर्ग में नशीले पदार्थों के सेवन के प्रति रुझान के अनेकों कारण है, जिन्हें दूर करने के लिए समाज के सभी समुदाय का कर्तव्य है, कि इस बुराई को जड़ से खत्म करने के लिए युवा वर्ग के इन नशीले पदार्थों के प्रति रुझान को खत्म करके समाज में एक अच्छा नागरिक बनाने में पूर्ण मदद करने का प्रयास करें ।

साहित्य पूर्वावलोकन–

ब्यूवेसफ्रेड, इ०आर० ओटिंग एवं अन्य (1989) ने अपने अध्ययन में अमेरिकी भारतीय युवाओं में निरंतर बढ़ रहे नशे की प्रवृत्ति को जानने का प्रयास किया है। जिसमें उन्होंने पाया कि अमेरिकी भारतीय युवा 7 वर्ष से ही नशीले पदार्थ का सेवन करना आरंभ कर देते हैं। और मुख्य रूप से अल्कोहल और मारिजुआना का सेवन करते हैं तथा महिलाएं भी पुरुषों की भांति नशीले पदार्थों का सेवन करती हैं। महिलाएं मुख्य रूप से 6.01 & 9-8% कोकीन, 45-8– 71.4% सिगरेट का नशे के लिए सेवन करती है।

शर्मा, एच०आई० (1990) ने पाया कि मणिपुर की कुल किशोर जनसंख्या का 1% मादक पदार्थों का व्यसनी था। व्यसनी किशोरों का सामाजिक समायोजन के अतिरिक्त अन्य सभी क्षेत्रों का समायोजन बहुत खराब था। ये सभी ऐसे परिवारों से संबंधित थे जहां माता–पिता स्वयं भी व्यसनी थे एवं असृजनात्मक (Non Creative) क्रियाओं से आनंद उठाने वाले थे।

खन्नाआर., (1991) नशा करने वालों का पुनर्वास। 240 स्नातक छात्रों को परोपकारिता और सहानुभूति प्रश्नावली दी गई और उसके बाद व्यक्तिगत रूप से सकारात्मक, तटस्थ या नकारात्मक मनोदशा की स्थिति के साथ प्रेरित किया गया और उन्हें पुनर्वास के लिए सुझाव देकर नशा करने वालों की मदद करने का अनुरोध किया गया। A(पुरुष और महिला) XB (उच्च और निम्न परोपकारिता) XC (उच्च और निम्न सहानुभूति), DID (विभिन्न मनोदशा की स्थिति) कारक डिजाइन में, विभिन्न चर के प्रभावों को एसएस द्वारा सुझाव लिखने के लिए लिए गए समय के आश्रित चर पर निर्धारित किया गया था। बी और सी प्रभाव महत्वपूर्ण पाए गए, जिसका अर्थ है कि उच्च परोपकारी और उच्च सहानुभूति वाले एसएस ने क्रमशः कम परोपकारी और कम सहानुभूति वाले एसएस की तुलना में सुझाव लिखने के लिए काफी अधिक समय समर्पित किया। परोपकारिता और सहानुभूति को विकसित करने की आवश्यकता पर जोर दिया गया है, जो नशीली दवाओं के आदी लोगों के पुनर्वास के लिए अनुकूल हैं।

गोल्डमन (1998) ने अपने अध्ययन में कहा कि मादक पदार्थों का सेवन अनुवांशिकता से भी प्रभावित होता है, अक्सर यह अनुभव किया गया है कि जब किसी भी व्यसनी से आप प्रश्न करेंगे की उसने नशा करना कब शुरू किया तो सब का जवाब एक ही होता है, की सबसे पहले मित्र के कहने पर ही ड्रग ली थी। इसलिए सामाजिक सांस्कृतिक करण में व्यसनी के 80% मित्र नशीले पदार्थों का सेवन करते हैं जिनमें लगभग 65% मित्र मादक द्रव्यों में 100% जड़े हुए होते हैं। दिशाहीन समाज युवाओं को भटकाव का रास्ता दिखाता है। सामाजिक परिवर्तन व सामाजिक विघटन का प्रभाव भी ड्रगएडिक्शन पर पड़ता है।

सिंह एम०एन०(1999) ने अपनी पुस्तक "ड्रग्स एंड आधुनिक समाज" मैं ड्रग्स सेवन करने वाले युवकों सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि पारिवारिक परिवेश ड्रग्स सेवन के प्रवृत्ति कारण एवं प्रभाव को जानने का प्रयास किया। अध्ययन का क्षेत्र पूर्वी उत्तर प्रदेश के बाराबंकी, वाराणसी और गाजीपुर जनपद के ग्रामीण इलाके रहे हैं। आध्यनोपरांत पता चलता है कि अधिकांश ड्रग्स सेवन करता 21–25 वर्ष की आयु किए थे तथा शिक्षित और जागरूक होते हुए भी ड्रग्स का सेवन कर रहे हैं। मुस्लिम युवकों की अपेक्षा हिंदू युवक ड्रग्स का सेवन अधिक करते हैं। ज्यादातर ड्रग्स सेवन करने वाले युवकों के पारिवारिक संबंध संतोषजनक नहीं है। उनके परिवार में कलहपूर्ण माहौल पाया गया।

नशीली पदार्थ सेवन के कारण –

1. माता–पिता का प्रभाव बच्चों पर अधिक पड़ता है। क्योंकि किसी भी बच्चे की समाजीकरण की प्रक्रिया उसके माता–पिता एवं परिवार से ही प्रारंभ होता है। ऐसे में यदि माता–पिता द्वारा नशीली पदार्थ का सेवन किया जाता है तो स्वाभाविक रूप से बच्चों पर भी इसका असर पड़ता है।
2. कुछ लोग अपने कष्टों एवं जीवन की समस्याओं से निकलने के लिए नशीले पदार्थों का सेवन करते है।
3. मित्रों के संगत में आकर बच्चे बहुत जल्द ही ड्रग्स लेना शुरू कर देते हैं। हुआ इस पहले शौक शोक में लेते हैं परंतु धीरे–धीरे इसके आदत ही हो जाते हैं धनी वर्ग के बच्चों में यह समस्या कुछ ज्यादा ही है।
4. महंगी जीवन शैली में माता–पिता दोनों लोग पैसे कमाने के लिए नौकरियां करने लगते हैं प्रोग्राम और बच्चों का ख्याल नहीं रख पाते हैं। ज्यादातर माता–पिता सुबह घर से निकलते हैं और रात्रि में घर वापस आते हैं। बच्चों को जेब खर्च के लिए अधिक पैसे देते हैं जिससे वे नशीले पदार्थों का सेवन करने लगते हैं। कई बार बच्चे अपने अकेलेपन के कारण भी नशे की गिरफ्त में आ जाते हैं।

5. सोशल मीडिया के प्रभाव सेरू फिल्म टेलीविजन मोबाइल इत्यादि में प्रसारित होने वाले विज्ञापनों के प्रभाव से युवा वर्ग में उत्सुकता वश हुआ आकर्षित होकर इन वैष्णो में फंस जाते हैं।

नशीले पदार्थों के सेवन से बचने के उपाय–

1. सर्वाधिक जिम्मेवारी माता–पिता की है। या बहुत आवश्यक है की माता–पिता अपने बच्चों के साथ समय दें और सही मार्गदर्शन करें माता–पिता बच्चों को नशीले पदार्थों से होने वाले दुष्परिणामों के बारे में बताएं और स्वयं भी नशीली पदार्थ के सेवन से दूर रहे।
2. विद्यालय कॉलेज में भी बच्चों को नशीले पदार्थों के दुष्परिणामों की जानकारी प्रदान की जाए। माध्यमिक स्कूलों कॉलेज में विभिन्न प्रकार के जागरूकता अभियान एवं कार्यक्रमों द्वारा भी युवा वर्ग को इसके बारे में जानकारी उपलब्ध कराई जानी चाहिए।
3. सरकार को भी नशीले पदार्थों की विक्रय पर पूर्ण रूप से पाबंदी लगाई जानी चाहिए तथा इसके उपयोग करने वालों पर कड़ी से कड़ी कार्यवाही करनी चाहिए ।
4. बुद्धिजीवी वर्ग पुलिस और NGO आदि को इस तरफ सरकारी पहल करना चाहिए।
5. युवाओं को यह एहसास कराया जाए की नशीले पदार्थों का सेवन हर तरफ से हानिकारक है।

निष्कर्ष –

नशीले पदार्थों का सेवन क्षणभंगुर के लिए आनंददाई है परंतु इसके दुष्परिणाम भी होते हैं। यह व्यक्ति को धीरे–धीरे निकल जाता है और उसके जीवन को पूर्ण रूप से बर्बाद कर देता है। अतः है स्पष्ट होता है कि हम उम्र आयु समूह का प्रभाव व्यक्तिगत स्तर पर आनंद की अनुभूति और चिंता से मुक्ति नशीले पदार्थों के सेवन का प्रमुख कारण रहा है। क्षेत्रीय अध्ययन से पता चलता है कि शिक्षित युवा वर्ग पैसे की तंगी हालत में चोरी रह जानी गैर कानूनी कार्य में अपने को सम्मिलित कर लेते हैं जिससे नशे की लत को पूरा किया जा सके। अध्ययन में सम्मिलित 50% उत्तरदाता आनंद की अनुभूति के लिए नशीले पदार्थों का सेवन करते हैं जबकि अन्य उत्तरदाताओं ने निराशा हुआ कुंठा से छुटकारा पाने के लिए थकान से छुटकारा पाने के लिए और कार्य शक्ति में वृद्धि की अनुभूति को वरीयता प्रदान की है। परंतु जैसे–जैसे नशीले पदार्थों का इति बन जाता है उसकी कार्यशक्ति वैसे–वैसे काम होती जाती है। सभी उत्तरदाताओं का यह मानना है कि नशीले पदार्थों के न मिलने पर शारीरिक पीड़ा अधिक होती है जिसके कारण शरीर में अकड़न,आलस एवं सस्ती उत्पन्न हो जाती है।

नशीले पदार्थों के सेवन की समस्या आज पूरे विश्व में महामारी की भांति फैली हुई है। यह मुख्य रूप से युवा वर्ग जो की देश का भविष्य है को निकलते जा रही है। विश्व में भारत का तंबाकू के उपभोग और बिक्री में तीसरा स्थान है। जो एक विचारणीय प्रश्न है। युवा ही किसी देश का भविष्य होते हैं यदि यही रास्ता भटक जाए तो उसे देश के भविष्य की कल्पना आप स्वयं कर सकते हैं। नशीले पदार्थों का कोई आधार नहीं है वैसे तो हम इसको दवाइयां के रूप में भी प्रयोग करते हैं किंतु जब इसका प्रयोग सीधे तौर पर किया जाए तो वह स्वास्थ्य के लिए बहुत ही हानिकारक साबित होता है। क्योंकि इनके प्रयोग के कारण व्यक्ति को न केवल शारीरिक बल्कि मानसिक सामाजिक व्यवहारिक संबंधी समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है।

जैसे–जैसे नशीले पदार्थों पर आश्रितता बढ़ने लगती है वैसे–वैसे व्यक्ति अपने परिवार और सगे संबंधियों से दूर होने लगता है। एक बार व्यक्ति नशे का सेवन कर लेता है तो फिर उसे इसकी आदत पड़ जाती है और बाद में उसे समय पर न मिलने से व्यक्ति का व्यवहार बदलने लगता है। नशीले पदार्थों का प्रयोग करने वाले युवाओं को समाज अच्छा नहीं मानता है और कभी–कभी उसकी यह हालत बढ़ जाने पर उसे समाज से निष्कासित भी कर दिया जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1- **राजोरा,डॉ० सुरेशचंद्र**' समकालीन भारत की सामाजिक समस्याएं, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
2- **पचौरी ,जे०पी0० (1999),** 'ड्रग एब्यूज एण्ड एल्कोहलिस्म इन इंडिया,एम०टी०सी० प्रिंटर्स, बरेली।
3- **अग्रवाल जी०के०** 'सामाजिक समस्याएं' SBPD पब्लिशिंग हाउस आगरा।
4- **शर्मा भुवन (2017),**जर्नल आफ फैमिली मेडिसिन एंड प्राइमरी केयर, वॉल्यूम 6(3) पृष्ठ संख्या 558–562।
5- **इब्राहिम, एच० ए० (2016),** जर्नल आफ फार्मेसी एंड बायोलॉजिकल साइंसेस,वॉल्यूम–11(1) पृष्ठ संख्या 16 ।
6- **चव्हाण,बी०एस० (2007),** इंडियन जर्नल का साइकेट्रीवॉल्यूम 49(1), पृष्ठ संख्या 44–48।
7- **सिंह,एम०एन० (1999),** ड्रग्स तथा आधुनिक समाज, विवेक प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ संख्या–20।
8- **फ्रेड,ब्यूवेस (1989),** अमेरिकनजर्नल ऑफ पब्लिक हेल्थ, वॉल्यूम– 79 पृष्ठ संख्या 634–636।
9- **जिलोहा,आर०सी० (2009),** दिल्ली साइकेट्री जर्नल,वॉल्यूम– 12(2), पृष्ठ संख्या 168–169
10- http://www.undo.org/india/ras.html
11- www.undoc.org/documents/wdr2022
12- www.googlescholar.com
13- **फुकन,आर०एस०(2017),** ड्रग की समस्याः पंजाब और दिल्ली मे सरकार का सर्वेक्षण, ;https://www.mapsofindia.com)
14- मिश्रा,के०के०– 'सामाजिक विघटन' वैशाली प्रकाशन गोरखपुर।

भारतीय समाज में धर्मान्धता एवं बुद्धवाद पर एक समीक्षात्मक विश्लेषण

अभिषेक कुमार सरोज
असि. प्रोफेसर समाजशास्त्र
उदित नारायण पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज पडरौना,
कुशीनगर, (उत्तर प्रदेश)

सारांशः– *''भारतीय समाज का इतिहास और संस्कृति विभिन्न धार्मिक मान्यताओं और परंपराओं से गहराई से प्रभावित है। धर्म ने समाज के नैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक ढांचे को आकार दिया है, लेकिन इसी के साथ–साथ धार्मिक कट्टरता या धर्मान्धता की समस्या भी सामने आई है। धर्मान्धता तब उत्पन्न होती है जब धार्मिक विश्वास और परंपराएं तर्क, विवेक, और मानवता के सिद्धांतों से ऊपर रखी जाती हैं। इस स्थिति में व्यक्ति अपने धार्मिक विश्वासों के प्रति इतना कट्टर हो जाता है कि वह दूसरों के विचारों, आस्थाओं, और जीवनशैली के प्रति असहिष्णु हो जाता है। धर्मान्धता का प्रभाव समाज में हिंसा, विभाजन, और असमानता का कारण बनता है।*

बौद्ध धर्म, जिसे गौतम बुद्ध ने स्थापित किया, भारतीय समाज में धर्मान्धता का एक वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। बुद्ध ने चार आर्य सत्य और अष्टांग मार्ग का प्रवर्तन किया, जो करुणा, अहिंसा, और तर्क पर आधारित हैं। बुद्धवाद का मुख्य उद्देश्य दुःखों का निवारण और आत्मज्ञान प्राप्त करना है। यह धर्म व्यक्ति को धार्मिक कट्टरता से दूर कर आत्म–विकास, करुणा और विवेक का मार्ग अपनाने के लिए प्रेरित करता है। यह शोध पत्र धर्मान्धता और बौद्धवाद के बीच तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। इसमें दिखाया गया है कि जहाँ धर्मान्धता समाज में असमानता, हिंसा और असहिष्णुता को बढ़ावा देती है, वहीं बौद्ध धर्म तर्क, समानता, और सहिष्णुता का संदेश देता है। बुद्धवाद व्यक्ति को अपनी आस्थाओं का पुनर्मूल्यांकन करने और तर्कपूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा देता है। भारतीय समाज में धर्मान्धता की समस्या से निपटने के लिए बौद्ध धर्म के सिद्धांत महत्वपूर्ण हो सकते हैं। इन सिद्धांतों को अपनाकर समाज में अधिक समानता, सहिष्णुता, और शांति स्थापित की जा सकती है।''

कुंजीभूत शब्द– धर्मान्धता , बुद्धवाद मानसिक शांति, आत्मसंयम,धार्मिक संघर्ष, धार्मिक शिक्षा।

भारतीय समाज अपने विविध सांस्कृतिक, धार्मिक, और दार्शनिक परंपराओं के लिए विश्व में विशेष स्थान रखता है। भारत में धर्म का गहरा प्रभाव है, जो व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के हर पहलू को आकार देता है। परंतु इस गहरी धार्मिकता के साथ ही धर्मान्धता भी समाज में अपनी जड़ें जमाती रही है। दूसरी ओर, बुद्ध के समय में शुरू हुआ बौद्ध धर्म, जो तर्क, ज्ञान, और अहिंसा पर आधारित था, धर्मान्धता का स्पष्ट विरोधी है। यह

धर्मान्धताः एक सामाजिक समस्या–

धर्मान्धता से तात्पर्य उस स्थिति से है जब धार्मिक विश्वास और आस्था तर्क और विवेक से परे हो जाते हैं। यह स्थिति तब उत्पन्न होती है जब व्यक्ति अंधविश्वासों पर आधारित होकर समाज में विभाजन, हिंसा और कट्टरता को बढ़ावा देता है। भारतीय समाज में धर्मान्धता का प्रमुख कारण धार्मिक परंपराओं का कट्टर पालन, अज्ञानता, शिक्षा की कमी, और सामूहिक मानसिकता में फैलने वाले अंधविश्वास हैं।

धर्मान्धता के प्रभावः

धर्मान्धता का समाज पर गहरा और व्यापक प्रभाव पड़ता है, जो न केवल सामाजिक एकता को कमजोर करता है, बल्कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता और विकास को भी बाधित करता है। इसके मुख्य प्रभाव इस प्रकार हैं:

1. सामाजिक विभाजनः धर्मान्धता के कारण समाज विभिन्न धार्मिक समूहों में विभाजित हो जाता है। इससे समुदायों के बीच आपसी अविश्वास, नफरत और भेदभाव की भावना बढ़ती है, जो सामाजिक एकता के लिए खतरनाक है।
2. हिंसा और दंगेः धर्मान्धता अक्सर धार्मिक संघर्षों, हिंसा, और दंगों का कारण बनती है। धर्म के नाम पर होने वाले दंगे और झड़पें समाज में अस्थिरता और असुरक्षा की भावना उत्पन्न करते हैं।
3. अंधविश्वास और पिछड़ापनः धर्मान्धता के चलते लोग तर्कसंगत सोच से दूर हो जाते हैं और अंधविश्वासों का पालन करने लगते हैं। इससे विज्ञान और प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है, और समाज में पिछड़ापन बढ़ता है।
4. मानवाधिकारों का उल्लंघनः धर्मान्धता के कारण किसी एक धार्मिक समुदाय की विचारधारा दूसरों पर थोपने का प्रयास किया जाता है, जिससे व्यक्तियों की स्वतंत्रता और उनके मौलिक अधिकारों का हनन होता है।
5. शिक्षा और विकास में रुकावटः धर्मान्धता के कारण लोग शिक्षा और आधुनिकता से दूरी बना लेते हैं। इससे समाज का विकास रुकता है और लोग जीवन में पीछे रह जाते हैं।
6. राजनीतिक शोषणः कई बार धर्मान्धता का उपयोग राजनेता अपने लाभ के लिए करते हैं। वे धार्मिक भावनाओं का शोषण करके समाज में वोट–बैंक की राजनीति को बढ़ावा देते हैं, जिससे सामाजिक संरचना और लोकतंत्र कमजोर होता है।
7. सांस्कृतिक विनाशः धर्मान्धता के कारण विभिन्न सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास होता है। एक संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाने से लोग अपनी सांस्कृतिक विविधता और धरोहरों को नकारने लगते हैं।
8. महिलाओं और अल्पसंख्यकों पर प्रभावः धर्मान्धता का नकारात्मक प्रभाव अक्सर महिलाओं और अल्पसंख्यक समुदायों पर अधिक पड़ता है। उनके अधिकारों का हनन होता है, और वे पारंपरिक एवं रूढ़िवादी मान्यताओं के बंधनों में बंधे रहते हैं।

बौद्ध धर्म का विकास और भारतीय समाज में इसका प्रभाव–

बौद्ध धर्म का विकास लगभग 6वीं शताब्दी ईसा पूर्व हुआ, जब गौतम बुद्ध ने आत्मज्ञान प्राप्त करने के बाद अपने उपदेशों के माध्यम से मानवता के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया। बुद्ध ने तप और कर्मकांडों की परंपरा को नकारते हुए मध्यम मार्ग, करुणा, अहिंसा और तर्कशीलता का रास्ता अपनाने का संदेश दिया। बौद्ध धर्म का उद्देश्य मानव जीवन में दुखों से मुक्ति, आत्म–साक्षात्कार और शांति की स्थापना करना था। गौतम बुद्ध के सरल और वैज्ञानिक विचारों ने समाज के सभी वर्गों में व्यापक स्वीकृति पाई, और इस तरह बौद्ध धर्म का तेजी से प्रसार हुआ।

बौद्ध धर्म का विकास–

बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए गौतम बुद्ध ने बौद्ध संघ की स्थापना की, जिसमें अनुयायियों को साधारण जीवन और अहिंसा का पालन करने के लिए प्रेरित किया गया। बौद्ध संघ में स्त्री और पुरुष, दोनों को शामिल किया गया, जिससे समाज में बराबरी और लैंगिक समानता का संदेश फैलने लगा। सम्राट अशोक के काल में बौद्ध धर्म को विशेष संरक्षण मिला। अशोक ने कलिंग युद्ध के बाद बौद्ध धर्म की शिक्षाओं को अपनाया और इसे अपने साम्राज्य में व्यापक रूप से प्रचारित किया। उन्होंने शांति, अहिंसा और धर्म प्रचार के उद्देश्य से स्तूप, विहार और शिलालेखों का निर्माण कराया। मौर्य काल के बाद बौद्ध धर्म ने भारत से

बाहर अन्य एशियाई देशों, जैसे श्रीलंका, तिब्बत, चीन, जापान, म्यांमार और थाईलैंड में भी अपनी जड़ें जमाईं। इस प्रकार बौद्ध धर्म एक वैश्विक धर्म बन गया, जो आज भी एशिया के कई हिस्सों में प्रचलित है।
भारतीय समाज पर बौद्ध धर्म का प्रभाव– भारतीय समाज पर बौद्ध धर्म का निम्नलिखित प्रभाव पड़ा जो इस प्रकार है

1. सामाजिक सुधारः बौद्ध धर्म ने जातिवाद, भेदभाव और कर्मकांडों के खिलाफ एक सामाजिक सुधार आंदोलन की तरह कार्य किया। इसने भारतीय समाज को जातिगत असमानता से मुक्त करने का प्रयास किया और समानता, करुणा, और सह–अस्तित्व की भावना को प्रोत्साहित किया।
2. अहिंसा का प्रसारः बौद्ध धर्म में अहिंसा को विशेष महत्व दिया गया है। इसने समाज में शांति और सहिष्णुता को बढ़ावा दिया। अहिंसा के इस सिद्धांत का असर भारतीय समाज के सांस्कृतिक और धार्मिक मूल्यों पर पड़ा, और यह गांधीजी के स्वतंत्रता संग्राम का आधार भी बना।
3. शिक्षा और तर्कशीलता का विकासः बौद्ध धर्म ने शिक्षा और तर्कशीलता को बढ़ावा दिया। बुद्ध के विचारों में तर्क, अनुभव और आत्म–चिंतन का विशेष महत्व था, जो भारतीय समाज में तार्किक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास में सहायक बना।
4. कला और वास्तुकला में योगदानः बौद्ध धर्म ने भारतीय कला, स्थापत्य और साहित्य पर गहरा प्रभाव डाला। बौद्ध स्तूप, विहार, और शिलालेख भारतीय स्थापत्य कला के महान उदाहरण हैं। अजंता, एलोरा, और सारनाथ जैसे स्थलों में बौद्ध कला और मूर्तिकला का उत्कृष्ट विकास देखने को मिलता है।
5. महिलाओं और दलित वर्ग के अधिकारः बौद्ध धर्म में महिलाओं और निम्न वर्गों को विशेष स्थान मिला। संघ में सभी वर्गों के लोगों को शामिल करने की अनुमति दी गई, जिससे समाज में महिलाओं और वंचित वर्गों की स्थिति में सुधार आया।
6. अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक आदान–प्रदानः बौद्ध धर्म के अंतरराष्ट्रीय प्रसार ने भारतीय समाज को विभिन्न एशियाई संस्कृतियों के साथ जोड़ दिया। इससे भारत और अन्य एशियाई देशों के बीच सांस्कृतिक, धार्मिक, और व्यापारिक संबंध मजबूत हुए।

बौद्ध धर्म ने भारतीय समाज को न केवल धार्मिक दृष्टिकोण से प्रभावित किया, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसने समाज को करुणा, अहिंसा, समानता, और तर्कशीलता का मार्ग दिखाया। बौद्ध धर्म का प्रभाव आज भी भारतीय समाज में देखा जा सकता है, जो सहिष्णुता, आध्यात्मिकता और मानवता की भावना को प्रोत्साहित करता है।

धर्मान्धता और बौद्ध धर्म का तुलनात्मक विश्लेषण–

1. धार्मिक आस्था बनाम तर्क और विवेकः जहाँ धर्मान्धता व्यक्ति को तर्क और विवेक से परे धार्मिक परंपराओं का अंध पालन कराती है, वहीं बौद्ध धर्म व्यक्ति को तर्क और आत्मविकास की राह पर ले जाता है।
2. सामाजिक समानता और असमानताः धर्मान्धता से जाति और धार्मिक आधार पर विभाजन और असमानता उत्पन्न होती है, जबकि बौद्ध धर्म समानता का संदेश देता है और सभी को एक समान मानता है।
3. सांप्रदायिकता और अहिंसाः धर्मान्धता सांप्रदायिकता और हिंसा को बढ़ावा देती है, जबकि बौद्ध धर्म अहिंसा और करुणा का मार्ग प्रशस्त करता है।
4. विकास और प्रगति में योगदानः धर्मान्धता सामाजिक और वैज्ञानिक प्रगति में बाधा उत्पन्न करती है, जबकि बौद्ध धर्म तर्कशीलता और ज्ञान को बढ़ावा देता है।भारतीय समाज में धर्मान्धता के कारण–

1. अशिक्षा और अज्ञानताः धर्मान्धता का एक बड़ा कारण अशिक्षा है। शिक्षा के अभाव में लोग तर्कपूर्ण सोच से दूर हो जाते हैं।

2. धार्मिक नेताओं का प्रभावः कुछ धार्मिक नेता अपने लाभ के लिए धर्म का गलत उपयोग कर अंधविश्वास फैलाते हैं।

3. सामाजिक परंपराएँ और रीति–रिवाजः कई बार धार्मिक परंपराओं और रीति–रिवाजों के प्रति अत्यधिक आस्था अंधविश्वास को जन्म देती है।

4. सामाजिक असमानताः समाज में असमानता और विभाजन की स्थिति धर्मान्धता को बढ़ावा देती है।

धर्मान्धता से निपटने में बौद्धवाद की भूमिका–

धर्मान्धता एक ऐसी मानसिकता है जो कट्टरता, असहिष्णुता और भेदभाव को बढ़ावा देती है, जिससे समाज में तनाव और हिंसा का वातावरण बनता है। इस समस्या से निपटने के लिए बौद्धवाद की शिक्षाएं अत्यंत महत्वपूर्ण

और प्रभावी साबित हो सकती हैं, क्योंकि बौद्ध धर्म ने हमेशा अहिंसा, तर्क, समानता, और सहिष्णुता के सिद्धांतों पर बल दिया है। निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से बौद्धवाद धर्मान्धता से निपटने में अपनी भूमिका निभा सकता हैः

1. अहिंसा और करुणा (मैत्री) का प्रचार–

बौद्ध धर्म में अहिंसा (अहिंसा) को अत्यधिक महत्व दिया गया है, जो धर्मान्धता से निपटने का एक प्रभावी तरीका है। अहिंसा का अर्थ केवल शारीरिक हिंसा से बचना नहीं, बल्कि मानसिक और भाषिक हिंसा से भी बचना है। बौद्ध धर्म यह सिखाता है कि सभी जीवों के प्रति करुणा और सहानुभूति का भाव रखना चाहिए, जिससे समाज में घृणा और हिंसा का वातावरण समाप्त होता है। जब लोग दूसरों को समझने और सहानुभूति दिखाने के बजाय नफरत और हिंसा का सहारा लेते हैं, तो धर्मान्धता को बढ़ावा मिलता है। बौद्ध धर्म का अहिंसा का संदेश समाज में प्रेम और शांति को बढ़ावा देता है।

2. तर्कशीलता और आत्मचिंतन –

बुद्ध ने अपने उपदेशों में तर्कशीलता और आत्मचिंतन का महत्व बताया है। उन्होंने कहा कि किसी भी चीज को बिना अनुभव और समझे स्वीकार नहीं करना चाहिए, बल्कि उसे तर्क और विवेक से परखना चाहिए। बौद्ध धर्म का यह सिद्धांत धर्मान्धता से निपटने में सहायक है, क्योंकि धर्मान्धता अक्सर बिना तर्क के धार्मिक मान्यताओं को लागू करने और दूसरों को अपने विश्वासों में समायोजित करने का परिणाम होती है। बौद्ध धर्म लोगों को अपने विश्वासों का पुनः मूल्यांकन करने और तर्क, विवेक तथा प्रमाण के आधार पर सही निर्णय लेने के लिए प्रेरित करता है।

3. समानता और समभाव की शिक्षा –

बौद्ध धर्म में सभी प्राणियों के प्रति समानता का दृष्टिकोण है। बौद्ध दृष्टिकोण में जाति, लिंग, और धर्म से परे जाकर सभी को समान दर्जा दिया गया है। यह धार्मिक असहमति और भेदभाव से बचने के लिए बहुत प्रभावी है। जब लोग एक–दूसरे को समान समझते हैं, तो उनके बीच समझ और सहयोग का वातावरण उत्पन्न होता है। बौद्ध धर्म की यह समानता की अवधारणा समाज में असमानता, भेदभाव और धर्मान्धता के खिलाफ एक सशक्त हथियार साबित होती है।

4. संपूर्णता और सहिष्णुता का संदेश –

बौद्ध धर्म सभी धर्मों और विश्वासों को सम्मान देने की शिक्षा देता है। बुद्ध ने कभी नहीं कहा कि केवल बौद्ध धर्म ही सत्य है, बल्कि उन्होंने अपने अनुयायियों को प्रत्येक व्यक्ति और धर्म के प्रति खुले दिल से विचार करने की सलाह दी। यह दृष्टिकोण धर्मान्धता से निपटने के लिए अत्यंत प्रभावी है, क्योंकि यह दूसरों के धर्म और विश्वासों के प्रति सम्मान और सहिष्णुता को बढ़ावा देता है। यह धर्मान्धता के विचारों को

चुनौती देता है, जो अक्सर एक ही विश्वास या धर्म को श्रेष्ठ मानने और दूसरों को अस्वीकार करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देते हैं।

5. ध्यान और मानसिक शांति –

ध्यान और मानसिक शांति की बौद्ध पद्धतियां व्यक्ति को अपने विचारों और भावनाओं पर नियंत्रण पाने में मदद करती हैं। जब एक व्यक्ति शांत और संतुलित होता है, तो वह कट्टर और धर्मान्ध विचारों से दूर रहता है। बौद्ध ध्यान प्रथाएँ मानसिक शांति, आत्म–ज्ञान और संतुलन के लिए उत्कृष्ट साधन हैं, जो किसी भी प्रकार की हिंसा, घृणा, और धर्मान्धता से दूर रहने में मदद करती हैं। इससे व्यक्ति में सहिष्णुता और समझदारी का विकास होता है, जो समाज में सामंजस्य बनाए रखता है।

6. शिक्षा और जागरूकता का प्रसार

बौद्ध धर्म ने हमेशा शिक्षा और ज्ञान के महत्व को माना है। बुद्ध ने कहा था, ''ज्ञान ही मुक्ति है'', और इस विचारधारा के माध्यम से बौद्ध धर्म समाज में अज्ञानता और अंधविश्वास को समाप्त करने का प्रयास करता है। धर्मान्धता का सबसे बड़ा कारण अज्ञानता और गलतफहमियां होती हैं। बौद्ध धर्म की शिक्षा का प्रसार करने से लोग अधिक जागरूक और समझदार बन सकते हैं, और धर्मान्धता की ओर उनकी प्रवृत्ति कम हो सकती है।

धर्मान्धता से निपटने में बौद्धवाद एक शक्तिशाली साधन साबित हो सकता है, क्योंकि यह करुणा, अहिंसा, समानता, तर्कशीलता और मानसिक शांति के सिद्धांतों पर आधारित है। बौद्ध धर्म समाज को एक समावेशी, सहिष्णु, और शांति–प्रेरित दिशा में मार्गदर्शन करता है, जिससे धर्मान्धता की प्रवृत्तियों का प्रतिकार किया जा सकता है। बौद्ध धर्म का यह दृष्टिकोण न केवल धार्मिक असहमति से निपटने में सहायक है, बल्कि यह समग्र मानवता की भलाई के लिए एक सकारात्मक दिशा प्रदान करता है।

उपर्युक्त विवेचनों से स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में धर्मान्धता और बौद्धिकता (बुद्धवाद) के बीच एक जटिल और द्वंद्वात्मक संबंध पाया जाता है। धर्मान्धता का प्रभाव, जो कि अक्सर अंधविश्वास, संकीर्ण मानसिकता और सामाजिक विभाजन का कारण बनता है, सामाजिक विकास और शांति के मार्ग में बाधा बनता है। दूसरी ओर, बुद्धवाद या बौद्धिक दृष्टिकोण एक प्रगतिशील और सहिष्णु समाज की दिशा में मार्ग प्रशस्त करता है, जिसमें तर्क और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्राथमिकता दी जाती है। इस शोध में यह पाया गया कि धर्मान्धता का मूल कारण अज्ञानता, गलत धार्मिक शिक्षा, और धर्म का राजनीतिक उपयोग है, जो समाज में असहिष्णुता, नफरत और संघर्ष का बीज बोता है। ऐसे समाज में भेदभाव, सामाजिक असमानता, और हिंसा की घटनाओं में वृद्धि होती है, जो सामूहिक विकास के लिए हानिकारक है। इसके विपरीत, बुद्धवाद भारतीय समाज में सहिष्णुता, समानता, और समन्वय को बढ़ावा देता है। बौद्धिकता का प्रसार शिक्षा, ज्ञान, और तर्कशीलता के माध्यम से किया जा सकता है, जिससे समाज में सभी वर्गों के प्रति समभाव, आपसी सम्मान और सहयोग का वातावरण निर्मित होता है। भारतीय समाज को धर्मान्धता के नकारात्मक प्रभावों से बचाने और एक प्रगतिशील समाज की ओर ले जाने के लिए बुद्धवाद और तर्कशीलता को बढ़ावा देना अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता है, जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानवतावाद, और सहिष्णुता को प्रोत्साहित करे। ऐसा करके ही भारतीय समाज में एक समृद्ध, एकता–पूर्ण, और शांतिपूर्ण वातावरण का निर्माण किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. अंबेडकर, डॉ. बी.आर. (1957) ''बुद्ध और उनका धम्म'', प्रकाशकः अंबेडकर फाउंडेशन, भारत सरकार
2. शर्मा, चंद्रधर (1952) ''भारतीय दर्शन'' , प्रकाशकः मोटिलाल बनारसीदास पब्लिशर्स
3. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली (1923) ''इंडियन फिलॉसफी'' ,प्रकाशकः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
4. शास्त्री, हरिसिंह (1960) ''बौद्ध दर्शन का इतिहास'' प्रकाशकः भारतीय ज्ञानपीठ
5. रसेल, बर्ट्रेंड (1946) ''हिस्ट्री ऑफ वेस्टर्न फिलॉसफी, प्रकाशकः रूटलेज
6. दुबे, सुरेश चंद्र (1983) ''धर्म और समाज '' प्रकाशकः रावत पब्लिकेशंस
7. गांधी, महात्मा (1936) ''धर्म, समाज और राजनीति '', प्रकाशकः नवलकिशोर प्रेस

दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 के द्वारा दिव्यांगों हेतु किये जाने वाले प्रयासों की वर्तमान स्थिति

एकता कुशवाहा
शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग,
काशी नरेश राजकीय स्नाकोत्तर महाविद्यालय,
ज्ञानपुर, भदोही
प्रो. घनश्याम मिश्र
शोध निर्देशक, समाजशास्त्र विभाग,
काशी नरेश राजकीय स्नाकोत्तर महाविद्यालय,
ज्ञानपुर, भदोही

शोध सार
*वर्ष 2011 की जनगणना के मुताबिक भारत की कुल जनसंख्या में 2.21 प्रतिशत की हिस्सेदारी रखने वाले दिव्यांगजनों की समाज में सम्पूर्ण भागीदारी सुनिश्चित करने पर बल देने वाले कानूनों की उपस्थिति के बावजूद सरकारों ने इस ओर कम ही ध्यान दिया है। लेकिन, हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने निर्धारित समय–सीमा के अंदर दिव्यांगजनों की सार्वजनिक सुविधाओं तक पूर्ण पहुँच सुनिश्चित करने के लिये केंद्र और राज्य सरकारों को निर्देश जारी किये हैं। दरअसल, पिछले कुछ दिनों में सुप्रीम कोर्ट ने समस–समय पर विभिन्न दिशा–निर्देश दिये हैं, ताकि सार्वजनिक अवसंरचना तक दिव्यांगजनों की सुलभ पहुँच सुनिश्चित की जा सके। विदित हो कि सरकार द्वारा दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 (**Rights of Persons with Disabilities Act 2016**) पारित किया जा चुका है ऐसे में सुप्रीम कोर्ट के दिशा–निर्देशों का पालन अपरिहार्य हो जाता है। दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 दिव्यांगजन अधिकार विधेयक, वर्ष 2016 के अंत में राज्यसभा द्वारा पारित होते ही दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 बन गया जो वर्ष 1995 के दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम को निरस्त करता है। निःशक्त व्यक्ति अधिकार (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 के प्रावधानों के अनुरूप दोहरे उद्देश्यों सहित, उसके सही कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए भी केंद्र सरकार ने दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 को अधिनियमित किया जो 19.04.2017 से प्रभाव में आया है। यह अधिनियम समावेशी शिक्षा को बढ़ावा देने, पर्याप्त सामाजिक सुरक्षा, रोजगार और पुनर्वास के माध्यम से दिव्यांगजन के पूर्ण और प्रभावी समावेश को सुनिश्चित करने के उपाय उपलब्ध कराता है।*

मुख्य बिन्दु : अधिकार , समावेशी , अल्पदृष्टि, श्रवण बाधित, स्वलीनता, स्वावलंबन , अवसरंचना, सशक्तिकरण ।

परिचय –सामाजिक न्याय एवं निःशक्तजन कल्याण विभाग द्वारा दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम 2016 के अंतर्गत जागरूकता के लिए 21 प्रकार की दिव्यांगताओं को शामिल किया गया है। अधिनियम में पूर्व में प्रचलित 7 प्रकार की दिव्यांगताओं के स्थान पर अब 21 प्रकार की दिव्यांगताएं शामिल की गई है। अधिनियम के अंतर्गत दिव्यांगता के 21 प्रकार एवं उनके लक्षण जैसे चलन दिव्यांगता, बौनापन, मांसपेशी दुर्विकास, तेजाब हमला पीड़ित, दृष्टि बाधित, अल्पदृष्टि, श्रवण बाधित, कम, ऊंचा सुनना, बोलने एवं भाषा की दिव्यांगता, कुष्ठ रोग से मुक्त, प्रमस्तिष्क घात, बहु दिव्यांगता, बौद्धिक दिव्यांगता, सीखने की दिव्यांगता,

स्वलीनता, मानसिक रूगणता, बहु–स्केलेरोसिस, पार्किंसंस, हेमोफीलिया, थेलेसीमिया, सिक्कल कोशिका रोग शामिल है।

दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 की विशेषताएँ–

1. **विकलांगता की परिभाषा में बदलाव**–दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 में विकलांगता की परिभाषा में बदलाव लाते हुए इसे और भी व्यापक बनाया गया है। दरअसल, इस अधिनियम में दिव्यांगता को एक विकसित और गतिशील अवधारणा के आधार पर परिभाषित किया गया है और अपंगता के मौजूदा प्रकारों को 7 से बढ़ाकर 21 कर दिया गया है। साथ ही केंद्र सरकार को इन प्रकारों में वृद्धि की शक्ति भी दी गई है।
2. **आरक्षण की व्यवस्था**–गौरतलब है कि शिक्षा और सरकारी नौकरियों में दिव्यांग व्यक्तियों को अब तक 3: आरक्षण दिये जाने की व्यवस्था की गई थी, लेकिन इस अधिनियम में इसे बढ़ाकर 4: कर दिया गया है।
3. **शिक्षा संबंधी सुधार**–इस अधिनियम में बेंचमार्क विकलांगता (benchmark&disability) से पीड़ित 6 से 18 वर्ष तक के बच्चों के लिये निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गई है। साथ ही सरकारी वित्त पोषित शैक्षिक संस्थानों और सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थानों को दिव्यांग बच्चों को समावेशी शिक्षा प्रदान करनी होगी।
4. **फंड की व्यवस्था**–दिव्यांगजनों को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिये 'राष्ट्रीय और राज्य निधि (National and State Fund) का निर्माण किया जाएगा। उल्लेखनीय है कि इस संबंध में बनाए गए अन्य फंड्स का इस नए फंड में विलय कर दिया जाएगा।
5. **अवसरंचना संबंधी सुधार**–सुलभ भारत अभियान को मजबूती प्रदान करने एवं निर्धारित समय–सीमा में सार्वजनिक इमारतों (सरकारी और निजी दोनों) में दिव्यांगजनों की पहुँच सुनिश्चित करने पर बल दिया गया है।
6. **गार्डियनशिप की व्यवस्था**–यह विधेयक जिला न्यायालय द्वारा गार्डियनशिप की व्यवस्था प्रदान करता है जिसके तहत अभिभावक और विकलांग व्यक्तियों के बीच संयुक्त निर्णय लेने की व्यवस्था होगी।
7. **बेंचमार्क विकलांगता के लिये विशेष प्रावधान**–गौरतलब है कि इस अधिनियम में बेंचमार्क विकलांगता यानी न्यूनतम 40 फीसदी विकलांगता के शिकार लोगों को शिक्षा और रोजगार में आरक्षण का लाभ देने का भी प्रावधान है और ऐसे लोगों को सरकारी योजनाओं और अन्य प्रकार की योजनाओं में भी प्राथमिकता दी जाएगी।
8. **अन्य महत्त्वपूर्ण प्रावधान**–दिव्यांगजनों के अधिकारों के उल्लंघन से संबंधित मामलों के निपटारे के लिये प्रत्येक जिले में विशेष न्यायालयों को नामित किया जाएगा। नया अधिनियम इस संबंध में भारत में बनने वाले कानूनों को विकलांग व्यक्तियों पर संयुक्त राष्ट्र सम्मलेन (यूएनसीआरपीडी) के उद्देश्यों के सापेक्ष ला खड़ा करेगा। भारत यूएनसीआरपीडी का एक हस्ताक्षरकर्त्ता देश है और यह अधिनियम यूएनसीआरपीडी के संदर्भ में भारत के दायित्वों को पूरा करेगा।
9. **सुगम्य भारत अभियान**–इस संबंध में सरकार के प्रयास सुगम्य भारत अभियान दिव्यांगजनों को सशक्त बनाने के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा 15 दिसंबर, 2015 को सुगम्य भारत अभियान का शुभारंभ किया गया। इस अभियान का उद्देश्य दिव्यांगजनों के लिये एक सक्षम और बाधारहित

वातावरण सुनिश्चित करना है। इस अभियान के तहत तीन प्रमुख उद्देश्यों– विद्यमान वातावरण में सुगम्यता सुनिश्चित करना, परिवहन प्रणाली में सुगम्यता तथा ज्ञान एवं आईसीटी के माध्यम से दिव्यांगो को सशक्त बनाना शामिल हैं।

10. **सुगम्य पुस्तकालय**–सरकार द्वारा वर्ष 2016 में एक ऑनलाइन मंच "सुगम्य पुस्तकालय" की शुरुआत की गई है, जहाँ दिव्यांगजन इंटरनेट के माध्यम से पुस्तकालय से संबद्ध सभी प्रकार की उपयोगी पुस्तकों को पढ़ सकते हैं। नेत्रहीन व्यक्तियों के लिये अलग से व्यवस्था की गई है। सुगम्य पुस्तकालय में नेत्रहीन व्यक्ति भी अपनी पसंद के किसी भी उपकरण जैसे–मोबाइल फोन, टैबलेट, कम्प्यूटर इत्यादि का उपयोग कर ब्रेल डिस्प्ले की मदद से पढ़ सकते हैं।
11. **यूडीआईडी कार्ड**–भारत सरकार द्वारा वेब आधारित असाधारण दिव्यांग पहचान (यूडीआईडी) कार्ड शुरू किया गया है। इस पहल से दिव्यांग प्रमाण–पत्र की प्रामाणिकता सुनिश्चित करने में मदद मिलेगी तथा अलग–अलग कार्यों के लिये कई प्रमाण–पत्र साथ रखने की परेशानी भी दूर होगी। इसके तहत विकलांगता के प्रकार सहित विभिन्न विवरण ऑनलाइन उपलब्ध कराए जाएंगे।
12. **स्वावलंबन योजना**–दिव्यांग व्यक्तियों के कौशल प्रशिक्षण के लिये एक राष्ट्रीय कार्ययोजना की शुरुआत की गई है। उल्लेखनीय है कि दिव्यांगजन सशक्तीकरण विभाग द्वारा पाँच लाख दिव्यांग व्यक्तियों को कौशल प्रशिक्षण देने का महत्त्वाकांक्षी लक्ष्य तय किया गया है। इस कार्ययोजना का उद्देश्य वर्ष 2022 के अंत तक 25 लाख दिव्यांगजनों को कौशल प्रशिक्षण प्रदान करना है।

दिव्यांगजनों के कल्याण हेतु सरकार के द्वारा किये जाने वाले प्रयास की वर्तमान स्थिति–

1. **सहायक यंत्रों एवं उपकरणों की खरीद एवं फिटिंग के लिए दिव्यांगजनों को सहायता (एडिप)**–सहायक यंत्रों एवं उपकरणों की खरीद एवं फिटिंग के लिए दिव्यांगजनों को सहायता (एडिप) स्कीम के तहत पिछले तीन वर्ष के दौरान 5624 कैंपो के माध्यम से 7.60 लाख लाभार्थियों को लाभ पहुंचाने के लिए 465.85 करोड़ रूपए की अनुदान सहायता का उपयोग किया गयज्ञं योजना के अंतर्गत देश भर में सुपात्र दिव्यांगजनों को 3730 मोटरयुक्त तिपहिया साइकिलें वितरित की गई। 248 मैगा कैंप एवं विशेष कैंपो का आयोजन किया गया, जिनमें एडिप योजना के अंतर्गत सहायक यंत्रों एवं उपकरणों के वितरण के लिए 27 राज्यों को कवर किया गया।
2. **बच्चों की श्रवण दिव्यांगता पर कार्य**–बच्चों की श्रवण दिव्यांगता पर काबू करने के लिए कोकलियर इंप्लांट सर्जरियों के उद्देश्य से देश भर में 172 अस्पतालों को पैनल बद्ध किया गया है। आज की तारीख में 839 कोकलियर इंप्लांट सर्जरियाँ सफलतापूर्वक पूरी की गई है और उनके पुनर्वास का कार्य चल रहा है।
3. **शैक्षिक सशक्तिकरण**–शैक्षिक सशक्तिकरण के अंतर्गत कक्षा 9 से एमफिल एवं पीएचडी स्तर के छात्रों सहित और विदेषों में अध्ययन हेतु सरकार पांच छात्रवृत्ति योजनाएं, नामतः प्री मैट्रिक छात्रवृत्ति योजना, पोस्ट मैट्रिक छात्रवृत्ति योजना, उच्च श्रेणी छात्रवृत्ति, दिव्यांगजनों के लिए राष्ट्रीय फैलोषिप और राश्ट्रीय छात्रवृत्ति योजना और समुद्रपारीय छात्रवृत्ति योजनाएं कार्यान्वित हो रही हैं।
4. **भारतीय संकेत भाषा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण केन्द्र**–सरकार ने भारतीय संकेत भाषा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण केन्द्र (आईएसएलआरटीसी), ओखला, दिल्ली की स्थापना की है। इस केन्द्र का मुख्य उद्देश्य श्रवण बाधित व्यक्तियों के लाभ के लिए शिक्षण एवं भारतीय संकेत भाषा अनुसंधान कार्य के आयोजन के लिए श्रमशक्ति का विकास करना है। 6000 शब्दों का संकेत भाषा शब्दकोश तैयार करने की कार्रवाई चल रही है।

5. **विशिष्ट दिव्यांगजनों की आवश्यकताओं के लिए राष्ट्रीय संस्थान**–विशिष्ट दिव्यांगजनों की आवश्यकताओं को पूरा करने के विषय में, भारत सरकार ने विभाग के तहत विशिष्ठ दिव्यांगताओं में 7 राष्ट्रीय संस्थान (एनआई) स्थापित किए हैं। ये मानव संसाधन विकास में संलग्न हैं और दिव्यांगजनों के लिए पुनर्वास एवं अनुसंधान तथा विकास सेवाएं उपलब्ध करा रहे हैं। राजनंदगांव (छत्तीसगढ़), नैल्लोर (आंध्रप्रदेश), देवानगीर (कर्नाटक) और नागपुर (महाराष्ट्र) में 4 नए संयुक्त क्षेत्रीय केंद्र स्थापित किए गए हैं। आईजोल में 1 दिव्यांगता अध्ययन केंद्र स्थापित किया जा रहा है।

6. **भारतीय कृत्रिम अंग निर्माण निगम**–सरकार ने भारतीय कृत्रिम अंग निर्माण निगम (एलिम्को), कानपुर के आधुनिकीकरण के लिए आधुनिक सहायक उपकरणों के उत्पादन और निगम द्वारा देश भर में इस समय लाभान्वित किए जा रहे 1.57 लाख लाभान्वितों के विरूद्ध लगभग 6.00 लाख लाभान्वितों के लाभ के लिए कुल 286.00 करोड़ रूपए की लागत को मंजूरी दी है।

7. **राज्य स्पाइनल इंजरी केंद्रों की स्थापना**–नई पहलों में सरकार राज्य स्पाइनल इंजरी केंद्रों की स्थापना की सुविधा प्रदान करने के लिए राज्य स्तर पर स्पाइनल इंजरी के समेकित प्रबंधन हेतु ध्यान केंद्रित कर रही है। योजना के अंतर्गत राज्य राजधानी एवं संघ राज्य क्षेत्रों के जिला अस्पताल से संबंद्ध 12 बैड वाले समर्पित व्यापक पुनर्वास केंद्र स्थापित किए जायेंगे। सरकार दिव्यांगता खेलो के लिए तीन केंद्रों अर्थात जीरकपुर (पंजाब), विशाखापट्टनम (आंध्रप्रदेश) और ग्वालियर (मध्य प्रदेश) में स्थापित करने का भी प्रस्ताव है।

दिव्यांगजनों की समस्याएँ–

विशेषज्ञों का मानना है कि देश में दिव्यांगता की ऐसी कई श्रेणी जैसे चोटों, दुर्घटनाओं और कुपोषण आदि हैं, जिन्हें आसानी से रोका जा सकता है, किंतु देश का स्वास्थ्य क्षेत्र खासतौर पर ग्रामीण स्वास्थ्य क्षेत्र इस प्रकार की दिव्यांगता को भी रोकने में असफल रहा है। इसके अलावा देश में कई संवेदनशील वर्गों के लिये उचित स्वास्थ्य देखभाल, सहायता और उपकरणों तक मितव्ययी पहुँच का भी अभाव है।

भारत की शिक्षा प्रणाली में समावेशन का अभाव है, नियमित विद्यालयों में आज भी सामान्य बच्चों की अपेक्षा एक दिव्यांग बच्चे के लिये प्रवेश लेना काफी चुनौतीपूर्ण है। दिव्यांग विद्यार्थियों के लिये विशिष्ट विद्यालयों, प्रशिक्षित शिक्षकों और विशिष्ट शैक्षिक सामग्री की उपलब्धता का अभाव भी एक महत्त्वपूर्ण समस्या है। कई उच्च शिक्षण संस्थानों में दिव्यांग व्यक्तियों के लिये आरक्षण की व्यवस्था को उचित रूप से लागू नहीं किया गया है।

यद्यपि अधिकांश दिव्यांग वयस्क उत्पादक कार्य करने में सक्षम हैं, किंतु इसके बावजूद भी दिव्यांग वयस्कों में रोजगार की दर काफी कम है। विदित हो कि निजी क्षेत्र में दिव्यांग व्यक्तियों के रोजगार की स्थिति और भी खराब है। देश में अधिकांश इमारतें और परिवहन सेवाएँ दिव्यांग व्यक्तियों के प्रयोग हेतु अनुकूल नहीं हैं, जिसके कारण उन्हें समस्याओं का सामना करना पड़ता है। परिवार और समाज का नकारात्मक व्यवहार प्रायः दिव्यांग व्यक्तियों को परिवार, समुदाय या कार्यबल में सक्रिय भूमिका अदा करने से रोकता है। दिव्यांगजनों के अपने रोजमर्रा के जीवन में भी भेदभाव का सामना करना पड़ता है, खासतौर पर मानसिक रूप से अक्षम लोग जीवन के प्रत्येक स्तर पर सामाजिक बहिष्कार का सामना करते हैं। दिव्यांगजनों के लिये के लिये समय–समय पर विशेष भर्ती अभियान चलाए जाने के बावजूद सरकारी नौकरियों में दिव्यांग व्यक्तियों के लिये पूर्व में आरक्षित 3 प्रतिशत (अब 4 प्रतिशत) सीटों में से लगभग 1 प्रतिशत सीटों पर ही भर्तियाँ हो पाई हैं। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा प्रकाशित एक रिपोर्ट में कहा गया था

कि भारत में अभी भी 73 प्रतिशत से अधिक दिव्यांगजन श्रमशक्ति के दायरे से बाहर हैं। मानसिक रूप से अक्षम लोग, दिव्यांग महिलाएँ तथा ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले दिव्यांगजन सबसे अधिक उपेक्षित हैं। सरकार द्वारा दिव्यांग बच्चों को स्कूल में भर्ती कराने हेतु कई कदम उठाने के बावजूद आधे से अधिक दिव्यांग बच्चे स्कूल नहीं जा पाते हैं। रेलवे स्टेशनों और ट्रेनों में सुगम्यता का आभाव दिव्यांगों के साथ–साथ बुजुर्ग यात्रियों के लिये भी एक बड़ी समस्या है।

संस्थागत अड़चनें–वर्तमान में भी देश में दिव्यांगता के संदर्भ में जागरूकता, देखभाल, अच्छी और सुलभ चिकित्सा सुविधाओं की भारी कमी बनी हुई है। इसके अतिरिक्त पुनर्वास सेवाओं की पहुँच, उपलब्धता और सदुपयोग में भी कमी देखी गई है। ये कारक दिव्यांग लोगों के लिये निवारक और उपचारात्मक ढाँचा सुनिश्चित करने में बाधक बने हुए हैं। हालाँकि सरकार द्वारा सुगम्य भारत अभियान (**Accessible India Campaign**) के तहत सभी मंत्रालयों को दिव्यांग व्यक्तियों के लिये अपने भवनों एवं इमारतों को सुलभ बनाने का निर्देश दिये जाने के बाद भी वर्तमान में अधिकांश भवन दिव्यांग व्यक्तियों के लिये अनुकूल नहीं हैं। इसी प्रकार 'दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016' के तहत सरकारी नौकरियों और उच्च शिक्षा संस्थानों में दिव्यांग व्यक्तियों के लिये आरक्षण का प्रावधान किया गया है, परंतु वर्तमान में इनमें से अधिकांश पद खाली हैं।

गौरतलब है कि भारत 'दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र अभिसमय' ¼United Nations Convention on the Rights of Persons with Disabilities&UNCRPD½ का भी हिस्सा है। दिव्यांगता विशेष रूप से भारत जैसे विकासशील देश में एक गंभीर सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या है। दिव्यांगता के प्रति संवेदनशीलता बढ़ाने के लिये संयुक्त राष्ट्रद्वारा 3 दिसंबर को विश्व दिव्यांग दिवस के रूप में घोषित किया गया है। यह राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आदि जैसे जीवन के हर पहलू में दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकारों तथा उनके हितों को प्रोत्साहित करने की परिकल्पना करता है।

समस्याओं के समाधान हेतु कार्य

नए अधिनियम में मानसिक रूप से विकलांग, दिव्यांग महिलाएँ तथा ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले दिव्यांगजनों की अन्य चिंताओं के साथ–साथ रोजगार चिंताओं का भी संज्ञान लिया गया है, फिर भी सुधार तभी संभव है जब प्रावधानों का समुचित अनुपालन हो। दिव्यांगजनों की सहायता और सहायक उपकरणों के संबंध में अनुसंधान और विकास को भी आगे बढ़ाने की आवश्यकता है ताकि विभिन्न सुविधाओं तक उनकी पहुँच को आसान बनाया जा सके। यदि शिक्षा के अधिकार को अक्षरक्षः कार्यान्वित किया जाए तो दिव्यांग बच्चों के स्कूल न जाने की स्थिति बदल सकती है, जबकि नया अधिनियम भी शिक्षा संबंधी सुधारों की बात करता है। साथ ही स्मार्ट सिटी और शहरी सुविधाओं की बेहतरी पर जोर देते हुए दिव्यांगजनों की चिंताओं को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिये। रेलवे को सभी स्टेशनों को दिव्यांगजन सुगम बनाने के लिये एक कार्यक्रम तत्काल शुरू करना चाहिये और 'पोर्टेबल स्टेप सीढ़ी' जैसे उपायों को आजमाना चाहिये। सरकार का मानना है कि सभी परिधारकों, राज्य सरकारों एवं गैर सरकारी संगठनों सिविल सोसाइटिस की भागीदारी भी होनी चाहिए ताकि विभाग द्वारा चलाए जा रहे कार्यक्रमों एवं कल्याणकारी योजनाओं को बढ़ावा देने तथा दिव्यांगजनों को समाज में स्वतंत्र और प्रतिष्ठित ढंग से जीवन जीने के अवसर प्रदान किए जा सकें। भारत में कई कानूनों और योजनाओं के माध्यम से दिव्यांग व्यक्तियों के लिये अवसरों की सुलभता और समानता सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया है। हालाँकि भारत अभी भी दिव्यांग व्यक्तियों के लिये अवसंरचनात्मक, संस्थागत और दृष्टिकोण एवं व्यवहार संबंधी बाधाओं को दूर करने में बहुत पीछे है। समाज का एक बड़ा वर्ग दिव्यांग व्यक्तियों को **'सहानुभूतिपूर्ण'** और **'दया'** की नजर से देखता है, जिससे उन्हें सामान्य से अलग या 'अन्य' (**Other**) के रूप में देखे जाने और देश के तीसरे दर्जे के नागरिक के रूप में

उनसे व्यवहार को बढ़ावा मिलता है। इसके अलावा एक बड़ी समस्या समाज के एक बड़े वर्ग की मानसिकता से है जो दिव्यांग व्यक्तियों को एक दायित्व या बोझ के रूप में देखते हैं। इस प्रकार की मानसिकता से दिव्यांग व्यक्तियों के उत्पीड़न और भेदभाव के साथ मुख्यधारा से उनके अलगाव को बढ़ावा मिलता है।

समुदाय–आधारित पुनर्वास (**CBR**) दृष्टिकोण एवं CBR प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल स्तर पर एक व्यापक दृष्टिकोण है जिसका उपयोग उन स्थितियों में किया जाता है जहाँ सामुदायिक स्तर पर पुनर्वास के लिये आवश्यक संसाधन उपलब्ध होते हैं। **CBR** पद्धति यह सुनिश्चित करने के लिये आवश्यक है कि कोई भी दिव्यांग व्यक्ति अपनी शारीरिक और मानसिक क्षमताओं को अधिकतम स्तर तक बढ़ाने में सक्षम है, साथ ही उन्हें सभी अवसरों और सेवाओं की नियमित पहुँच सुलभ हो तथा उन्हें समुदाय में पूर्ण एकीकरण की स्थिति प्राप्त हो सके। दिव्यांगता को लेकर जागरूकता में वृद्धि–सरकारों, सामाजिक संस्थाओं और पेशेवर संगठनों द्वारा दिव्यांगता से जुड़ी द्वेषपूर्ण मानसिकता या सामाजिक भेदभाव को दूर करने के लिये व्यापक सामाजिक अभियान चलाने पर विचार करना चाहिये। इस संदर्भ में मुख्यधारा की मीडिया ने फिल्मों (जैसे–तारे जमीं पर, बर्फी आदि) के माध्यम से दिव्यांग व्यक्तियों के सकारात्मक प्रतिनिधित्त्व के लिये सही मार्ग चुना है। राज्यों के साथ साझेदारी–गर्भवती महिलाओं की देखभाल के संदर्भ में व्यापक जागरूकता और ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सा सुविधाओं की उन्नत एवं सुलभ पहुँच सुनिश्चित करना दिव्यांगता की समस्या से निपटने के प्रयासों के दो महत्त्वपूर्ण स्तंभ हैं।

दिव्यांगता की समस्या से निपटने के इन दोनों कारकों की पहुँच सुनिश्चित करने के लिये राज्य सरकारों के सक्रिय सहयोग के साथ–साथ केंद्र सरकार को भी स्वास्थ्य क्षेत्र में व्यापक निवेश करना चाहिये। गौरतलब है कि भारतीय संविधान के तहत स्वास्थ्य को राज्य सूची में शामिल किया गया है। दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 के लागू होने के बाद से इस अधिनियम के तहत निर्धारित आरक्षण को लागू करने में गड़बड़ी से जुड़े कई मामले देखने को मिले हैं। कोई भी नया कानून अपने उद्देश्य में तभी सफल हो सकता है जब दिव्यांग लोगों को उनके लिये आरक्षित पदों पर नियुक्त करने हेतु संबंधित अधिकारियों द्वारा इस संदर्भ में मजबूत इच्छाशक्ति दिखाई जाए। इसके साथ ही भारत में एक संस्कृति विकसित करने की आवश्यकता है, जहाँ किसी भी बुनियादी ढाँचे का निर्माण करते समय दिव्यांग लोगों के हितों को भी ध्यान में रखा जाए।

निष्कर्ष–

'दिव्यांग' या **'डिफरेंटली एबल्ड'** जैसे शब्दों के प्रयोग मात्र से ही दिव्यांग लोगों के प्रति बड़े पैमाने पर सामाजिक विचार धारा को नहीं बदला जा सकता। ऐसे में यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि सरकार द्वारा नागरिक समाज और दिव्यांग व्यक्तियों के साथ मिलकर कार्य करते हुए एक ऐसे भारत के निर्माण का प्रयास किया जाए जहाँ किसी की दिव्यांगता पर ध्यान दिये बगैर सभी का स्वागत और सम्मान किया जाता है। दिव्यांगता एवं सामाजिक न्याय के विश्लेषण से इस बात का पता चलता है कि यह एक संश्लिष्ट समस्या है इसके अनेक कारण परस्पर संबंधित है। यह एक सामाजिक, सांस्कृतिक समस्या है जिसके आर्थिक आधार भी है। दिव्यांगता कानून को अमल में लाने वाली एजेंसियों को इतना प्रभावशाली बनाया जाय कि कोई भी दिव्यांग व्यक्ति के साथ अन्याय न हो सके। इसके अतिरिक्त दिव्यांगजनों को शिक्षित एवं आर्थिक रूप से सुदृढ़ बनना होगा। इनकी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में अपनी सहभागिता बढ़ानी होगी। साथ ही साथ दिव्यांगजनों का सामाजिक करण ऐसा होना चाहिए कि वे त्याग एवं समर्पण की भावना के साथ अपने आत्म सम्मान को बचाये रखने के लिए विरोध करने की क्षमता भी विकसित कर सके। व्यापक समाज भी दिव्यांगों को पूर्ण बराबरी का दर्जा देने के लिए संवेदनशील हो।

सन्दर्भ सूची

1- Furoiason Eliot (1970) Profession of medicine; A study of Sociology of Applied Knowledge: Harper and Raw Meppzos-207
2. Davis Lennard (2006), The Disability Studies Reader, Routledge 2 nd Edition London
3. Wendell, Wendell (1996) Disability as a social cansincit, university of Pennsylvania Press
4. Michael Oliver (1996) understanding disability for Theory to Practice, Macmillan press
5. Action Aid (2003) Just people- Nothing special nothing unusual, Banglore books for change
6. Besguer, A & Sharma, A (1997) Disability: Challenges vs Responses New Delhi
7. Begum Nasha 1992 Disability women and Feminist agenda feminist Revico, 40(1) 70-84
8. Teaclor Miadevor (2016), Disability and Social Justice, 31
9, https://en.wikipedia.org/wiki/Rights_of_Persons_with_Disabilities_Act,_2016
10.https://www.google.com/search?q=disablity+act1995+wikipedia+in+hindi&rlz=1C1CHBD_enIN1066IN1066&oq=disablity+act1995+weki&aqs=chrome.3.69i57j33i10i160l4.44978j0j4&sourceid=chrome&ie=UTF-8
11. Disability and human right Global; perspectives Edited by Edurne Gorcia Iriarte Roy Mcconkeys robby Gilligam
12. Disability the basics, Tomshakespear
13. Career Opportunities for the Disabled, Dr. vinod kumar mishra kitab ghar ansari road new Delhi
14. Eminent Disabled people of the mind, Dr. vinod kumar mishra kitab ghar ansari road new Delhi
15 विकलांग विभूतियों की जीवनगाथाएँ, डॉ. विनोद कुमार मिश्र, किताबघर, अंसारी रोड़, नई दिल्ली
16 विकलांगों लिए करियर, डॉ. विनोद कुमार मिश्र, किताबघर, अंसारी रोड़, नई दिल्ली
17 विकलांगता : समस्याएँ व समाधन, डॉ. विनोद कुमार मिश्र, किताबघर, अंसारी रोड़, नई दिल्ली
18 विकलांगों के लिए रोजगार, डॉ. विनोद कुमार मिश्र, किताबघर, अंसारी रोड़, नई दिल्ली
19विकलांग स्वस्थ व आत्मनिर्भर कैसे बनें, डॉ. विनोद कुमार मिश्र, किताबघर, अंसारी रोड़, नई दिल्ली

उच्च शिक्षा में कार्यरत महिला शिक्षिकाओं की प्रस्थिति एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

कु. प्रगति पाण्डेय
शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश
प्रोफेसर अमिता सिंह
समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश

सारांश :

वर्तमान समय में महिलाएँ भी विकास की दौड़ में शामिल हो रही है। अब महिलाएँ भी घर की चारदीवारियों से निकलकर स्कूलों, कॉलेजों, कार्यालयों से लेकर उद्योग–धन्धों, कारखानों, न्यायालयों, प्रशासन, राजनीति तथा अन्य व्यवसायिक क्षेत्रों में भी कार्य कर रही है नौकरी करने के कारण जहाँ एक ओर महिलाओं की प्रस्थिति में परिवर्तन आया है। वहीं दूसरी ओर उनके समस्याओं और चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।

ऐसी समस्या और चुनौती समाज के रीति–रिवाजों और कार्यस्थल के माहौल में ही उभरती है। सबसे बड़ी चुनौती होती है परिवार और कैरियर के बीच का संतुलन बनाना। प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य उच्च शिक्षा में कार्यरत महिला शिक्षिकाओं की प्रस्थिति का विश्लेषण करना है।

मूल शब्द : महिला, शिक्षिका, समस्या, प्रस्थिति, उच्च शिक्षा

प्रस्तावना :

भारत एक सुदृढ़ सांस्कृतिक विरासत, सभ्यता तथा परम्परागत जीवन शैली वाला देश है। जहाँ धर्म, संस्कृति, रीति–रिवाज में विविधाताएँ पायी जाती है। यहाँ सामाजिक व्यवस्थाएँ इस प्रकार से फैली हुई है कि यहाँ के वातावरण में हर तरफ त्याग, समपर्ण, सहनशीलता तथा कर्तव्यनिष्ठा देखने को मिलता है। इस प्रकार समाज का निर्माण महिला व पुरुष दोनों मिलकर करते है जिन्हें समाज के दो सुदृढ़ पहिया माना जाता है। समाज में दोनों (महिला–पुरुष) का महत्वपूर्ण योगदान है। इन दोनों के बिना समाज की कल्पना नहीं कि जा सकती है।

लेकिन विभिन्न कालक्रम में महिलाओं की प्रस्थिति में बहुत से उतार–चढ़ाव देखने को मिला। भारतीय समाज में महिलाओं का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सदैव से महिलाओं ने समाज के निर्माण में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से महत्वपूर्ण योगदान दिया है। बदलते कालखण्ड के अनुसार महिलाओं की प्रस्थिति भी बदलती रही है।

प्रस्थिति :

प्रस्थिति समाज में किसी व्यक्ति द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। एक व्यक्ति की एक समय में कई प्रस्थितियाँ हो सकती है। जैसे एक महिला एक समय में बेटी, बहु, माँ, शिक्षिका, कल्ब सदस्य....इत्यादि।

प्रस्थिति को 'अधिकारों और कर्तव्यों के संग्रह' के रूप में लिंटन ने परिभाषित किया है।

महिलाओं के 'प्रस्थिति' समाज के प्रबन्धन में महिलाओं की सहभागी अधिकारों और उत्तरदायित्वों से सहसम्बन्धित है। इस शब्द से सामाजिक संरचना में अधिकारों और उत्तरदायित्वों की दृष्टि से पुरुषों की तुलना में महिलाओं की प्रस्थिति का पता चलता है। पुरुषों और महिलाओं के लिए अवसर संरचना जितना अधिक संतुलित होगी समाज में महिलाओं की भूमिका उतनी ही व्यापक होगी और इसके परिणाम से उनकी प्रस्थिति भी उच्चतर होगी।

महिलाओं की सामाजिक प्रस्थिति :

महिलाओं की प्रस्थिति समाज के प्रबन्धन में महिलाओं की सहभागी अधिकारों और उत्तरदायित्वों से सहसम्बन्धित है। इस शब्द से सामाजिक संरचना में अधिकारों और उत्तरदायित्वों की दृष्टि से पुरुषों की तुलना में महिलाओं की प्रस्थिति का पता चलता है। समाज में महिलाओं की प्रस्थिति की व्याख्या परम्परा, धर्म, विचारधारा के माध्यम से उनके लिए निश्चित भूमिका की दृष्टि और आर्थिक विकास की स्थिति से की जाती है। प्रस्थिति में उन्नयन का अनिवार्य रूप से अभिप्राय समाज में सहभागी अधिकारों के दायरे का विस्तार है। पुरुषों और महिलाओं के लिए अवसर संरचना जितना अधिक संतुलित होगी समाज में महिलाओं की भूमिका उतनी ही व्यापक होगी और इसके परिणामस्वरूप उनकी प्रस्थिति भी उच्चतर होगी। प्रस्थिति का विचार समानता के भाव का भी बोध करता है।

कार्यरत महिला :

नौकरी करने वाली महिलाओं के सन्दर्भ में 'कार्यरत महिला' शब्द का प्रयोग किया जाता है। अर्थात् वे महिलाएँ जो रोज घर से बाहर निकलकर संगठित या असंगठित क्षेत्र में आर्थिक या व्यावसायिक गतिविधियों में व्यस्त रहती है।

उच्च शिक्षा :

प्राथमिक एवं माध्यमिक के पश्चात् की शिक्षा को उच्च शिक्षा कहते है। जो प्रायः ऐच्छिक होती है। उच्च शिक्षा विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों एवं प्रौद्योगिकी संस्थानों में दी जाती है।

साहित्य समीक्षा :

- दुबे लीला एवं रजनी पलरीवाल (1990) ने अपनी पुस्तक 'स्ट्रक्चरल एण्ड स्ट्रेटेजी वीमेन वर्क एण्ड फैमिली इन एशिया' में कार्यरत महिलाओं और पारिवारिक संरचना तथा परिवार का इन महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण से सम्बन्धित विश्लेषण प्रस्तुत किया है।
- गहलोत सपना, मन्जु चौधरी (2018) ने अपने शोध पत्र 'महिलाओं की सामाजिक स्थिति की विवेचना' में लिखी है कि 19वीं सदी से 21वीं सदी तक आते–आते महिलाओं की स्थिति में बदलाव आया है। वर्तमान में महिलाएँ आत्मनिर्भर हो रही है, साथ ही पुरुषों के समकक्ष आत्मविश्वास से खड़ी हो रही है।
- मेघा (2019) ने अपने शोध पत्र, 'भारत में कार्यकारी नारियों की स्थिति' में लिखा है की असंगठित क्षेत्र में कामकाजी महिलाओं को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। निजी संस्थाओं में कार्यरत महिला कर्मचारियों को शासकीय संस्थानों में कार्यरत महिला कर्मचारी के अपेक्षा तनाव अधिक होता है।
- सुल्ताना अजरा, (2021), ने अपने शोध पत्र 'कामकाजी महिलाओं के पारिवारिक समायोजन का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन' के निष्कर्ष में बताया कि कामकाजी महिलाएँ समाज के विकास में अपना योगदान दे रही है। वह घर व कार्यस्थल में भलि–भांति समायोजन के साथ परिवार के दायित्वों को भी निष्ठापूर्वक निभा रही है।
- देसाई नीरा (2011), ने अपनी पुस्तक 'भारतीय समाज में महिलाएँ' में महिलाओं की दशा का विश्लेषण कि है।
- कपूर प्रमिला (1973), ने अपनी पुस्तक 'लव मैरिज एण्ड सेक्स' में बताया है कि महिला नौकरी केवल धन के लिए नहीं करती बल्कि अपनी प्रतिभा का सदुउपयोग करती है जिससे वो अपने दैनिक जीवन में खुशी का अहसास करती है।

अध्ययन का उद्देश्य :

प्रस्तुत अध्ययन के अग्रलिखित उद्देश्य है :–

- कार्यरत महिला शिक्षकाओं की सामाजिक व आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना।
- कार्यरत महिला शिक्षकाओं की दोहरी भूमिका का अध्ययन करना।
- कार्यरत महिला शिक्षकों को परिवार से मिलने वाले सहयोग को ज्ञात करना।

शोध पद्धति :

प्रस्तुत शोध के उद्देश्य को पुरा करने के लिए वर्णनात्मक अनुसंधान प्ररचना का प्रयोग किया गया है। तथ्य एकत्र करने के लिए उत्तर प्रदेश राज्य के वाराणसी शहर जिसे सर्वविद्या की राजधानी के रूप में जाना जाता है। अर्थात् यहाँ पर्याप्त मात्रा में शिक्षण संस्थाओं की उपलब्धता है। यहाँ के प्रमुख विश्वविद्यालयों में से महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ के सम्बध कॉलेजों के विभिन्न अध्ययन केन्द्रों में कार्यरत महिला शिक्षकों को इस अध्ययन के समग्र के रूप में चयन किया गया है। कॉलेजों का चयन सरल सदैव निर्दशन की लाटरी प्रणाली द्वारा किया गया है।

निदर्शन :

महिला उत्तरदात्रियों का चयन सोउद्देश्यपूर्ण निर्दशन के माध्यम से किया गया है।

तथ्य संकलन :

प्रस्तुत शोध पत्र में तथ्यों का संकलन प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों स्रोतों से किया गया है। प्राथमिक स्रोत में ऑनलाइन प्रश्नावली (गुगल फॉर्म द्वारा निर्मित) का उपयोग किया गया है। द्वितीयक स्रोत में पुस्तकों, जनरलों तथा विभिन्न वेबसाइट का उपयोग किया गया है।

विश्लेषण तथा परिणाम :

सारणी संख्या–1

उत्तरदात्रियों का धर्म

क्र.सं.	आय	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हिन्दू	29	58
2	इस्लाम	18	36
3	अन्य	3	6
कुल योग		50	100

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक उत्तरदात्रियों 58% हिन्दु धर्म की है।

जाति : क्षेत्रीय कार्य के दौरान यह बात स्पष्ट हुई है कि 56.5% उत्तरदात्रियों सामान्य जाति की है।

सारणी संख्या–2

उत्तरदात्रियों का शैक्षणिक स्तर

क्र.सं.	शैक्षणिक स्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
1	NET	17	34
2	JRF	3	6
3	NET/Ph.D	22	44
4	तीनों	8	16
कुल योग		50	100

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि अधिकांश उत्तरदात्रियों 44.4 के शैक्षिक योग्यता NET/Ph.D है जबकि JRF मात्र 6% उत्तदात्रियाँ है।

पद :

अधिकांश उत्तरदात्रियाँ 72.6% सहायक आचार्य के पद पर कार्यरत है।

सारिणी संख्या–3

उत्तरदात्रियों की मासिक आय

क्र.सं.	आय	आवृत्ति	प्रतिशत
1	70,000 से 80,000	2	4
2	80,000 से 90,000	28	56
3	90,000 से 100,000	12	24
4	100,000 से 150000	2	4
5	150,000 या अधिक	6	12
कुल योग		50	100

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि अधिकांश उत्तरदात्रियो 56% का मासिक आय 80,000 से 90,000 के बीच में है जबकि 150,000 या उससे अधिक आय मात्र 12.1% उत्तरदात्रियों का है।

सारणी संख्या–4

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में आने के बाद सामाजिक प्रतिष्ठा में परिवर्तन

क्र.सं.	सामाजिक प्रतिष्ठा में परिवर्तन	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	50	100
2	नहीं	0	0
कुल योग		50	100

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि अधिकांश उत्तरदात्रियों 100% मानती है कि उच्च शिक्षा में आने के बाद उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी है।

सारणी संख्या–5

आप कार्यस्थल पर दबाव महसूस करती हैं

क्र.सं.	कार्यस्थल पर दबाव	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	7	14
2	नहीं	14	28
3	यदा–कदा	29	58
कुल योग		50	100

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि कार्यस्थल पर अधिकांश 58% का मानना है कि यदा–कदा ही कार्यस्थल पर दबाव महसूस करती है जबकि 28% उत्तरदात्रियों तो बिल्कुल भी दबाव महसूस नहीं करती है।

सारणी संख्या–6

कार्यस्थल पर जेंडर के आधार पर भेदभाव की अनुभूति

क्र.सं.	जेंडर के आधार पर भेदभाव	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	11	22
2	नहीं	34	68
3	यदा–कदा	5	10
कुल योग		50	100

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि 68% उत्तरदात्रियों का कहना है कि कार्यस्थल पर जेंडर के आधार पर भेदभाव नहीं होता है। जबकि 10% उत्तरदात्रियों का मानना है कि यदा–कदा होता है।

समाज में लैंगिक असमानता है या नहीं उसके जवाब में 87% उत्तदात्रियों का कहना है कि समाज में लैंगिक असमानता आज भी है।

सारणी संख्या–7

परिवार में आर्थिक निर्णय लेने में आपकी सहमति

क्र.सं.	निर्णय लेने में सहमति	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	45	90
2	नहीं	0	0
3	कभी–कभी	5	10
कुल योग		50	100

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक उत्तरदात्रियों 90% का कहना है कि परिवार में आर्थिक निर्णय लेने में उनकी सहमति ली जाती है। जबकि 10% उत्तरदात्रियों का कहना है कि कभी–कभी सहमति ली जाती है।

सारणी संख्या–8

आप अपने कार्यस्थल और घर के कार्यों में सामंजस्य स्थापित करने में कठिनाई महसूस करती हैं?

क्र.सं.	सामंजस्य स्थापित करना	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	36	72
2	नहीं	14	28
कुल योग		50	100

उपरोक्त सारणी से ज्ञात होता है कि 72 प्रतिशत उत्तरदात्रियों को घर और कार्यस्थल के कार्यों में सामंजस्य स्थापित करने में कठिनाई महसूस होता है। एक रोचक तथ्य सामने आया है कि 92 प्रतिशत उत्तरदात्रियों का कहना है कि उनके सामंजस्य स्थापित करने में उनका सहयोग पति करते है।

सारणी संख्या–9

आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर महिलाओं के परिवार में उसकी प्रस्थिति को लेकर बदलाव

क्र.सं.	प्रस्थिति में परिवर्तन	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	39	78
2	नहीं	0	0
3	थोड़ा बहुत	11	22
कुल योग		50	100

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि अधिकांश 78 प्रतिशत उत्तरदात्रियों का मानना है कि आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने से प्रस्थिति में बदलाव आया है। उत्तरदात्रियों का मानना है कि शिक्षा और आर्थिक स्वालंम्बन में सकारात्मक सम्बन्ध है।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उच्च शिक्षा में कार्यरत महिला शिक्षिकाओं की प्रस्थिति में सकारात्मक बदलाव आया है। 96 प्रतिशत उत्तरदात्रियों मानती है कि उच्च शिक्षा में आने के बाद सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ी है। साथ ही 78 उत्तरदात्रियों का मानना है कि आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर महिलाओं के परिवार में उसकी प्रस्थिति अच्छी होती है। परिवार के निर्णय में सहमति ली जाती है। वहीं 72 प्रतिशत उत्तरदात्रियों का कहना है कि कार्यस्थल और घर के कार्यों में सामंजस्य स्थापित करने में कठिनाई महसूस होता है। अन्ततः कह सकते हैं कि उच्च शिक्षा के क्षेत्र में आने के बाद महिलाओं की प्रस्थिति अच्छी हुई है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. कृष्ण राज, मैत्रेयी, 1986, वूमेन्स स्टडीज इन इंडिया : सम पर्सपेक्टिव, पापुलर प्रकाशन मुम्बई।
2. दुबे, लीला और रजनी पलरीवाला 1990, स्ट्रक्चर्स एण्ड स्ट्रैटेजीज : वीमेन, वर्क एण्ड फैमिली इन एशिया सेज पब्लिकेशन नई दिल्ली।
3. गहलोत सपना, चौधरी मन्जु, 2018, महिलाओं की सामाजिक स्थिति की विवेचना IJCRT, Volume 5, ISSUE 3 ISSN : 2320-2882
4. कु., मेघा, 2019, भारत में कार्यकारी नारियों की स्थिति, International Journal of Applied Research Volume-5 ISSN 2394-7500.
5. गुप्ता, सुभाषचन्द्र, 2016, कार्यशील महिलाएँ एवं भारतीय समाज, अर्जुन पब्लिकेशन हाउस।
6. कपूर प्रमिला, 1973, लव मैरिज एण्ड सेक्स, दिल्ली विकास पब्लिशिंग हाँ एवं भारतीय समाज, अर्जुन पब्लिकेशन हाउस।
7. कपूर प्रमिला, 1973, लव मैरिज एण्ड सेक्स, दिल्ली विकास पब्लिशिंग हाऊस प्राइवेट लिमिटेड।
8. देसाई नीरा, उषा ठाकुर (2011), भारतीय समाज में महिलाएँ, नेशनल बुक ट्रस्ट नई दिल्ली।
9- https://egyankosh.ac.in/bistrean/123456789unit11pdf
10- https://egyankosh.ac.in/bistrean/123456789unit-2pdf

अतीत व वर्तमान के आइने में भारतीय महिलाएँ

डॉ0 राजेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
डी0ए0वी0पी0जी0 कालेज, आजमगढ़

सारांश–

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में स्त्रियों को महत्व दिया जाता रहा है स्त्री किसी भी समाज की आधारशिला होती है और जिन समाजों में स्त्रियों की उपेक्षा की गई है वे समाज कभी विकसित नहीं हो पाये इसलिए विकसित समाज की कल्पना को साकार करना है तो हमें स्त्रियों को महत्व देना होगा प्रस्तुत अध्ययन में भारतीय स्त्रियों की अतीत से वर्तमान तक की दशा का विश्लेषण किया गया है।

शब्द कुंजी– महिला, समाज, महत्व, समानता, तिरस्कार, व्यवहार

प्रस्तावना–

प्राचीन काल में भारतीय महिला–

भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत स्त्रियों को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है सैन्धव तथा उससे भी पूर्ववर्ती सभ्यता में प्रचिलित धार्मिक चिन्तन एवं विश्वासों से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में मातृदेवी की उपासना होती थी जो आदर्शात्मक समाज में नारी जाति के सम्मान का सूचक है। प्रागैतिहासिक समाज में मातृदेवी की सर्वाधिक तथा श्रेष्ठतम देवी रूप में उपासना तत्कालीन समाज में नारी जाति के उच्च स्थान को प्रकट करती है। हिन्दू समाज में उनका सम्मान पुरुषों की भांति आदर्श एवं मर्यादा सम्पन्न था। भारतीय धार्मिक चिन्तन परम्परा में जहां त्रिदेवों अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश के साथ विभिन्न देवताओं की उपासना होती थी वहीं साथ में वही सरस्वती, लक्ष्मी एवं दुर्गा की उपासना की जाती थी जो पुरुष और स्त्री की समान अवधारणा पर आकृति थी।[1]

वैदिक युग में स्त्रियां प्रत्येक क्षेत्र में समान रूप से प्रतिष्ठित थी। शिक्षा, धर्म, व्यक्तित्व और सामाजिक विकास में उसका महत्वपूर्ण योगदान था। वह पति के साथ मिलकर घर के याज्ञिक कार्य सम्पन्न करती थी। नारियां गार्गी और मैत्रेयी का उल्लेख मिलता है।

महाकाव्य काल में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति अच्छी थी। स्त्रियों की स्वतंत्रता में कोई प्रतिबंध नहीं था। वे स्वतंत्रतापूर्वक धार्मिक कृत्यों, एवं सामाजिक समारोहों में पुरुषों की भांति भाग लेती थी। रामायण में सीता और महाभारत में द्रौपदी का भ्रमण एवं समारोहो में उनकी सहभागिता उस युग के सम्मान की सूचक है जबकि दोनो को अपने अस्तित्व की अग्नि परीक्षा में अपने–अपने युगों भयंकर संघर्ष करना पड़ा।

मध्यकालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति :–

सल्तनत काल के प्रारम्भिक चरण में मुसलमान उत्साही, परिश्रमी, धर्मशील तथा चरित्रवान थे परन्तु कालान्तर में इनका नैतिक पतन हो गया जिसके कारण सुल्तानों एवं अमीरों के हरन में स्त्रियां रहने लगी। मुस्लिम परिवारों में स्त्रियों की दशा बहुत ही दयनीय और खराब थी। मुस्लिम समाज में बहु विवाह की प्रथा प्रचलित थी। जिसके कारण सहपत्नियों में गृहकलह एवं अशांति थी। मुस्लिम नारिया पूर्णतः पति और आश्रित थी तथा वह किसी से बात नहीं कर सकती थी। पति द्वारा पत्नी को तलाक देने का पूर्ण अधिकार था।

सल्तनत काल में परदा प्रथा प्रचलित थी। रजिया सुल्तान ने इत्त प्रथा की अवहेलना कर परदे के बिना राजदरबार में जाती थी। परन्तु मुस्लिम जीवन पद्धति में इसका विरोध था। उच्च स्तरीय परिवारों की

अपेक्षा निम्न मुस्लिम स्त्रियां सिर से पैर तक बुरके में रहती थी। हिन्दु स्त्रियां अपहरण के भय से परदे में रहती थी। तुर्की सरदारों के भय से हिन्दू समाज में बाल विवाह की परम्परा जन्म ले चुकी थी। इस युग में स्त्री शिक्षा की नियमित व्यवस्था नहीं थी उच्च परिवार की स्त्रिया ही शिक्षा प्राप्त कर पाती थी। केवल रानी इस युग में रूपवती एवं परम विदुषी महिला थी। रजिया सुल्तान एक कुशल प्रशासिका एवं घुड़सवार थी जिससे अनुमान किया जा सकता कि उसने प्रशासन है एक शासक था। उसके शासनकाल में शिक्षा व्यवस्था संचालित करने हेतु विभिन्न स्थानो पर मखतब और मदरसे खोले गये थे। शर्की काल में जौनपुर विद्या का प्रमुख केन्द्र था। महमूद शाह की पत्नी बीबी राजी परम विदुषी थी जिसकी उच्चकोटि की प्रतिष्ठा थी। इन्होंने जौनपुर में स्त्री शिक्षा के लिए विशेष व्यवस्था की थी। उन्होंने एक शानदार मस्जिद तथा उसी के निकट खानखाह (मठ) तथा एक मदररो का निर्माण किया। इसका नामकरण नमाजगाह रखा। शिक्षा व्यवस्था हेतु यह समय जौनपुर के लिए स्वर्णिम काल था। जिसे शिराजे हिन्द कहा जाता था।[2]

मुगल कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति–

मुगल काल में राजनीतिक परिर्वतन के साथ सामाजिक चिन्तन एवं परिस्थिति में परिवर्तन का युग था। मुगल काल में पूर्व की अपेक्षा स्त्रियों की दशा अत्यंत सोचनीय एवं पतनशील थी। परिवार में लड़कों की अपेक्षा लड़कियों का जन्म दुखद एवं अशुभ माना जा सकता था। मुस्लिम समाज में पर्दा प्रथा प्रचलित थी। वे सदेव बुर्के का प्रयोग करती थी। चरित्रहीनता और गरीबीवश ही स्त्रियां घर से बाहर निकलती थी। विशेष अवसरों पर ही स्त्रियों को बाहर निकलने की अनुमति नहीं थी। अपवाद स्वरूप नूरजहाँ परदा नहीं करती थी और जनता के सामने आने में उसे कोई हिचकिचाहट नहीं थी। एकान्त में मुस्लिम स्त्रियों को अपने सम्बन्धियों से मिलने की भी अनुमति नहीं थी। बंदायनी के अनुसार अकबर ने यह आदेश निकाला था कि भ्रमण करती है तो उसे वैश्यालय में ले जाया जाय और उसे पेशे को अपनाने के लिए बाध्य किया जाय। परदा प्रथा इतनी प्रभावी थी कि अमीरों के घर में किसी भी बाहरी पुरुष के प्रवेश की अनुमति नहीं थी।

मुस्लिम समाज में बहु विवाह प्रबलित था। वे प्रायः तीन या चार पत्नियां रखते थे सम्राट अकबर ने बाल विवाह रोकने के लिए आदेश दिया था कि बारह वर्ष से कम की कन्या और सोलह वर्ष से कम लड़के का विवाह नहीं हो सकता। इसी प्रकार सती प्रथा को रोकने के लिए सम्राट अकबर ने आदेश निकाला था किसी स्त्री को जबरदस्ती सती होने के लिए बाध्य करने वाले को दण्डित किया जायेगा।

मुगल काल में भी राजपूत स्त्रियों में जौहर प्रथा प्रचलित थी। इस प्रथा से हुमायूँ भी प्रभावित हुआ था। हुमायूँनामा में उल्लिखित है कि 'कन्नौज की लड़ाई में पराजित होने से हुमायूँ की पत्नी अफीका बेगम शेरशाह के अधिकार में आ गयी थी तब हुमायूँ को इस बात का पश्चाताप था की उसे अपने बेगम को मार देना चाहिए था। इस प्रकार मुगल काल में विभिन्न झंझावातो एवं परिस्थितियों के कारण चाहे हिन्दू हो अथवा मुस्लिम नारियों की स्थिति अत्यन्त सोचनीय, चिन्तनीय एव पतनशील थी। इन विपरीत परिस्थितियों में भी मुगलकाल में मीराबाई, नूरजहाँ, आकाबाई, कैनाबाई, तथा गुलबदन आदि विदुषी स्त्रियां थी परन्तु इनकी संख्या कम थी जिसे अपवाद स्वरूप कहा जा सकता है सामान्य जन जीवन में स्त्रियों की शिक्षा व्यवस्था का अभाव था। हिन्दू हो या मुस्लिम स्त्रियां घर में ही पर्दे के भीतर रहकर शिक्षा ग्रहण करती थी।[3]

आधुनिक काल में स्त्रियों की स्थितिः–

19वीं शदी के प्रारम्भ तक भारतीय समाज में नारियों की दशा अत्यंत चिन्तनौय थी। पुरुष प्रधान समाज में पुरुषो की नीति निर्धारण के अन्तर्गत नारी जीवन को परिवार की चहारदीवारी में कैद रखा गया। मानव चिन्तन में नारी के विकास का स्थान ही नहीं था हिन्दू और मुस्लिम नारियां मात्र संतानोत्पत्ति एवं पारिवारिक जिम्मेदारियों तक सीमित कर दी गयी। ऐसी परिस्थिति में नारियों की शिक्षा का प्रश्न ही उठता

क्योंकि धार्मिक एवं सामाजिक जटिलता में उनका जीवन प्रतिबंधित था कुछ अंश तक यदि वे शिक्षित थी तो राजपरिवार एवं परिवारिक वातावरण का प्रभाव था।

यूरोपीय प्रभाव के कारण उत्पन्न होने वाली परिवर्तनकारी शक्तियों ने जिस बौद्धिक कोलाहल की आवश्यकता को जन्म दिया उससे भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक मान्यताओं में परिर्वतन होना प्रारम्भ हो गया था। ब्रिटिश राज्य व्यवस्था एव पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव के परिणाम स्वरूप भारत में परिर्वतन की चेतना उद्‌भूत हुई। यूरोप में इस समय विभिन्न वैज्ञानिकों, दार्शनिकों, समाज शास्त्रियों एवं महान विचारकों के कारण विचार जगत में व्यापक परिर्वतन आया बेकन, हयूम, लाक और रूसों के चिन्तन का प्रभाव सम्पूर्ण यूरोपीय व्यवस्था पर पड़ा जिससे नवीन समाज का निर्माण हुआ।

19वीं–20वीं शताब्दी में भारत में राजाराम मोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राना डे, दयानन्द सरस्वती, सर सैय्यद अहमद खां, बंकिम चन्द्र चटर्जी, श्रीमती एनी बेसेण्ट, महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू, सरोजनी नायडू, कमला देवी चटोपध्याय आदि समाज भारतीय समाज सुधारको ने विधवाओं की दुर्दशा तथा सती प्रथा जैसी कुप्रथा को धर्म के विरुद्ध एलान कर उसके उन्मूलन हेतु नवीन क्रान्ति का सृजन किया। स्त्री शिक्षा, सती प्रथा का विरोध, बाल विवाह और बहु विवाह का विरोध, विधवा पुर्नविवाह का समर्थन तथा देवदासी प्रथा को समाप्त करने का बेडा उठाया। भारतीय चितंको एवं साहित्यकारों ने नारी उत्थान का नवीन अध्याय प्रस्तुत किया। भारतीय समाज सुधारको के सदप्रयासों से भारतीय जनमानस में शिक्षा की नवीन व्यवस्था और स्त्री शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया गया। शिक्षा व्यवस्था को नवीन एवं प्रगतिशील विचारो से अभिप्रेत किया गया। प्राचीन भारतीय चिन्तन ज्ञानं तृतीयं मनुजस्य नेत्र और सा विद्या या विमुक्तये के सिद्धान्त को नवीन परिधान में परिभाषित किया गया जो मानव जीवन व्यवहारिक रूप में उपयोगी एवं सार्थक हो। दुर्खीम का मत है कि शिक्षा अधिक आयु के लोगो द्वारा ऐसे लोगो के प्रति की जाने वाली क्रिया है जो अभी सामाजिक जीवन में प्रवेश करने के योग्य है। इसके लिये आवश्यक है कि नारी समाज को पूर्ण शिक्षित किया जाय और उन्हें प्रगति का अवसर प्रदान किया जाय।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय महिलाओं की स्थिति में व्यापक सुधार हुआ है। उन्हें अंधविश्वासी और जटिल रूढ़िवादी परम्पराओं से मुक्ति का अवसर प्राप्त हुआ। उन्हें शिक्षा, रोजगार तथा राजनीतिक क्षेत्रों में भागीदारी का अवसर प्राप्त हुआ। साथ ही इनका शोषण भी कम हुआ था उन्हें अपने संगठन बनाने के लिए अवसर मिले जिससे वे अपनी समस्याओं में अधिक रुचि ले सकें। भारतीय संविधान में महिलाओं एवं पुरुषों का समान अधिकार प्रदान किया गया है। कानून के निर्माण में दोनो में समानता स्थापित की गई है। जिनके कारण महिलाओं की स्थिति में व्यापक परिवर्तन हुआ है। महिलाओं में शिक्षा एवं राष्ट्र के नव निर्माण में जन–जागृति एवं संचेतना स्थापित हुई है।[4]

विश्व के धरातल पर महिलाएं समाज, संस्कृति एवं सभ्यता की मेरूदण्ड मानी गई है। महिलाओं की शक्ति भंडार एवं परिवार की नींव माना गया है। चूंकि परिवार समुदाय की नींव है और समुदाय राष्ट्र की, अतएव महिला ही समाज व राष्ट्र की नौका की वास्तविक कर्णधार है।

सामाजिक परम्परा में महिलाएं देवी की तरह पूजी गई तो कभी चेरी की नांति प्रताड़ित भी की गई है। यद्यपि वर्तमान युग में महिलाओं में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है और उन्हें शिक्षा सहित समग्र विकास का अवसर प्रदान हुआ है परन्तु यह उनकी समस्या का सम्पूर्ण अन्त नहीं है। आज भी उनकी प्रताडना का क्रम जारी है। सैद्धान्तिक रूप में वे भेद–भाव का शिकार है। उन्हें पुरुषो के समान नहीं समझा जाता तथा इनको उचित सम्मान नहीं दिया जाता।[5]

निष्कर्ष–

प्राचीन काल में भारतीय समाज की महिलाओं को पुरूषों के बराबर समाज में अधिकार प्राप्त था किन्तु समय के सापेक्ष उनकी स्थितियों में गिरावट आती गई जिससे उनका जीवन दैयनीय हो गया। स्वतन्त्रोत्तर काल से ही भारतीय सामाजिक चिन्तकों द्वारा महिलाओं की प्रस्थिति में सुधार करने का प्रयास किया जाता रहा है और स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने विभिन्न संवैधानिक कानून, योजना व कार्यक्रमों के माध्यम से महिलाओं की प्रस्थिति में सुधार करने का प्रयास किया है क्योंकि नारी समाज जब तक सशक्त नहीं होता तब तक सभ्यता पूर्ण विकसित नहीं मानी जा सकती। आज सम्पूर्ण विश्व महिला सशक्तिकरण की दिशा में प्रभावशाली कदम बढ़ा रहा है। यह सम्पूर्ण विश्व और लोकतंत्र की प्रमुख आवश्यकता बन चुकी है। यह तभी सम्भव है जब महिलाए शिक्षित होगीं वर्तमान में महिलाएं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में शिक्षित होकर शिक्षक, डॉक्टर, इंजीनियर, प्रशासनिक अधिकारी, वैज्ञानिक, खेल–कूद मनोरजंन, न्याय विभाग आदि में सनाज और राष्ट्र का प्रतिनिधित्व कर रहीं है। अर्थव्यवस्था के साथ–साथ राजनैतिक, सामाजिक और अन्य सांस्कृतिक क्षेत्रों में महिलाएं सफलतापूर्वक अपनी भूमिका का निर्वहन कर रही है।

संदर्भ सूची–

1. महाभारत शांतिपर्व, 108/17– पितृम दस तु मातै का सर्वावा पृथ्वीमवि।
2. महाभारत, 1/74/53– अर्द्धमार्य मुनष्य मार्या श्रेष्ठतय सखाः।
3. प्रो0 रेखा चतुर्वेदी– प्राचीन भारत ने राज्य तथा समाज आर्थिक एवं धार्मिक जीवन
4. तिवारी, आर0पी0 एवं शुक्ला डी0पी0 (1986), मध्यकालीन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में
5. दूबे, सत्स नारायण (2002), जौनपुर का गौरवशाली इतिहास साहित्य सृजन संस्थान, जौनपुर, पृ0 1

The Opinion V.13, N. 25 J-J 2024 **ISSN. 2277-9124**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.0(IIFS)

पर्यावरण का मानव जीवन पर प्रभाव : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

अनुराधा
शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी

प्रो0 ब्रजेश कुमार सिंह
शोध निर्देशक– समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी

आदिकाल से मनुष्य प्रकृति के स्नेह पूर्ण सहचर्य में अपना भौतिक विकास करता आ रहा है। वह प्रकृति के गोद में खेला–कूदा बड़ा हुआ और अंततः उसी में मिल गया। जैसे–जैसे सभ्यता का विकास हो रहा है, वैसे–वैसे आधुनिकीकरण की लालसा मनुष्य की बढ़ती जा रही है। निरंतर बढ़ती आवश्यकताओं ने पहले सहज उपलब्ध साधनों के जरिये अपना काम चलाया और जब वे भी समाप्त प्रायः हो चली तो मनुष्य ने उस प्रकृति को ही नष्ट करना शुरू कर दिया जिसने उसे जीवन अमृत दिया।

आज पूरे विश्व में पर्यावरण को लेकर चिंता है, डगमगाता हुआ पर्यावरण हमें आने वाले भयावह खतरे की चेतावनी दे रहा है, वनों की अंधाधुंध कटाई, ग्लोबल वार्मिंग, औद्योगीकरण और भूमि क्षरण से पूरी मानवता पर संकट के बादल गहरा रहे है। कहा नहीं जा सकता कि दिनों–दिन जहरीले होते वायुमंडल से प्राणियों का अस्तित्व कब विलीन हो जाय और ऐसा न हो कि पृथ्वी अपनी ही संतानों द्वारा उपजाई गई विभीषिका से कान्तिहीन होकर जार–जार रोती रह जाय।

विकसित देशों में, जहां संसाधनों की कमी नहीं है वहां पर्यावरण के प्रति चेतना ज्यादा है और पर्यावरण संरक्षण के लिये निरंतर सार्थक उपाय किये जा रहे है। लेकिन विकासशील देश दोहरी समस्याओं का सामना कर रहा है। एक तो उन्हें विकास भी करना है और पर्यावरण को भी बचाना है।

दोनों काम एक साथ करते है तो उन्हें संसाधनों के अभाव का सामना करना पड़ता है और नतीजा यह है कि उन्हें दो में से किसी एक की बलि चढ़ानी पड़ती है। तात्पर्य यह है कि या तो वे विकास की ओर बढ़े या वे अपने पर्यावरण को उसके हाल पर छोड़ दें। जबकि आवश्यक यह है कि विकास के लिये पर्यावरण से छेड़छाड़ करना जरूरी ही हो तो पर्यावरण पुनः संतुलित करने के लिये वैकल्पिक एवं वैज्ञानिक उपाय भी साथ–साथ होने चाहिए। लेकिन विकासशील देशों में यह तस्वीरें नहीं दिख रही है।

कहा जा सकता है कि प्रगति तभी सार्थक हो सकती है जब उसका उपभोग करने वाला कोई हो। हम यदि अपने पर्यावरण को इसी गति से यू हीं नष्ट करते रहे तो भविष्य में इस विकास का लाभ उठाने वाला कौन बचेगा। यह प्रश्न भी हमारे सामने खड़ा होकर जवाब मांगता है।

यहाँ यह भी प्रासंगिक है कि केवल विकास के लिये ही पर्यावरण को नुकसान नहीं पहुंचाया गया है। चेतना के अभाव, अशिक्षा, आवश्यकता, गरीबी जैसे कारणों से भी मनुष्य ने जाने–अनजाने में पर्यावरण को गंभीर क्षति पहुंचाई है जिसकी भरपाई करने के लिये व्यक्तिगत और सामुहिक स्तर पर कोई सार्थक प्रयास नहीं किया। हमनें प्रकृति से लेना ही सीखा उसे कुछ देना नहीं। जबकि यह लेना–देना साथ–साथ होना चाहिये था।

वर्तमान समय में विकास ने जहाँ एक ओर पर्यावरण संबंधित अनेक परिवर्तनों को जन्म दिया है और मानव जाति को जीने के तरीकों का ज्ञान कराया है, वही दूसरी ओर भौतिकवादी प्रवृत्ति के कारण विकास की गति दिशाहीन होने लगी है। आज स्वस्थ भारत का निर्माण चुनौती बन गई है। जहाँ देश में स्वास्थ्य सुविधायें प्रदान करने के क्षेत्र में निजी अस्पतालों की भागीदारी में वृद्धि हो रही है। वही महंगी स्वास्थ्य सेवायें गरीबों की पहुँच से दूर होती जा रही है।

आज परिस्थिति ऐसी है कि पृथ्वी का प्रत्येक प्राणी पर्यावरण की समस्या से जूझ रहा है। पर्यावरणीय प्रदूषण के कारण प्रत्येक 5 में से 4 व्यक्ति स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं से घिरे हुए है। जैसे सांस की तकलीफ, हृदय रोग, बहरापन, अन्धापन, सिरदर्द, तनाव, अनिद्रा, घबराहट, कैंसर, कोरोना जैसी महामारियाँ इनमें से अधिकांश समस्या ऐसी है जो प्रदूषण की समस्या से उत्पन्न है। संसार में मनुष्य के अतिरिक्त अन्य प्राणी भी इससे अछूते नहीं है, प्रदूषित पर्यावरण ने उन्हें भी अपनी चपेट में ले रखा है, इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि आज पर्यावरण कितना प्रदूषित हो गया है।

इस धरती और प्राणियों के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए पर्यावरण को क्षति से बचाना युगधर्म है। हमें नियंत्रित विकास की सोच बनानी होगी एवं पहल भी करनी होगी ताकि हमारा पर्यावरण सुरक्षित बना रहे। हमें विकास और पर्यावरण के प्रति संतुलन और सामंजस्य बैठाना होगा। पर्यावरण, वन, वन्य जीव आदि के संरक्षण और सहेजने तथा स्वयं अपने आपका अस्तित्व बचाये रखने का कार्य समाज के प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। इस कर्तव्य की पूर्ति के लिये हम सबको सतत् प्रयास करने होंगे।

भारतीय संस्कृति प्रकृति के साथ सहयोग व सह–अस्तित्व में विश्वास रखती है। उनके साथ संघर्ष में नहीं बल्कि प्रकृति के कण–कण के साथ एकात्मकता का अनुभव करना और उसे यथासंभव कम से कम हानि पहुंचाना चिरकाल से भारतीय जीवन दर्शन का आदर्श रहा है।

प्रकृति में पुर्ननवीकरण की उद्भुत क्षमता है परन्तु अगर उसका दोहन यथोचित सीमा में हो। आज वैश्वीकरण और पूरे विश्व में उपभोगवादी संस्कृति की ओर झुकाव से भारत भी अछूता नहीं है। आज विश्व में प्रकृति का तीव्र गति से दोहन हो रहा है जिससे प्राकृतिक संतुलन खराब हो रहा है और उसका परिणाम मानव को दिख रहा है। जलवायु परिवर्तन हो या बढ़ती हुयी प्राकृतिक आपदायें ये सब मनुष्य की उपभोगवादीता के कारण प्रकृति के साथ हो रहे खिलवाड़ का फल है।

पर्यावरण सुरक्षा एवं संरक्षण :–

पृथ्वी और प्राकृतिक संसाधनों का सतत् प्रबंधन हमारे देश में आर्थिक विकास और मानवीय समृद्धि के लिये एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। पर्यावरण की सुरक्षा और उसके संरक्षण तथा प्राकृतिक संसाधनों के सतत् उपयोग की आवश्यकता भारत के **संवैधानिक ढांचे में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।** हमारा संविधान देश के सभी नागरिकों के लिये न्याय, स्वतंत्रता और समानता का अधिकार सुनिश्चित करता है। **अनुच्छेद 21** के अंतर्गत 'जीवन का अधिकार' केवल जीवित रहने तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसके अंतर्गत प्रदूषण मुक्त जलवायु को समाहित करते हुये सम्मान के साथ जीवन जीने का अधिकार भी सम्मिलित है।

संविधान के **भाग 4 'क'** के अंतर्गत **अनुच्छेद 51–'क'** के अनुसार भारत के प्रत्येक नागरिक का यह दायित्व है कि वनों, झीलों, नदियों और वन्य जीवों सहित प्राकृतिक पर्यावरण की सुरक्षा करके और उसमें सुधार करे तथा जीवों (प्राणी) के प्रति दया का भाव रखे। इसके अतिरिक्त राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के अंतर्गत **अनुच्छेद 48–'क'** में यह विहित किया गया है कि राज्य देश के पर्यावरण के संरक्षण तथा संवर्धन का और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा।

वृक्षों को बचाना बहुत आवश्यक है क्योंकि आने वाली पीढ़ी इसकी क्षतिपूर्ति नहीं कर सकता है क्योंकि ये पेड़ हमारी अगली पीढ़ी की पढ़ाई व समझ के लिये आवश्यक है क्योंकि नये पेड़ों का जिंदा रहना और बड़े होने तक का समय एक पूरी पीढ़ी का समय ले लेता है। अतः संतुलित तरीके से ही पर्यावरण एवं विकास के लिये जिम्मेदारी से काम किया जाना चाहिए।

किसी भी निर्माण के शुरू होने के पहले ही पर्यावरण का ध्यान रखकर क्षेत्र को हरा–भरा करना शुरू कर देना चाहिए।

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 के अनुसार– पर्यावरण शब्द के अंतर्गत जल, वायु और (भूमि सहित जल, वायु और भूमि) तथा मनुष्य, अन्य जीवित प्राणियों, पेड़–पौधों, सूक्ष्म जीवाणुओं तथा संपत्ति के बीच मौजूदा पारस्परिक संबंध शामिल है। **पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 के अंतर्गत** पर्यावरणीय सुरक्षा की दीर्घावधि आवश्यकताओं संबंधी अध्ययन, नियोजन और उनके कार्यान्वयन की रूपरेखा निर्धारित की गयी है।

यह एक समावेशी कानून है जो जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 और वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम 1981 के अंतर्गत स्थापित केन्द्रिय और राज्य स्तरीय प्राधिकरणों के बीच समन्वय तंत्र उपलब्ध कराता है। पर्यावरण अधिनियम के अंतर्गत केन्द्र सरकार को किसी भी उद्योग अथवा कार्य में संलग्न व्यक्ति द्वारा वातावरण में प्रदूषण तत्वों के उत्सर्जन या प्रवाह के लिये मानक निर्धारित करके, उद्योगों की स्थापना का विनियमन करके, खतरनाक अपशिष्ट का प्रबंधन करके और सार्वजनिक स्वास्थ्य कल्याण की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिये पर्यावरण के संरक्षण और उसकी गुणवत्ता में सुधार के लिये आवश्यक उपाय करने की शक्ति प्रदान की गयी है।

''जून 1972 में स्टॉकहोम में संपन्न मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिवेशन के अनुसार मनुष्य अपने पर्यावरण का निर्माता एवं शिल्पकार दोनों ही है, जिससे उसे भौतिक स्थिरता मिली है। इस ग्रह पर मनुष्य जाति की एक लम्बी तथा पीड़ादायक उत्क्रमण यात्रा में एक ऐसी स्थिति आ गई है जब विज्ञान तथा तकनीकी के तीव्र विस्तार के द्वारा मनुष्य ने एक प्रकार से अभूतपूर्व स्तर पर अपने पर्यावरण की काया पलट करने की क्षमता प्राप्त कर ली है। पर्यावरण के प्रकृति प्रदत्त और मानव निर्मित दोनों पक्ष उसकी सलामती तथा उसके आधारभूत मानवाधिकार के लिये आवश्यक है।''

निष्कर्ष :–

उपभोग को कम करना और एक आत्म–नियंत्रण वाला समाज बनाना ही, वह अकेला रास्ता है, जिससे हम प्रकृति के साथ मिल–जुलकर रह सकते है।

पिछले दो सालों से देखा जाय तो सामान्य जीवन में जिस स्तर का व्यवधान देखा है, उतना इससे पहले कभी नहीं देखा गया। देखा जाय तो कोविड–19 और जलवायु परिवर्तन दोनों प्रकृति के साथ हमारे 'मनहूस' संबंधों का नतीजा है। जिसे **प्रकृति का बदला** कहा जाना चाहिए।

हमें पारंपरिक ज्ञान को वैज्ञानिक स्वभाव से जोड़ना होगा, हमें कभी–कभी पारंपरिक ज्ञान पर इतना गर्व होता है, हम तर्क भूल जाते है। लेकिन इस दिशा में काम करने के लिये हमें परंपरा के साथ–साथ तर्क और सामर्थ्य के बारे में सोचना होगा।

सन्दर्भ सूची :–

- मिश्रा, के.के., समाज एवं पर्यावरण, मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी–2003
- अग्रवाल, जी.के., समाजशास्त्र, 1989
- शर्मा, अतुल, पर्यावरण और वन संरक्षण समस्या एवं समाधान, तक्षशिक्षा प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 1991।
- नेगी, पी0सी0, परिस्थितिकीय विकास एवं पर्यावरण, भूगोल, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, 1998–1999
- केन्द्रीय पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्री भूपेन्द्र यादव ने 'डाउन टू अर्थ' की सलाना रिपोर्ट स्टेट ऑफ एनवायरमेंट, 2022–23
- https ://www.Ncbi.him.you..
- https ://Jansampark.cg.gov.in.
- https ://mpforest.gov.in.
- पत्र, पत्रिकायें।
- https ://www.uok.ac.in.

बाबा साहेब डॉ भीमराव अंबेडकर तथा सामाजिक न्याय :एक समाजशास्त्री विवेचना

रवि दास
शोध छात्र समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,वाराणसी

भारत के राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक दृष्टि से सामाजिक न्याय एक प्रमुख सिद्धांत है, जिसका लक्ष्य तत्कालीन भारतीय समाजो को एक नवीन स्वरूप देखकर डॉक्टर भीमराव अंबेडकर ने समाज को बदलने का प्रयास किये। जो अपने नागरिकों के बीच अधिकारों और कर्तव्य का उचित निर्धारण तथा लाभों का सही से विभाजन करें। अर्थात सामाजिक न्याय का अर्थ समाज के लोगों को बिना किसी भेदभाव के समाज के सभी सदस्यों के मध्य वितरित किया जाना है। सामाजिक न्याय की अवधारणा समाज के कमजोरी एवं वंचित शोषित वर्ग के हितों पर बोल देना ।अर्थात शोषित वंचित वर्ग के लोगों को सशक्तिकरण की अवधारणा है , इसके दो प्रमुख अवधारणाएं हैं। पहला "आवश्यकता" तथा दूसरा "योग्यता"। यह सामाजिक लाभों के माध्यम से समाज में सामाजिक, आर्थिक ,तथा राजनीतिक, शैक्षिक समानता स्थापित करना चाहती है । इस प्रकार यह समानता का दर्शन है ।सामाजिक न्याय वस्तुत: समानता, सामाजिक स्वतंत्रता ,तथा सुरक्षा का समग्र है, जहां सामाजिक समानता के अंतर्गत धर्म जाति लिंग वर्ण आदि। सभी वही दूसरी ओर सुरक्षा के अंतर्गत जीवन और संपत्ति की सुरक्षा निर्बल ,और असहाय वर्गों की सुरक्षा ,वृद्धि जनों की सुरक्षा ,सहायता तथा सुविधा शामिल है। सामाजिक न्याय कोई अलग रूप नहीं है, बल्कि समाज के निर्माण का एक अभिन्न अंग है । तथा न्याय के बिना की संकल्पना करना दिवास्वप्न है । समानता तथा मानवाधिकार समाज के दो प्रमुख अंग है, अगर "विश्व श्रम संगठन का संदर्भ" दिया जाए। तो सामाजिक न्याय के बिना सर्वव्यापी शांति की प्राप्ति नहीं की जा सकती है अर्थात सामाजिक न्याय की अवधारणा समाज को स्थापित करने की अवधारणा है जो समानता एकता और मानव अधिकारों के मूल्यो पर आधारित है ।

20वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में जब संपूर्ण भारतीय समाज अज्ञानता के घोर अंधकार स्मृतिकालीन रूढ़ियों और सामाजिक और असमानताओं की अमानवीय परंपराओं से जकड़ा हुआ था ।उसे समय यह कल्पना भी करना कठिन था कि एक अछूत जाति में जन्म लेने वाला व्यक्ति यहां के संपूर्ण सामाजिक तथा राजनीतिक विचारधारा को बदलकर सामाजिक व्यवस्था को एक नई स्वरूप दे सकता है। मानवीय समाज का अंग होते हुए भी उसे समय उच्च जातियों द्वारा ही निम्न जातियों (अस्पृश्यो)का जो अमानवीय शोषण हो रहा था , आज कल्पना करना भी कठिन है । बाबा साहब डॉक्टर भीमराव अंबेडकर ने भारत के इन करोड़ों लोगों को अमानवीय व्यवस्था से जो मुक्ति दिलाने में जो अविस्मरणीय योगदान दिया है ।आज उसी के कारण उन्हें "भारत का लिंकन" कहा जाता है ,उन्हें "बोधित्व की उपाधि" से सम्मानित किया गया। इसके अलावा "आधुनिक भारत का मनु" कहा जाता है। तथा अमेरिका के ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी ने उन्हें "सिंबल ऑफ नॉलेज" की पदवी से सम्मानित किया। "दलितों के मसीहा" भी कहा जाता है सन 1990 में "भारत रत्न"से भी मरणोपरांत सम्मानित किया गया ।

भारत में जाति व्यवस्था जो हिंदू धर्म और हिंदू सामाजिक व्यवस्था का मूल आधार रही है, वह पूर्णत: असमानता और अन्याय से ग्रसित एक संस्था है। न्याय और समानता के विश्लेषण के संदर्भ में डॉक्टर अंबेडकर ने मनु की न्याय व्यवस्था का भी उल्लेख किया है उन्होंने बताया कि मनु ने एक ही अपराध के लिए नियमों को लागू किए जाने जाने और दंड देने के संबंध निम्न वर्णो के बीच भेद किया है। उनका मानना था कि हिंदू न्याय व्यवस्था में अपराधी और दीवानी दोनों प्रकार के कानून का लक्ष्य समाज में असमानता बनी रहे। समता को मानवीय आधार पर उचित है। सामाजिक न्याय की समान स्थापना हेतु, 1927 में उन्होंने मनुस्मृति को नागपुर में जलाया और साथ में ही भारतीय समाज का मूलाधार वर्ण व्यवस्था को भी नकारते हैं ।

बाबासाहेब डॉक्टर भीमराव अंबेडकर का मानना था कि सामाजिक न्याय और आर्थिक न्याय के बिना राजनीतिक न्याय का कोई मतलब नहीं है। साथ-साथ उनका यह भी मानना था कि आर्थिक और राजनीतिक न्याय को केवल सामाजिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के बाद ही हल किया जाना चाहिए। यदि राजनीतिक मुक्ति के मुद्दों को प्राथमिकता दी जाती है,तो उनका अर्थ होगा सत्ता का ब्रिटिश सरकार के हाथों से निकलकर ऊंची जाति के हिंदुओं के हाथों में जाना, जो निम्न जातियों से पृथक है। वे बेसक देश को आजाद करना चाहते हैं। परंतु देश की राजनीतिक स्वतंत्रता के पूर्व सामाजिक स्वतंत्रता ,सामाजिक क्रांति लाना चाहते थे। वह यह नहीं चाहते थे कि देश की सत्ता एक अधिनायक एवं शोषित वर्ग (अंग्रेजो)के हस्तांतरित होकर दूसरे शोषित(हिंदुओं में उच्च जाति के लोगों) को हस्तांतरित हो जाए। उनका मानना था की राजनीति स्वतंत्रता मिलने से उच्च वर्ग के लोग सत्ता पर अपना एकाधिकार जमा लेगे ।परिणाम स्वरुप निम्न वर्ग के लोगों पर अत्याचार और गुलामी (दासता) से ही गुजरना होगा। जिससे अछूत ,वंचित ,पिछड़ी जातियों के साथ अन्याय बना रहेगा। और समाजवादी समाज की कल्पना एक दिवास्वप्न की तरह रह जाएगा। उनका मानना था कि जातिवाद हिंदुओं की मानसिक गुलामी अभिव्यक्ति है ,जिसने निम्न जातियों के साथ सदियों से होते चले आ रहे अन्याय को बनाए रखा है।

डॉ अंबेडकर ने दलित महिलाओं तथा गरीबों को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए जीवन भर संघर्ष किए। सभी वर्ग की महिलाओं हिंदू, मुस्लिम, दोनों समुदाय की महिलाओं को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए वकालत की। " सन 1923 में बहिष्कृत हितकारणी सभा" का स्थापना की ।सामाजिक न्याय का अर्थ लिंग ,रंग ,रूप ,, जाति ,धर्म, धन दौलत आदि पर आधारित सभी असमानताओं की नैतिकता तथा जागरूकता के द्वारा समाप्त कर सामाजिक न्याय की स्थापना की जानी चाहिए। जिसमे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्रोतों का सभी को समान अधिकार हो। सामाजिक न्याय इसी समता के सिद्धांत का व्यावहारिक रूप है। समाज किसी भी व्यक्ति या समूह के बीच भेदभाव नहीं करता यदि समाज अंत:क्रियाओं पर रोक लगाता है तो अन्याय कहलाता है । अंबेडकर जी का जीवन उनके बचपन से लेकर जीवन के अंत तक सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष करते रहें ।उन्होंने दलित अछूतों वंचितों पिछड़ों को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए विविध आयामों का प्रयोग किया ।भारतीय संविधान के माध्यम से सामाजिक न्याय और परिवर्तन की किरण जगी। उन्होंने सामाजिक अन्याय का अनुभव किया था, और क्रूर अत्याचारों को झेला था, इस समाज ने उन्हें सामाजिक न्याय पर चिंतन करने के लिए बाध्य किया था। वे अपने सामाजिक न्याय की अवधारणा के अनुरूप उन सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को स्वीकार नहीं किया जिन्हें ,उन्होंने भारतीय वर्ण व्यवस्था, प्लेटो के आदर्शराज्य ,अरस्तु के चिंतन, नीत्शे के अतिमानवीय विचार, दैवीय कानून ,मध्यकालीन दृष्टिकोण मार्क्सवादी सर्वहारा समाजवाद और गांधी जी के सूर्योदय से अंतर्निहित पाया। वे भारतीय सामाजिक व्यवस्था में मौलिक और क्रांतिकारी परिवर्तन के पक्षधर थे ताकि वर्तमान व्यवस्था की विकृतियों को दूर कर सामाजिक न्याय को स्थापित किया जा सके ।यही कारण है कि उनके सामाजिक चिंतन में एक तरफ वर्ण व्यवस्था, जाति - प्रथा ,अस्पृश्यता असमानता और अन्याय के प्रति विद्रोह मिलता है। उनका मानना था कि सभी मानव एक समाना है सभी को समानता और स्वतंत्रता का अधिकार हो।

डॉ भीमराव अंबेडकर ने स्वतंत्र भारत में सभी भारतीय नागरिकों को समान अधिकार की व्यवस्था की है। भारतीय संविधान में भारत के सभी क्षेत्रों में रहने वाले नागरिकों को जिन्हें कई वर्षों तक दासता (गुलामी) ऊच - नीच की भावना से देखा जाता था, उन्हें भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16 ,17 ,19 ,23 ,21, 29 ,164 ,275, 330, 332, 335, 338, 339 ,341 ,342 ,366 ,में तथा पांचवी और छठवीं अनुसूची में उनके हितों के लिए विशेष प्रावधान किया है। डॉक्टर अंबेडकर अपने संपूर्ण जीवन में दलितों के उत्थान के लिए प्रयत्न करते रहे ऐसा कहा जाता है ,लेकिन नहीं अगर उनके संपूर्ण जीवन को देख तो वह समाज के हर उसे व्यक्ति के लिए चिंतित थे। जिनका शोषण हो रहा था महिलाओं के उत्थान के लिए "हिंदू कोर्ट बिल 1955" की बात किए उन्हें समाज में समान अधिकार प्राप्त हो ।

डॉ भीमराव अंबेडकर एक ऐसा समाज की कल्पना करते थे, कि जिसमें सभी को न्याय मिले के साथ-साथ सामाजिक न्याय और समता भी प्राप्त हो । संविधान सभा में अपना भाषण देते हुए कहा था। कि कानून द्वारा राजनीतिक समानता के बाद समानता पूरी तरह तब सही सिद्ध होगी ,जब आर्थिक समानता स्थापित होगी ।यदि हम वास्तव में समाज के हितैषी है तो डॉक्टर अंबेडकर की विचारों को अपनाकर संपूर्ण समाज को विकास की ओर अग्रसर करने में सफल होंगे। लेकिन देश को आज स्वतंत्र हुए 75 वर्ष हो गया लेकिन आज भी निम्न वर्ग के साथ और अमानवीय घटनाएं देखने को मिलती है। जैसे गुजरात ,मध्य प्रदेश ,राजस्थान ,महाराष्ट्र ,उत्तर प्रदेश, केरल आदि राज्यों में इस तरह की घटनाएं देखने को मिलती है। जबकि देश के संविधान की उद्देशिका में भी लिखा गया है कि - "हम भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व - संपन्न, समाजवादी, पंथ - निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक, गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म,और उपासना की स्वतंत्रता प्रतिष्ठा और अवसर की क्षमता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़संकल्पित होकर अपनी इस संविधान सभा में आज 26 नवंबर 1949 ई .(मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी संवत् दोहजार विक्रमी) को एतद् द्धारा इस संविधान को अंगीकृत अधिनियमित और आत्मा समर्पित करते हैं ।"

डॉ भीमराव अंबेडकर भारतीय संविधान की प्रारूप समिति के अध्यक्ष थे। इस दृष्टि से वे भारतीय संविधान के प्रमुख शिल्पकार थे ।सामाजिक न्याय की स्थापना की दृष्टि से उन्होंने छुआ - छूत को समाप्त करने के लिए संवैधानिक प्रावधान किए।भारतीय संविधान की प्रस्तावना (उद्देशिका) में सामाजिक ,आर्थिक ,राजनीतिक न्याय की स्थापना की लक्ष्य को निर्धारित करते हुए उनकी प्राप्ति के लिए मौलिक अधिकारों तथा नीति निर्देशक तत्व की व्यवस्था संविधान में किया गया है। डॉ भीमराव अंबेडकर सामाजिक न्याय के साथ-साथ अछूतों वंचितों को आर्थिक समानता की भी बात की है। भूमि - हीन अस्पृश्यताओं को कृषि योग्य भूमि भी उपलब्ध करायी जाए ,तथा जो समाज में व्यवसाय निर्धारण के नियमों को अनुचित माना। जातिगत श्रम विभाजन का विरोध किया, क्योंकि श्रम विभाजन एक दूसरे को उच- नीच की भावना को जन्म देती है। क्योंकि यह व्यक्ति के रुचि, योग्यता, कौशल ,पर आधारित नहीं है। राष्ट्रीय स्वतंत्रता का अर्थ होता है कि सभी की स्वतंत्रता जो राष्ट्र निर्माण में अपना योगदान देते हैं। इनमें से भी प्रमुख रूप से दलित, वंचित ,शोषित लोगों की स्वतंत्रता है। इसकी विपरीत मनुष्य एक - दूसरे से मिलो दूर रहने के पश्चात भी समाज का सदस्य हो सकता है ।किसी समाज के निर्माण केवल आदतों , परंपराओं ,विश्वासों तथा विचारों की सभ्यता के कारण नहीं होता। जिस तरह ईटों अथवा निर्जीव वस्तुओं का आदान प्रदान किया जाता है ठीक उसी प्रकार रीति रिवाज विश्वासों तथा विचारों का आदान-प्रदान हो । एक समुदाय दूसरे समुदाय में होने के कारण उनमें साम्यता हो सकती है वे अपने गुरु जान डी.वी. के विचारों से पूर्णतः सहमत थे। जिन्होंने समाज के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि "समाज उन विभिन्न व्यक्तियों को जोड़ने की प्रक्रिया है जिनमें अनुभव विचार संवेदनाओं मूल्य आदि की साम्यता का विकास हो चुका है। सामाजिक विकास तथा सामाजिक परिवर्तन के लिए विचारों का आदान-प्रदान होना चाहिए। जबकि चातुर्थवर्ण व्यवस्था पर आधारित सामाजिक व्यवस्था इस विकास के मार्ग को अवरुद्ध करती है" यही कारण है कि डॉक्टर भीमराव अंबेडकर ने जाति व्यवस्था का घोर विरोध किया तथा निर्मूल करने का भर्षक प्रयत्न किया ।

संदर्भ ग्रंथ-

1.सिंह, राम गोपाल :सामाजिक न्याय एवं दलित संघर्ष, हिंदी ग्रंथ अकादमी जयपुर. 1994।

2. कीर.धनंजय : डॉक्टर अंबेडकर - लाइफ एंड मिशन बॉम्बे ,पापुलर प्रकाशन मुंबई 1981।

3. पासवान, अमरनाथ: हाशिये का समाज एवं डॉक्टर अंबेडकर 2015 .टाइम्स पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

4. जाटव डी . आर.: डॉक्टर अंबेडकर व्यक्तित्व एवम कृतित्व 2016 ,समता साहित्य सदन जयपुर।

5. डॉ भीमराव अंबेडकर भारत के संविधान निर्माता 2015, पी. एम .पब्लिकेशन नई दिल्ली।

6. सिंह ,मोहन : डॉ आंबेडकर: व्यक्तित्व के कुछ पहलू 2014. लोक भाटी प्रकाशन ,इलाहाबाद

7.जोगी .सुशील : दलित समाज के पितामह डॉ भीमराव अंबेडकर ,2012 डायमंड पकेट बुक्स प्रा. लि. नई दिल्ली

8.बाबा साहब डॉक्टर भीम राव अम्बेडकर तुलसी साहित्य प्रकाशन,मेरठ

Importance of Cultural Tourism in Development

Dr. Pragya Mishra
Assistant Professor (Geography)
Government Degree College Indupur,
Gauribazar, Deoria (U.P)

Abstract

Cultural events and festivals play a key role in shaping the world's cultural tourism landscape. This article examines the multifaceted impact of cultural events and festivals on cultural tourism in economic, social, cultural and environmental dimensions. A comprehensive review of existing literature and case studies highlights the important contribution of cultural events and festivals to the tourism industry and local communities. Cultural events and festivals have become important drivers of cultural tourism, offering unique experiences that attract tourists while shaping the identity and vitality of local communities. This article examines the multifaceted impact of cultural events and festivals on both cultural tourism and local communities, focusing on economic, social, cultural and environmental dimensions. Through extensive literature and case studies, this study highlights the various ways in which cultural events and festivals contribute to tourism development and community well-being, addressing the challenges and opportunities of sustainable management.

Keywords: Cultural Tourism, Tourism, Festivals, Local Community,Travellers, Event.

Introduction

In India, festivals are widely recognized as important drivers of both cultural and economic growth. They bring significant benefits to the host communities, particularly in terms of cultural tourism. Today, festival organizers strategically incorporate historical and cultural elements to attract visitors and promote the cultural identity of their cities. These events are held in community settings to foster a strong sense of community and showcase the unique offerings of the area. Importantly, the motivation behind hosting festivals and events is not limited to meeting the needs of specific groups. Instead, they are often driven by the opportunities they bring for tourism, economic growth, and social and cultural enrichment. Despite some doubts raised by researchers, it is clear that local communities play a vital role in the success of these events. Over the past decade, the dynamics surrounding events and tourism have greatly shifted, resulting in significant changes in the roles and responsibilities of governments, private sector, and society as a whole. In the past, it was the state's main duty to develop and promote tourism; however, in today's world, the public sector must adapt by relinquishing its traditional duties and empowering provincial, state, and local authorities. This demonstrates the increasing impact of the event and tourism industry on the actions of both governments and businesses.

Cultural tourism refers to a specific type of tourist activity whose participant’s primary reason for travel or visiting is, therefore, Education; the need to learn something new- knowledge discovery. These attractions/ products are related to a cluster of unique material, intellectual,

spiritual and emotional characteristics occupying the arts and architectural heritage; historical cultural heritage culinary heritages literature music creative industries living cultures their lifestyles values systems beliefs traditions.

Culture is one of the motors for tourism development. Pololikashvili, Back a year ago and referring to culture as thus comes after stating it in secrecy barely during 2017 Conference on Cultural Tour organised by WTO (contemporary UNWTO) together with international organisation concerned UNESCO has pointed out clearly what from his point of view this particular sphere And one statistic is supporting this and the cultural tourism in world, almost 37% of total for sector.

As defined by the UN Tourism General Assembly during its 22nd session (held in 2017), Cultural as my form of tourism whereby the visitor is motivated to travel for cultural legacy. These attractions / products are associated with a specific material, intellectual spiritual and emotional elements of society which posses arts & architecture historical tradition culinary heritage literature music creative industries living traditions in terms lifestyles value systems beliefs and origin. The UN Tourism assists its members in the strengthening of cultural tourism policy frameworks, strategies and product development. It also sets the path to governance policies and models that can be adapted in civil society, thus creating premiums for all stakeholders while promoting cultural attributes.

Cultural tourism rose to prominence in the wake of World War 2, both as a popular pastime and a subject of scholarly examination. In Europe, this form of travel not only led to a deeper appreciation of diverse cultures, but also played a crucial role in reviving struggling economies. As wealth and spending power grew in the subsequent decades, so did the practice of international travel and the demand for cultural experiences. By the 1980s, the influx of tourists to iconic destinations and points of interest garnered enough notice to be recognized as a distinct and burgeoning market known as "cultural tourism."(Greg Richards,2018)

Cultural Events are an imperative perspective of any society. They give a stage for individuals to celebrate their social legacy, grandstand their gifts and imagination, and advance social differing qualities. These occasions can take different shapes, counting music celebrations, craftsmanship shows, conventional moves, and dramatic exhibitions. In this web journal post, we are going investigate the noteworthiness of social occasions and their part in advancing social trade and understanding. Social occasions are an amazing opportunity for individuals to come together and celebrate their shared legacy. They give a stage for specialists, performers, and entertainers to exhibit their abilities and inventiveness. At these occasions, individuals can involvement distinctive social hones, craftsmanship shapes, and conventions. This introduction can offer assistance to advance social understanding and cultivate a sense of community. In expansion to advancing social trade, social occasions can too serve as a source of financial development. These occasions draw in visitors and guests, producing income for nearby businesses and fortifying the nearby economy. For case, music celebrations such as Coachella and Glastonbury pull in thousands of guests each year, giving a critical boost to the nearby economy. Social occasions can too play a significant part in protecting social legacy. These

occasions permit communities to grandstand their conventions and hones, guaranteeing that they are passed down to future eras. By celebrating social legacy, these occasions can offer assistance to protect social differences and anticipate the misfortune of social personality.

Importance of Cultural Tourism Cultural Events are an imperative perspective of any society. They give a stage for individuals to celebrate their social legacy, grandstand their gifts and imagination, and advance social differing qualities. These occasions can take different shapes, counting music celebrations, craftsmanship shows, conventional moves, and dramatic exhibitions. In this web journal post, we are going investigate the noteworthiness of social occasions and their part in advancing social trade and understanding.

Social occasions are an amazing opportunity for individuals to come together and celebrate their shared legacy. They give a stage for specialists, performers, and entertainers to exhibit their abilities and inventiveness. At these occasions, individuals can involvement distinctive social hones, craftsmanship shapes, and conventions. This introduction can offer assistance to advance social understanding and cultivate a sense of community. In expansion to advancing social trade, social occasions can too serve as a source of financial development. These occasions draw in visitors and guests, producing income for nearby businesses and fortifying the nearby economy. For case, music celebrations such as Coachella and Glastonbury pull in thousands of guests each year, giving a critical boost to the nearby economy.

Theoretical Framework

Cultural tourism captures the essence of a destination, allowing travelers to immerse themselves in its rich heritage, arts, and lifestyle. It involves actively experiencing the cultural facets of a place, from its age-old traditions and language to its tantalizing cuisine and breath-taking architecture. A diverse range of activities awaits cultural tourists, such as museum jaunts, gallery explorations, historical site visits, participation in cultural events and festivals, as well as indulging in culinary delights and engaging with local communities. This form of tourism is more than just passive observation; it also offers opportunities for hands-on experiences through workshops, classes, and authentic cultural interactions. Travelers are drawn to cultural tourism for a variety of reasons, but often it's fuelled by a deep curiosity and fascination for different cultures. Maharashtra experience cultural tourism, from exploring historic landmarks and monuments to immersing oneself in the arts through attending festivals and performances. Additionally, other forms of cultural tourism such as culinary, religious, ethnic, and ecotourism offer diverse perspectives and experiences rooted in culture and heritage. For tourist destinations, cultural tourism offers the opportunity to leverage their distinct cultural assets and resources to attract visitors, drive economic growth, and enhance the well-being of local communities. To achieve this, destinations can develop strategies that showcase their unique cultural identity and preservation efforts. e cultural tourism initiatives require the active involvement and partnership of multiple stakeholders, ranging from government bodies and tourism groups to cultural establishments, local communities, and the private sector. This collaboration is crucial in devising and executing policies, promoting marketing tactics, constructing necessary infrastructure, and fostering community engagement.

Festivals have been a beloved part of communities since as early as 534 BC. While some festivals are not confined to one location, many are deeply rooted in the cultural riches of the hosting community. These vibrant events offer a range of experiences, from music and culinary delights to film, art, and cultural traditions. In addition to their economic benefits, festivals have far-reaching effects on society, including sociocultural, political, and physical impacts on the landscape and environment. Moreover, these festivities have a significant effect on the well-being of both the community and attendees, as well as shaping the image of the destination. As technology and society constantly evolve, the ever-changing expectations of festival-goers greatly influence the future of this thriving industry.

Type of Impacts of Cultural Events and Festivals

Type of impact	Positive Impact	Negative Impact
Economical	Increased return Establishment of new jobs.	Increase in prices during an event. Real estate speculations.
Tourism	Increased popularity of a city as a tourist location. Increased popularity of the opportunities for regional investment and commercial activities.	Acquiring negative reputation for false activities and conditions that increase requirements. Opposing reaction of local companies due to potential competition.
Physical	Construction of new infrastructure. Improvement of current infrastructure.	Damage to the environment. Too large flows of people.
Socio-Cultural	Increased interest and participation of local residents in event-related activities. Strengthening of regional traditions and values.	Commercialisation of an event. Changing the main idea of the event in order to adapt to tourism goals
Psychological	Improved sense of pride and community of local residents. Increased interest in non-local cultures.	Tendency of the host region to take the “defensive” position. Possibility of misunderstandings between local residents and comers that creates mutual hostility.
Political	International acknowledgement of the region and its values. Dispersion of political values of the state and residents.	Satisfaction of the political elite’s ambitions using local residents. Distortion of the main idea of the event in order to express the values of existing political system.

Source: Ritchie, J. R. (1984). Assessing the Impact of Hallmark Events: Conceptual and Research Issues, *Journal of Travel Research*, p. 4

Development of Cultural Tourism through Festivals

Throughout the years, festivals have undergone a significant transformation. Initially, they were linked to important dates on the calendar and tied to specific seasons and historical locations. However, in recent years, they have evolved and evolved even further. In today's world, there is a vast array of festivals and events taking place globally, showcasing diverse cultures and traditions.

For tourists, especially those from other countries, the word that truly embodies India is "culture". Festivals, in particular, hold great appeal for visitors and have been officially recognized as a form of cultural tourism by both the Ministry of Tourism and state tourism boards in India. Every year, millions of tourists flock to major Indian festivals. In fact, cultural tourism is considered a crucial aspect of the overall tourism industry, with the World Tourism Organization reporting that over 40% of international tourists fall into this category, Local festival celebrations have generated great curiosity in the domestic and inbound markets. This recent trend is turning into a big advantage for the Indian tourism industry and the major stakeholders believe that with the correct marketing and positioning of the festival or event, this particular segment may prove to be the biggest tourist pull for India. (Karishma Sen. (2016, March 16)

As a tourist, especially one from a foreign country, one word that epitomizes India is 'culture'. The country's vibrant festivals have become a major attraction for tourists and are now acknowledged as a vital aspect of cultural tourism by both the Ministry of Tourism and state tourism boards. Each year, millions of visitors flock to major Indian festivals, cementing cultural tourism as a prominent form of travel. In fact, according to the World Tourism Organization, over 40 percent of all international tourists can be categorized as "cultural tourists".

Modern festivals are no longer just about celebration and tradition, but have evolved into an opportunity to promote tourism and attract more visitors to a destination. A perfect example of this is the Ladakh Festival, a 15-day extravaganza that showcases music, folk dances, and even archery competitions. One of the festival's main highlights are the thrilling polo matches held in a dusty ground, surrounded by breath-taking views of the former royal palace and rugged rocky cliffs. Unsurprisingly, Ladakh has become a highly sought after destination, particularly among domestic tourists, thanks to the widespread promotion of events like the Ladakh Festival. In fact, numerous tour packages catering specifically to this festival have been introduced in the market.

Case Studies and Example: The Ram Mandir in Ayodhya

A Catalyst for Local Tourism The completion of the Ram Mandir in Ayodhya, Uttar Pradesh, is a milestone moment in Indian history and has significant implications for tourism in the area. This research delves into the potential effects of the Ram Mandir on Ayodhya's tourism industry. Ayodhya, recognized as the holy birthplace of Lord Ram, has been a sacred destination for Hindus for centuries. The long-standing conflict surrounding the Ram Janmabhoomi Babri Masjid site came to a conclusion in 2019 with a verdict from the Supreme Court, giving way to the creation of the Ram Mandir.

This case study uses a diverse set of methods, incorporating both qualitative and quantitative data gathering techniques. We will gather primary data through engaging interviews with various individuals involved in the local community, including government officials, tourism operators, and religious leaders, as well as residents. Additionally, we will gather secondary data from government reports, academic literature, and media sources, further enriching our analysis.

Increased Tourist Footfall: The construction of the Ram Mandir is projected to bring an influx of pilgrims and tourists to Ayodhya, lured by the site's religious importance. Preliminary projections predict a major rise in visitor traffic in the next years.

Economic Impact: The flood of tourists is expected to boost economic growth in Ayodhya, producing money for local companies including as hotels, restaurants, souvenir stores, and transportation services. Job growth and investment in tourism infrastructure are also expected.

Social and Cultural Implications: The Ram Mandir is anticipated to strengthen Ayodhya's cultural identity and legacy, cementing its reputation as a revered pilgrimage site. Increased engagement between pilgrims and residents might promote cultural exchange and social harmony within the community..

Hurdles and Opportunities: While the Ram Mandir's tourist potential is excellent, there are several hurdles to overcome, including regulating visitor numbers, maintaining the city's ancient legacy, and guaranteeing sustainable tourism practices. There are opportunities for capacity building, infrastructural development, and community involvement activities.

Conclusion

Cultural events and festivals provide a substantial contribution to the tourist industry's economic growth. These events attract visitors, increase spending on lodging, food, transportation, and shopping, and provide cash for local companies. Furthermore, they generate job opportunities and encourage investment in tourism infrastructure. Cultural events and festivals are vital in conserving and promoting cultural history, customs, and identity. They promote cultural interchange, engagement between visitors and residents, and respect for different cultures. Festivals frequently feature traditional arts, crafts, music, dance, and culinary traditions, which contribute to cultural enrichment and cross-cultural understanding. Cultural events and festivals engage local communities in event planning, organizing, and participation. They promote community participation, capacity building, and economic empowerment, particularly among underprivileged communities. Festivals can improve social cohesion, pride, and identity within the community

Reference

- Herţanu, A. I. (2011). Characteristics of event tourism marketing. Case study: the European youth Olympic festival, Brasov 2013. -Bulletin of the Transilvania University of Brasov. Series V : Economic Sciences (Transilvania University Press), 4, 127–134.
- Elina Falko, & Volodymyr Mateichuk. (2023). Prospects of using cultural heritage objects in the development of international tourism. Market Infratructure, 1(70).
- Getz, D. (1991) Festivals, Special Events and Tourism New York:Van Nostrand Reinhold
- Karishma Sen. (2016, March 16). INDIA DEVELOPING CULTURAL TOURISM THROUGH FESTIVALS.
- Ritchie, J. R. (1984). Assessing the Impact of Hallmark Events: Conceptual and Research Issues. In Journal of Travel Research, 23(1):2-1
- Richards, G. (2018). Cultural tourism: A review of recent research and trends. Journal of Hospitality and Tourism Management, 36, 12–21. https://doi.org/10.1016/j.jhtm.2018.03.005
- Ruslan Lupak, V. T. K. V. (2020). Aspects of festival events tourism development. Galician Economik Journal, No 5 (66) 2020, 66(5), 30–37.
- Swathi, Ravichandran., Seonjeong, (Ally), Lee., Barbara, Atanga. (2020). Impacts of festivals. doi: 10.4324/9780429274398-3

भारतीय ग्रामीण सामाजिक रूपान्तरण में मनरेगा की भूमिका

शिव कुमार मौर्य,
शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन मनरेगा एवं ग्रामीण सामाजिक रूपान्तरण से सम्बन्धित है। इस अध्याय के अन्तर्गत महात्मा गांधी नरेगा योजना के द्वारा ग्रामीण महिलाओं के जीवन में हो रहे सामाजिक बदलाव का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय के अन्तर्गत उत्तरदाताओं से मनरेगा योजना के तहत चलाये जा रहे कार्यक्रम के प्रति जागरूकता, परिवार पर प्रभाव, अतिरिक्त आमदनी का प्रभाव, ऋणग्रस्तता में कमी, मनरेगा के द्वारा आधारभूत संरचना में विकास एवं परिवर्तन, सामाजिक परिवर्तन के लिए किये गये कार्य, मनरेगा के तहत किये गये विकास कार्य, मनरेगा के प्रावधानों की जानकारी, मनरेगा मजदूरों के जॉब कार्ड की उपलब्धता के सम्बन्ध में, जॉब कार्ड मिलने में समस्या, निजी भूमि पर मनरेगा के कार्य, मनरेगा कार्यों का सोशल ऑडिट आदि में मनरेगा योजना की भूमिका से सम्बन्धित तथ्यों को संकलित तथा विश्लेषित किया गया है।[1]

कूट शब्द–मनरेगा, सामाजिक रूपांतरण, ऋणग्रस्तता, सोशल–ऑडिट, आदि।

प्रस्तावना

ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक विकास, सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण साधन बना हुआ है। ग्रामीण विकास से तात्पर्य मुख्यतः तीन मुद्दों से है– (1) शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, आवास तथा बिजली जैसी मूलभूत सुविधाओं को विकसित करना (2) गरीबी को दूर करने हेतु रोजगार का समुचित अवसर पैदा करना तथा (3) देश के शासन में ग्रामीणों की भागीदारी सुनिश्चित करना।[2] अध्ययन से पता चला कि मनरेगा के तहत विभिन्न ढ़ाँचागत विकास से ग्रामीण आधार को मजबूत करने में मदद मिलती है। इस योजना से सम्बन्धित कार्य जैसे–जल निकासी व्यवस्था, जल संरक्षण, खोदे गए कुओं और तालाबों के नवीनीकरण से कृषि के क्षेत्र में और पानी की सुविधाओं में मदद मिलती है। मनरेगा के अन्तर्गत सड़क निर्माण का कार्य जो किसानों के अन्तिम उत्पादों को भण्डारण के लिए वस्तुओं व सेवाओं और भण्डार संयत्र की आसान पहुँच में मदद करता है। अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों का सामाजिक परिवर्तन तभी सम्भव है जब वहाँ के लोग आर्थिक रूप से सशक्त हो और सम्मानजनक जीवनयापन करे। यह सब तभी सम्भव है जब अधिनियम को प्रभावी ढ़ंग से लागू किया जाये और इसका लाभ जरूरत मंद व्यक्ति तक पहुँचाया जाए।[3] इस प्रकार अधिनियम का क्रियान्वयन और उसके दिशा–निर्देशों का पालन ग्रामीण क्षेत्रों में ढ़ाँचागत विकास और सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए प्रभावी उपाय है।

मनरेगा में भुगतान वाले काम तक पहुँच बढ़ने से महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक स्थिति पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। विभिन्न अध्ययनों से पता चला कि मनरेगा से प्राप्त मजदूरी पर अधिक नियन्त्रण है और वे इसे छोटे ऋण चुकाने पर खर्च करती है जैसे– बच्चों की स्कूली शिक्षा का भुगतान और चिकित्सा व्यय आदि का वहन करती है। छत्तीसगढ़ के पाँच जिलों में 600 महिला

श्रमिकों के सर्वेक्षण में देखा गया कि मनरेगा के कारण 8000 से कम घरेलू आय वाली महिला उत्तरदाताओं की आय में 94 प्रतिशत की कमी आई है जो गरीब लोगों के लिए मनरेगा के महत्व को दर्शाता है।[4] अध्ययनों से यह भी संकेत मिलता है कि यह महिलाएँ मनरेगा मजदूरी के संग्रह और खर्च में स्वतन्त्रता का प्रयोग करती है, जो परिवार में निर्णय लेने की अधिक शक्ति का संकेत देता है।

शोध से पता चलता है कि विभिन्न क्षेत्रों (सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक) में लिंग समीकरण में गुणात्मक और मात्रात्मक सुधार के साथ–साथ आत्मधारणा में सकारात्मक बदलाव के परिणामस्वरूप धीरे–धीरे महिलाओं का सशक्तिकरण होता है और स्थायी सामाजिक परिवर्तन होता है।[5] मेघालय में किए गए एक अध्ययन के निष्कर्षों से पता चला कि बैंक, डाकघर/सरकारी अधिकारियों के साथ बातचीत की आवश्यकता ने ग्रामीण आदिवासी महिलाओं को उनके आत्मविश्वास के स्तर को बढ़ाकर और वित्त मामलों में कुछ हद तक स्वतन्त्रता सुनिश्चित करके सशक्त बनाया है।[6] मनरेगा में महिलाओं के लिए आरक्षण नीति के कारण महिलाएँ ग्राम रोजगार परिषदों सहित निर्णय लेने वाले निकायों में प्रतिनिधित्व पाने में सक्षम हुई है।

महिलाएं पानी, ईधन आदि जैसे–प्राकृतिक संसाधनों पर अधिक निर्भर रहती है, चूंकि मनरेगा प्राकृतिक संसाधनों के पुनर्जनन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, इसलिए यह योजना महिलाओं के लिए आजीविका सुरक्षा को मजबूत करती दिख रही है। लिंग पर योजना के प्रभाव को देखते हुए पर्यावरण और आजीविका सुरक्षा के बीच संबन्ध को ध्यान में रखना होगा। ग्रामीण महिलाएं अपनी सामाजिक भूमिकाओं (भोजन, चारा, ईधन, पानी आदि जैसी दैनिक आवश्यक वस्तुएँ) के कारण जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक आपदाओं से अधिक गंभीर रूप से प्रभावित होती है।[7] पलायन से महिलाओं को अधिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है क्योंकि विषम परिस्थितियों में पुरुष अपनी सम्पत्ति और घर की देखभाल के लिए महिलाओं को छोड़कर पलायन कर जाते हैं। शुष्क भूमि वाले क्षेत्रों में, महिला मुखिया वाले घर अक्सर सबसे गरीब होते है, घर का प्रबंधन करने के लिए महिलाओं को अतिरिक्त प्रयास करने पड़ते हैं। प्राकृतिक संसाधनों पर अत्यधिक निर्भरता वाले क्षेत्रों में महिलाओं को घरेलू प्रावधान में जिस समस्या का सामना करना पड़ता है, वह सामुदायिक संपत्तियों पर परिभाषित अधिकारों की कमी के कारण है।[8]

शोध की पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन **भारतीय ग्रामीण सामाजिक रूपांतरण में मनरेगा की भूमिका** से सम्बन्धित है, जिसके अन्तर्गत अध्ययन के प्रथम स्तर पर जनपद वाराणसी को चुना गया है। द्वितीय स्तर पर वाराणसी जिले के चिरईगांव ब्लॉक के दो गाँवों को (छितौना तथा चिरईगांव) का चयन किया गया है। इन दो गाँवों को चुनने का कारण यह कि इन दो गाँवों में मनरेगा महिला श्रमिकों की संख्या अन्य गाँवों की तुलना में सबसे अधिक है। समग्र को ध्यान में रखते हुए 'उद्देश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति के द्वारा दोनों गाँव से 139–151 महिला श्रमिकों को अध्ययन के लिए चुना गया है। इस प्रकार सांख्यिकी सुविधा के समाकलन के लिए 290 उत्तरदाताओं का चयन किया गया है। इस अध्ययन के अन्तर्गत 'वर्णनात्मक सह–अन्वेषणात्मक' शोध प्रारूप का प्रयोग किया गया है। आकंडा संग्रह के लिए साक्षात्कार–अनुसूची को अनुसंधान कार्य में प्रयोग किया गया है।

महिला श्रमिकों को मनरेगा की जानकारी

मनरेगा के तहत गांवों में ऐसी योजनाएं संचालित की जा रही है जिससे ग्रामीण अकुशल श्रमिकों को घर के पास काम मिलने के साथ–साथ गांवों का विकास भी हो। कोविड–19 के दौरान मनरेगा एक वरदान के रूप में उभरी है, जिसने ग्रामीणों को सबसे ज्यादा रोजगार दिया है। मनरेगा

विकास कार्यक्रम की जानकारी शिक्षा, संचार माध्यमों के प्रचार–प्रसार के अभाव में लोगों को प्राप्त नहीं होती। पंचायतों में ग्राम पंचायत अधिकारी को बैठक के माध्यम से ग्रामीणों को विकास योजनाओं की जानकारी देने के लिए राज्य द्वारा निर्देश है। प्रस्तुत सारणी में यह जानने का प्रयास किया गया है कि महिला श्रमिकों को मनरेगा योजना की जानकारी हैं या नहीं।

आर्थिक अधिकार और वित्तीय समावेश ग्रामीण गरीब महिलाओं के अधिकार और समानता के लिए महत्वपूर्ण है। मनरेगा ने यह सुनिश्चित किया है कि महिलाओं को बैंकिग प्रणाली में शामिल किया जाए, महिलाओं की व्यक्तिगत या संयुक्त नाम से खोले गये खाते तक पहुँच हो। बैंकिग प्रणाली तक महिलाओं की पहुँच, गरीबों और गरीब महिलाओं के लिए पहल में सहायक की भूमिका निभाते है। पश्चिम बंगाल में किये गये एक अध्ययन के अनुसार–महिलाओं में सकारात्मक परिणामों का पता चला है जहाँ महिलाएँ स्वास्थ्य और अपने बच्चों पर संतोषजनक आय खर्च कर रही है। इस अध्ययन से यह भी पता चला है कि महिलाएं सामाजिक लेखा परीक्षा प्रक्रिया का हिस्सा नहीं है।[9]

महात्मा गांधी नरेगा में काम करने वाले परिवारों का मानना है कि योजना का उनके परिवार पर कुछ प्रभाव पड़ा है यह कम या ज्यादा हो सकता है। मनरेगा से सामाजिक रूपान्तरण को निम्न बिन्दुओं से देखा जा सकता है– (1) जीवन यापन में सुधार (2) सामाजिक स्तर पर वृद्धि (3) रोजगार में बढ़ोत्तरी (4) पलायन में कमी (5) कृषि उत्पादन में वृद्धि (6) ऋण वापसी (7) नकदी फसल के रकबे में बढ़ोत्तरी। मनरेगा का लाभ सबसे अधिक गरीब परिवारों को हुआ है इन परिवारों के पास न तो पर्याप्त संसाधन एवं ना ही संवहनीय आजीविका के अवसर थे।[10]

मनरेगा ग्रामीण बुनियादी ढ़ाचे के निर्माण के साथ सार्वजनिक कार्यों को भी इजाजत देता है। मनरेगा के तहत जिले के स्तर पर कम से कम 60 प्रतिशत सार्वजनिक कार्यों को कृषि तथा अन्य गतिविधियों से गुणात्मक भरी उत्पादक सम्पत्तियों के सृजन में लगाना चाहिए। लागू करने वाले राज्यों की बड़ी चुनौती यह है कि मनरेगा का क्रियान्वयन करने वाली प्रणाली की क्षमता को कानून के विधिक प्रावधानों का उल्लंघन किये बगैर कैसे बढ़ाया जाए।

मनरेगा कोविड के बाद उत्पन्न आर्थिक समस्याओं तथा ग्रामीण आय एवं रोजगार की चुनौतियों को पूर्ण करने में सक्षम है और आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में सक्रिय उत्प्रेरक बन सकता है। मनरेगा के लिए अतिरिक्त बजट से गांवों में निवेश बढ़ेगा और ग्रामीण श्रमिक को सहारे के लिए विकल्प होगा। इस कार्यक्रम में आजीविका सुरक्षित करने की क्षमता है। यदि इसे क्रियान्वित करने वाले राज्य सकारात्मक दिशा में कदम उठाये तो यह ग्रामीण व्यवस्था को बदल सकता है।[11]

सारणी संख्या– 1

मनरेगा योजना की जानकारी के प्रति उत्तरदाताओं का दृष्टिकोण

मनरेगा योजना का ज्ञान	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	257	88.7
नहीं	33	11.3
कुल योग	**290**	**100**

प्रस्तुत सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 88.7 प्रतिशत उत्तरदात्रियों को मनरेगा की जानकारी है जबकि 11.3 प्रतिशत को मनरेगा योजना की जानकारी नहीं है।

अतः स्पष्ट है कि 88.7 प्रतिशत महिला श्रमिकों को मनरेगा योजना की जानकारी है।

महिला श्रमिकों को मनरेगा की जानकारी का माध्यम

प्रस्तुत सारणी में महिलाओं को मनरेगा के जानकारी का माध्यम क्या है? संकलित तथ्यों को निम्न सारणी में प्रस्तुत किया गया है।

सारणी संख्या– 2

मनरेगा योजना की जानकारी प्राप्त करने का माध्यम का विवरण

जानकारी प्राप्त हुई	आवृत्ति	प्रतिशत
समाचार पत्रों द्वारा	27	9.3
रेडियो द्वारा	64	22.0
गांव के लोगों के द्वारा	129	44.5
टेलीविजन द्वारा	17	5.9
पंचायत या सरकारी अधिकारी द्वारा	53	18.3
कुल योग	**290**	**100**

उपर्युक्त सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 44.5 प्रतिशत महिला श्रमिकों को गांव के लोगों के द्वारा मनरेगा की जानकारी प्राप्त हुई। 22.0 प्रतिशत लोगों को रेडियो के द्वारा, 18.3 प्रतिशत लोगों को सरकारी अधिकारी या पंचायत के द्वारा मनरेगा की जानकारी प्राप्त हुई, 9.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं को समाचार पत्रों के द्वारा मनरेगा की जानकारी प्राप्त हुई, तथा 5.9 प्रतिशत उत्तरदाताओं को टेलीविजन के माध्यम से मनरेगा की जानकारी हुई।

अतः स्पष्ट है कि सर्वाधिक 44.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं को मनरेगा की जानकारी गांव के लोगों के माध्यम से प्राप्त हुई। इस प्रकार देखा जाता है कि ग्राम सभा व सरकारी अधिकारियों की सक्रियता कम है।

आधारभूत संरचना तथा सामाजिक रूपान्तरण

मनरेगा के क्रियान्वयन के फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन से ग्रामीण आधारभूत संरचना में परिवर्तन हो रहा है। गांवों में रोजगार मिलने से ग्रामीण विकास, तथा स्थानीय क्रय शक्ति में वृद्धि हुई है। प्रस्तुत अध्ययन में महिलाओं से ग्रामीण आधारभूत संरचना तथा सामाजिक रूपान्तरण में हुए परिवर्तनों से सम्बन्धित प्राप्त तथ्यों को निम्न सारणी के द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

सारणी संख्या– 3

मनरेगा योजना द्वारा हुए आधारभूत संरचना में सामाजिक रूपान्तरण के प्रति उत्तरदाताओं का विवरण

विकास एवं परिवर्तन	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	256	88.2
नहीं	34	11.8
कुल योग	**290**	**100**

प्रस्तुत सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 88.2 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि मनरेगा के क्रियान्वयन से ग्रामीण आधारभूत संरचना में सामाजिक रूपान्तरण हुआ है जबकि 11.8 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि आधारभूत संरचना में सामाजिक रूपान्तरण नहीं हुआ है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मनरेगा क्रियान्वयन के पश्चात् गांवों की आधारभूत संरचना में विकास एवं परिवर्तन हुआ है। 88.2 प्रतिशत उत्तरदाता मानते है कि ग्रामीण सामाजिक रूपान्तरण हुआ है।

मनरेगा से सामाजिक रूपान्तरण

मनरेगा के तहत श्रमिकों को मिलने वाले रोजगार से ग्रामीण आधारभूत सामाजिक संरचना में बदलाव हुआ है। मनरेगा के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के कार्य जैसे–तालाबों का निर्माण, कच्ची सड़कों का निर्माण, पौधारोपड़, जल संरक्षण एवं जल संग्रहण इत्यादि कार्यों के होने से गांवों में परिवर्तन हुआ है।

प्रस्तुत सारणी में मनरेगा द्वारा होने वाले सामाजिक रूपान्तरण के कार्यों का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

सारणी संख्या– 4

सामाजिक रूपान्तरण के लिए किये गये कार्य के प्रति उत्तरदाताओं का विवरण

कार्य	आवृत्ति	प्रतिशत
तालाब, पोखरे की सफाई	32	11.0
भूमि संरक्षण	17	5.8
जल संरक्षण एवं जल संग्रहण	63	21.8
ग्रामीण सड़कों, नालियों का निर्माण	104	35.9
पौधारोपड़	74	25.5
कुल योग	**290**	**100**

उपर्युक्त सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 35.5 प्रतिशत उत्तरदाता मानते है कि मनरेगा के अन्तर्गत ग्रामीण सड़कों, नालियों का निर्माण किया गया, 25.5 प्रतिशत का मानना है कि पौधारोपड़ का कार्य हुआ है, 21.8 प्रतिशत का मानना है कि जल संरक्षण एवं जल संग्रहण का कार्य मनरेगा के तहत हुआ है तथा 11.0 प्रतिशत महिला श्रमिकों का मानना है कि मनरेगा के तहत तालाब, पोखरे की सफाई से सम्बन्धित कार्य हुआ है जबकि 5.8 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि मनरेगा के तहत भूमि संरक्षण का कार्य हुआ है।

अतः स्पष्ट है कि सर्वाधिक 35.9 प्रतिशत उत्तरदात्रियों का कहना है कि मनरेगा के तहत ज्यादातर ग्रामीण सड़कों एवं नालियों के निर्माण का कार्य किया गया है।

मनरेगा के प्रावधानों की जानकारी

प्रस्तुत सारणी में मनरेगा श्रमिकों को मनरेगा के मुख्य प्रावधानों की जानकारी के प्रति संकलित तथ्यों को प्रस्तुत किया गया है।

सारणी संख्या–5

मनरेगा के मुख्य प्रावधानों की जानकारी के प्रति उत्तरदाताओं का विवरण

जानकारी	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	54	18.7
नहीं	236	81.3
कुल योग	**290**	**100**

प्रस्तुत सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 81.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं को मनरेगा के प्रावधानों की जानकारी नहीं है जबकि 18.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं को प्रावधानों की जानकारी है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मनरेगा महिला श्रमिकों में जागरूकता की कमी है। 81.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं को मनरेगा के प्रावधानों की जानकारी नहीं है।

मनरेगा के तहत कार्यों की जानकारी

मनरेगा योजना के अन्तर्गत प्रावधानों को महिलाओं द्वारा जानने से मिलने वाले काम व अपने हकों के लिए महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत अध्ययन में श्रमिकों को मनरेगा से सम्बन्धित विकास कार्यों की जानकारी का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

सारणी संख्या– 6

मनरेगा के तहत विकास कार्यों की जानकारी का विवरण

जानकारी	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	162	55.9
नहीं	128	44.1
कुल योग	**290**	**100**

प्रस्तुत सारणी से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 55.9 प्रतिशत, उत्तरदाताओं को मनरेगा में हो रहे ग्रामीण विकास कार्यों की जानकारी है जबकि 44.1 प्रतिशत महिला श्रमिकों को मनरेगा के तहत हो रहे कार्यों की जानकारी नहीं है।

अतः स्पष्ट है कि सर्वाधिक 55.9 प्रतिशत महिला श्रमिकों को मनरेगा योजना के अन्तर्गत चल रहे ग्रामीण विकास से सम्बन्धी कार्यों की जानकारी है।

जॉब कार्ड

जॉब कार्ड मनरेगा के तहत ग्राम पंचायत में पंजीकरण कराने वाले आवेदक को मिलने वाला दस्तावेज है, इस योजना में काम करने वाले व्यक्ति के लिए यह प्रमाण भी है। पंजीकरण के 15 दिन के अन्दर यह कार्ड जारी करना होता है। रोजगार पाने के लिए पंजीकृत व्यक्ति को ग्राम पंचायत अधिकारी को लिखकर देना होता है। श्रमिकों के काम के दिन का विवरण जॉब कार्ड पर दर्ज किया जाता है।

प्रस्तुत सारणी में महिलाओं से जॉब कार्ड के सन्दर्भ में संकलित तथ्यों को दर्शाया गया है।

सारणी संख्या– 7

श्रमिकों के पंजीकरण के बाद जॉब कार्ड मिलने के प्रति उत्तरदाताओं का विवरण

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
15 दिन में	92	31.8
20 दिन में	57	19.7
25 दिन में	64	22.0
1 महीने में	45	15.5
1 महीने से अधिक	32	11.0
कुल योग	**290**	**100**

प्रस्तुत सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 31.8 प्रतिशत महिलाओं को पंजीकरण के पश्चात् 15 दिन के अन्दर ही जॉब कार्ड मिल गया। 22.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं को पंजीकरण के बाद

25 दिन बाद जॉब कार्ड मिला। 19.7 प्रतिशत महिलाओं को पंजीकरण के पश्चात् 20 दिन में जॉब कार्ड मिला।

अतः स्पष्ट है कि सर्वाधिक 31.8 प्रतिशत महिलाओं को जॉब कार्ड पंजीकरण के पश्चात् 15 दिन के भीतर निर्गत हुआ। इससे स्पष्ट है कि जॉब कार्ड वितरण में अनियमितता की जाती है।

पंजीकरण के पश्चात् मनरेगा में 15 दिन के अन्दर जॉब कार्ड जारी किया जाता है।

जॉब कार्ड की उपलब्धता

प्रस्तुत सारणी में पंजीकरण के पश्चात् कितने दिनों में जॉब कार्ड मिला के प्रति उत्तरदाताओं से संकलित तथ्यों को प्रदर्शित किया गया है।

सारणी संख्या– 8

मनरेगा मजदूरों के जॉब कार्ड के प्रति उत्तरदाताओं का विवरण

जॉब कार्ड	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	257	88.7
नहीं	33	11.3
कुल योग	**290**	**100**

प्रस्तुत सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 88.7 प्रतिशत महिला श्रमिकों का जॉब कार्ड बना है जबकि 11.3 प्रतिशत महिलाओं का जॉब कार्ड बना है लेकिन उन्हें दिया नहीं गया है।

अतः स्पष्ट है कि 88.7 प्रतिशत महिलाओं के पास जॉब कार्ड है।

जॉब कार्ड का रख–रखाव

प्रस्तुत सारणी में महिला उत्तरदाताओं द्वारा जॉब कार्ड किसके पास रखा जाता है के सन्दर्भ में प्राप्त तथ्यों को प्रदर्शित किया गया है।

सारणी संख्या– 9

महिलाओं का जॉब कार्ड किसके पास रहता है के प्रति उत्तरदाताओं का विवरण

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
प्रधान के पास	73	25.1
ग्राम पंचायत सदस्य के पास	37	12.8
जॉब कार्ड धारक के पास	169	58.3
वितरित नहीं किया गया	11	3.8
कुल योग	**290**	**100**

प्रस्तुत सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 58.3 प्रतिशत महिलाओं का जॉब कार्ड, कार्ड धारक के पास होता है, 25.1 प्रतिशत ग्राम प्रधान के पास जॉब कार्ड होता है, 12.8 प्रतिशत महिलाओं का जॉब कार्ड ग्राम पंचायत सदस्य के पास होता है, 3.8 प्रतिशत जॉब कार्ड वितरित ही नहीं किया गया।

अतः स्पष्ट है कि सर्वाधिक 58.3 प्रतिशत महिलाओं का जॉब कार्ड स्वयं उनके ही पास होता है।

श्रमिकों को पंजीकरण व जॉब कार्ड बनवाने में समस्या

प्रस्तुत सारणी में महिला श्रमिकों को पंजीकरण कराने व जॉब कार्ड बनवाने में अपनी समस्या के सन्दर्भ में संकलित तथ्यों को दर्शाया गया है।

सारणी संख्या– 10

महिलाओं को जॉब कार्ड बनाने में आयी समस्या के प्रति उत्तरदाताओं का विववरण

समस्या	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	119	41.0
नहीं	171	59.0
कुल योग	**290**	**100**

प्रस्तुत सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 59.0 प्रतिशत महिलाओं को जॉब कार्ड बनवाने में कोई समस्या नहीं हुई, जबकि 41.0 प्रतिशत महिलाओं को जॉब कार्ड बनवाने में समस्या का सामना करना पड़ा।

अतः स्पष्ट है कि 59.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं को आसानी से जॉब कार्ड मिला।

सोशल ऑडिट

मनरेगा में सोशल ऑडिट का प्रावधान प्रभावशाली औजार के रूप में सामने आया है। छः माह में कम से कम प्रत्येक ग्राम पंचायत में एक बार सामाजिक लेखा–परीक्षा की प्रक्रिया आयोजित की जानी होती है। सामाजिक लेखा–परीक्षा का उद्देश्य विधियों तथा नीतियों के क्रियान्वयन में सार्वजनिक भागीदारी को सुनिश्चित करना है।

प्रस्तुत सारणी में मनरेगा के कामों का सोशल ऑडिट के प्रति उत्तरदाताओं से तथ्य संकलित किया गया, संकलित तथ्यों को प्रदर्शित किया गया है।

सारणी संख्या–11

कार्यों का सोशल आडिट के प्रति उत्तरदाताओं का विवरण

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	19	6.6
नहीं	251	86.6
पता नहीं	20	6.8
कुल योग	**290**	**100**

प्रस्तुत सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 86.6 प्रतिशत महिलाओं का मत है कि मनरेगा में कार्यों का सोशल ऑडिट नहीं किया जाता है जबकि 6.6 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि मनरेगा के कार्यों का सोशल ऑडिट होता है। 6.8 प्रतिशत उत्तरदाताओं को पता नहीं है।

अतः स्पष्ट है कि 86.6 प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि मनरेगा में सोशल ऑडिट नहीं होता है।

निजी भूमि पर कार्य

छोटे या सीमांत किसानों की भूमि पर मनरेगा, तालाबों के निर्माण, सिंचाई, भूमि विकास, जल संरक्षण आदि की अनुमति देता है। प्रस्तुत सारणी में उत्तरदाताओं से व्यक्तिगत भूमि पर कार्य करने सम्बन्धी तथ्यों को संकलित किया गया है, प्राप्त तथ्यों को निम्न सारणी में प्रदर्शित किया गया है।

सारणी संख्या– 12

मनरेगा के तहत व्यक्तिगत भूमि पर हुए कार्य के प्रति उत्तरदाताओं का विवरण

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	129	44.5
नहीं	148	51.0
पता नहीं	13	4.5
कुल योग	**290**	**100**

प्रस्तुत सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 51.0 प्रतिशत महिलाओं ने किसी निजी भूमि पर कार्य नहीं किया है जबकि 44.5 प्रतिशत महिलाओं ने निजी भूमि पर कार्य किया है। तथा 4.5 प्रतिशत महिलाओं को कार्य के दशा की जानकारी ही नहीं है।

अतः स्पष्ट है कि 44.5 प्रतिशत महिलाओं ने मनरेगा के तहत किसी निजी भूमि पर कार्य नहीं की है।

निष्कर्ष

विश्लेषण के परिणामस्वरूप प्राप्त निष्कर्षों से स्पष्ट होता है कि मनरेगा के अन्तर्गत कार्य करने वाली 88.7 प्रतिशत महिलाओं को मनरेगा योजना की जानकारी है। सर्वाधिक 44.4 प्रतिशत महिलाओं को मनरेगा की जानकारी गाँव के लोगों द्वारा मिली है। उत्तरदाताओं को मनरेगा की जानकारी समाचार पत्रों, रेडियो, तथा टेलीविजन के द्वारा भी मिली है। 88.2 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि मनरेगा के क्रियान्वयन से ग्रामीण आधारभूत संरचना में सामाजिक रूपान्तरण हुआ है। 35.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि मनरेगा के तहत नालियाँ, ग्रामीण सड़कों का निर्माण कराया गया। उसके अतिरिक्त गांवों में तालाब एवं पोखरे की सफाई, भूमि संरक्षण, जल संग्रहण, जल संरक्षण, पौधारोपण आदि कार्य किया गया। सर्वाधिक 81.3 प्रतिशत महिलाओं को मनरेगा के प्रावधानों की जानकारी का अभाव है। 55.9 प्रतिशत महिलाओं में मनरेगा के अन्तर्गत होने वाले कार्यों की जानकारी है। सर्वाधिक 31.2 प्रतिशत महिलाओं को पंजीकरण के 15 दिन के अन्दर जॉब कार्ड मिल गया जबकि अन्य उत्तरदाताओं को 15 दिन के बाद मिला। 88.7 प्रतिशत महिला श्रमिकों का जॉब कार्ड बना है। सर्वाधिक 59.0 प्रतिशत महिलाओं को जॉब कार्ड बनवाने में कोई समस्या नहीं हुई। सर्वाधिक 58.3 प्रतिशत महिलाएँ जॉब कार्ड अपने पास रखती है, जबकि अन्य उत्तरदाताओं के जॉब कार्ड गाँव के प्रधान या ग्राम पंचायत सदस्य के पास रहता है। सर्वाधिक 86.6 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि मनरेगा के कार्यों का सोशल ऑडिट नहीं होता है। सर्वाधिक 51.0 प्रतिशत महिलाओं ने निजी भूमि पर कार्य नहीं किया है।

संदर्भ ग्रन्थ–सूची

1. नायको और अक्तर, ट्रान्सफारर्मेशन ऑफ लाइफ अण्डर रूरल डेवलपमेन्ट : द स्टडी ऑफ डिस्ट्रीक्ट कुलगाम (जे0 एण्ड के0); इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च Vol. 8 9,2011., Pp. 429-440, P-ISSN : 2348-6848.

2. अंगद सिंह, रूरल डेवलपमेंट इन इण्डिया : ए स्टडी : इम्परर जर्नल ऑफ इकोनॉमिक्स एण्ड सोशल साइंस रिसर्च Pp. 71-80, ISSNNo. 2581-8643.

3. Casual labour refers to work on non-public work. For details, See P. Dutta, R. Murgai, M. Ravallion, and W.V. Dominique, 'Does India's Employment Guarantee scheme Guarantee Employment? Policy Research Paper, Washington. DC : World Bank, 2012.

4. J. Ghosh, 'Easuity and Inclusion through Public Expenditure : The Potential of the NREGS; New Delhi : Paper for International Conference on NREGA, 21-22 January, 2009.

5. Dreze and R. Khera, The Battle for Employment Guarantee, New Delhi : Oxford University Press 2011, Pp. 43-81.

6. K. Bonner, et al., 'MGNREGA Implementation' : Across-State Comparison, 'Woodrow Wilson School Princeton University, 2012.

7. नरायण, सुधा और उपासक दास (2014), 'महिलाओं की भागीदारी और रोजगार गारंटी योजना में नियन्त्रण, आर्थिक और राजनैतिक साप्ताहिक XLIX (46).

8. शंकर, शैलाश्री और राघव सैघ गैहा (2013), भ्रष्टाचार से संघर्ष : क्या नरेगा भारत के ग्रामीण गरीबों तक पहुँच पाया है? नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

9. सौमेन्द्र, किशोरदत्ता और कृष्ण सिंह, नरेगा कार्यक्रम में गरीब महिलाओं की कार्य भागीदारी और दक्षता–भारत में एक जिले का मामला अध्ययन.

10. गिडुर, एंटोनी (1979), 'समाज सिद्धांत में प्रमुख समस्याएं : सामाजिक विश्लेषण में कार्य, संरचना और विरोधाभास। वर्कले, कैलिफोर्निया कैलिफोर्निया : विश्वविद्यालय प्रेस।

11. त्रिपाठी, के0के0, (2014), कोविड–19 के बाद ग्रामीण रोजगार में मनरेगा की भूमिका, कुरुक्षेत्र, जुलाई 2020, पृ0सं0 17–20.

ग्रामीण विवाह प्रणाली में परिवर्तन और वैवाहिक जोड़ी चयन की समस्याएँ: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ स्मिता रॉय
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर,
ललित नारायण मिथिला यूनिवर्सिटी, दरभंगा (बिहार)
राकेश कुमार सिंह
शोध छात्र, असिस्टेंट प्रोफ़ेसर,
लोक राष्ट्रीय डिग्री कॉलेज, जसराना, फिरोजाबाद

शोध सारांश

यह शोध पत्र ग्रामीण समुदायों में विवाह प्रणाली में परिवर्तन के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली समस्याओं पर चर्चा करने का प्रयास करता है। भारतीय समाज में विवाह एक महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था है। सामाजिक स्वास्थ्य और व्यवस्था को बनाए रखने की प्रक्रिया में विवाह संस्था महत्वपूर्ण कार्य करती है। विवाह अपने साथ परिवार का निर्माण, यौन आवश्यकताओं, प्रजनन, बच्चे के पालन-पोषण और समाजीकरण की प्रमुख आवश्यकताएँ लेकर आता है। सामाजिक संस्था के रूप में विवाह में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। इसकी संरचना और कार्य दोनों में परिवर्तन हुए हैं। पारंपरिक ग्रामीण समाज में, दूसरे परिवार के साथ विवाह संबंध स्थापित करना महत्वपूर्ण है।

लेकिन आज रोजगार और अन्य क्षेत्रों में महिलाओं की बढ़ती संख्या के कारण वैवाहिक जोड़ी के चयन में परिवार का प्रभुत्व दरकिनार हो गया है। आजकल 'शादी डॉट कॉम', 'भारत मैट्रिमोनी' जैसे कई विवाह ब्यूरो जोड़ी चयन में सहायता कर रहे हैं। आज लड़कियाँ उन लोगों को पसंद करती हैं जो शैक्षणिक रूप से योग्य हों, साथ ही जो उच्च आय वाले नौकरीपेशा हों और शहरी क्षेत्रों में रहते हों, और साथ ही साथी आकर्षक व्यक्तित्व वाला हो। इसलिए, आज ऐसा लगता है कि पारंपरिक ग्रामीण समाज ऐसे परिवारों के साथ वैवाहिक संबंध बनाए रखने में रुचि नहीं रखते हैं, जो व्यवसायी या किसान हैं और जो शैक्षणिक रूप से पिछड़े हैं। इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष रूप से कृषक परिवारों में कुंवारे युवाओं की संख्या बढ़ रही है।

(की- वर्ड्स: प्रजनन, धार्मिक अनुष्ठान, एकाधिकार, वैवाहिक सम्बन्ध, समानता।)

परिचय:

मानव समाज के निर्माण की प्रक्रिया में, मानव जीवन की आवश्यकताओं और निरंतरता के साथ-साथ समाज के सदस्यों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सामाजिक संस्थाओं का निर्माण किया गया है। समाज की बुनियादी जरूरतों को पूरा करना महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सामाजिक व्यवस्था के अस्तित्व और निरंतरता पर निर्भर करता है। अनादि काल से, विवाह, परिवार, धर्म, राज्य और अर्थव्यवस्था जैसी सामाजिक संस्थाएँ अस्तित्व में आईं। विवाह एक प्राचीन सामाजिक संस्था है और दुनिया की हर मानव संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। मानव समाज में विवाह का पैटर्न कब शुरू हुआ? मॉर्गन, बाचोफमैन, वेस्टरमार्क और अन्य मानवशास्त्रियों ने इस संबंध में विवाह की उत्पत्ति के बारे में विभिन्न विचार प्रस्तुत किए हैं। विवाह पुरुष और महिला के सामाजिक रूप से स्वीकृत मिलन के रूप में, समाज द्वारा घर की स्थापना, यौन संबंध बनाने, संतान पैदा करने और संतान की देखभाल करने के उद्देश्य से पुरुष और महिला के मिलन और संभोग को मंजूरी देने के लिए तैयार की गई एक संस्था है। विवाह संस्था का अस्तित्व प्राचीन काल से दुनिया के सभी समाजों में पाया जाता है। भारतीय समाज में विवाह के मुख्यतः दो प्रकार हैं, बहुविवाह, साथ ही जीवन साथी चुनने की एक विधि के रूप में अंतर्विवाह और बहिर्विवाह हिरासत के नियम। इन विभिन्न रूपों के अनुसार, एक महिला और एक पुरुष के बीच वैवाहिक संबंध के माध्यम से एक परिवार का निर्माण होता है। इससे समाज में सामाजिक व्यवस्था सुगम होती है। प्रत्येक समाज में विवाह से संबंधित कुछ नियम होते हैं। भारतीय समाज में अंतर्विवाह और बहिर्विवाह मामलों के नियम हैं। अंतर्विवाह के मामले में

जाति, नस्ल, धर्म, वर्ग के विवाह होते हैं, जबकि विवाह के प्रकार में परिवार, कुटुंब और कुटुंब का विवाह होता है। भारतीय समाज में वैवाहिक साथी अंतर्विवाह और बहिर्विवाह मामलों के प्रकार के अनुसार निर्धारित किए जाते हैं, लेकिन आज वैश्वीकरण, औद्योगीकरण, शहरीकरण की प्रक्रिया में सामाजिक व्यवस्था में कई बदलाव हुए हैं। बदलती परिस्थितियों में हर समाज में सामाजिक संगठन में बदलाव हुए हैं। इसलिए, विवाह व्यवस्था में भी बदलाव हो रहा है। विवाह की प्रकृति, विवाह के पैटर्न, जीवनसाथी के चयन में परिवर्तन, विवाह की आयु में वृद्धि, विधवा विवाह की स्वीकृति, तलाक की स्वीकृति, विवाह के नियमों में परिवर्तन आदि अनेक परिवर्तन हुए हैं और इन परिवर्तनों को प्रत्येक व्यक्ति स्वीकार कर रहा है।

विवाह के कानून सहित वैवाहिक पसंद की प्रथा में भी कई बदलाव हुए हैं। पारंपरिक समाज में, विवाह माता-पिता, परिवार और रिश्तेदारों द्वारा तय किया जाता था। बच्चों को अपना जीवनसाथी चुनने की स्वतंत्रता नहीं थी। बड़ों द्वारा चुने गए जीवनसाथी से ही विवाह करना अनिवार्य था। जीवनसाथी चुनने के साथ-साथ परिवार और परिवार की प्रतिष्ठा को भी ध्यान में रखा जाता था। साथ ही, वैवाहिक साथी चुनने की प्रथा बच्चों द्वारा अपनाई गई। आज, जीवनसाथी चुनने के तरीके में बहुत बदलाव आया है। यह आज शहरी समुदाय की तरह ग्रामीण समुदाय में भी लोकप्रिय हो गया है।

इस अध्ययन का उद्देश्य यह जानना है कि ग्रामीण युवाओं को अपने वैवाहिक जोड़े के चयन में क्या समस्याएँ आती हैं और इसके लिए मैंने ऐसे युवाओं से बातचीत की और अपने कुछ अवलोकन भी किए। मैंने उन ग्रामीण युवाओं से संबंधित प्राथमिक डेटा एकत्र करने का भी प्रयास किया जो इस समस्या का सामना कर रहे हैं। जहाँ तक ग्रामीण संरचना पर विचार किया जाता है, वहाँ अभी भी कृषक समुदाय गरीब स्थिति में रह रहे हैं और उनकी आय का कोई अन्य स्रोत नहीं है और दूसरी ओर, ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगारी की समस्या गंभीर है। इसलिए, ग्रामीण विवाह प्रणाली में जोड़ी चयन की समस्या स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, जबकि लड़कियों की जोड़ी चयन के प्रति उच्च अपेक्षाओं और पारंपरिक ग्रामीण संरचना के बीच ध्रुवीकृत स्थितियों को ध्यान में रखा जाता है। यह स्थिति ग्रामीण युवाओं में अकेलेपन, अवसाद आदि जैसी मनोवैज्ञानिक समस्याएं पैदा करती है।

अध्ययन के उद्देश्य:

1) देर से विवाह और फिर भी अविवाहित रहने के पीछे के कारणों को जानना।
2) ग्रामीण युवकों को अपना जोड़ा चुनते समय महिलाओं के व्यवहार को समझना।
3) बदलती विवाह प्रणाली के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में कृषक परिवारों के सामने आने वाली समस्याओं को जानना।

साहित्य की समीक्षा:

भारतीय समाज में विवाह के बदलते स्वरूप पर कई शोध लेख और शोध प्रबंध प्रकाशित हुए हैं। बदलते विवाह स्वरूप अध्ययन में विवाह के बदलते स्वरूप के पांच पहलुओं पर ध्यान केंद्रित किया गया है। विवाह का उद्देश्य, प्रकृति, उसका चयन, उसके मानदंड, विवाह की आयु, वित्तीय पहलुओं को ध्यान में रखा गया है।

एम. शर्मा के शोध पत्र "भारत में विवाह और परिवार संरचना में हालिया बदलाव" में विवाह की आयु में बदलाव, जीवन साथी चुनने में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी, अंतरजातीय विवाह के साथ-साथ वर-वधू को वैवाहिक साथी खोजने में सहायता करने पर विचार किया गया है। इस शोध प्रबंध में जीवन साथी चुनने की प्रक्रिया में माता-पिता की भागीदारी कम होती जा रही है। विवाह के उद्देश्य में बदलाव को पारस्परिक उपयोगिता के रूप में देखा जा रहा है। इसी तरह विवाह अपरिहार्य हो गया है।

इसके अलावा शुअनी के शोध पत्र "हिंदू विवाह में हालिया बदलाव" में भारतीय समाज के बदलते विवाह पैटर्न पर विचार किया गया है। इस अध्ययन में जीवनसाथी के चयन में बदलाव, महिलाओं की बढ़ती भागीदारी, विवाह की बढ़ती उम्र, सक्षम जीवनसाथी के चयन पर भी विचार किया गया है। डॉ. (श्रीमती) मनजीत हुंडेल के शोध पत्र "विवाह में बदलती प्रवृत्ति: समाचार पत्र में वैवाहिक विज्ञापन का अध्ययन" में भारतीय समाज ने शहरीकरण के कारण विवाह प्रणाली में आए बदलाव पर टिप्पणी की है। यह

मुख्य रूप से इंगित करता है कि जीवनसाथी के चयन की पद्धति में बदलाव करके समाचार पत्र के विवाह विज्ञापन से जीवनसाथी का चयन किया जाता है। उपरोक्त सभी शोध निबंधों पर विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इस शोध प्रबंध में विचार किए गए कई कारकों में विवाह में बदलाव, जीवनसाथी के चयन में बदलाव, माता-पिता की जीवनसाथी के चयन में भागीदारी में कमी, जीवनसाथी के चयन के लिए वर-वधू पर शासी मंडल का समर्थन, अंतर-जातीय विवाहों की बढ़ती संख्या शामिल है। लेकिन किसी अन्य अध्ययन में ग्रामीण युवाओं की समस्या पर प्रकाश नहीं डाला गया है जो देर से शादी करते हैं या अविवाहित रहते हैं। शोधकर्ता द्वारा किया गया यह पहला प्रयास है और इससे अन्य विषयों को भी मदद मिलेगी।

कार्यप्रणाली (Methodology)

यह विशेष अध्ययन केस स्टडी पद्धति पर आधारित है। इसमें प्राथमिक और द्वितीयक आंकड़ों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक आंकड़ों को साक्षात्कार और अवलोकन तकनीक की मदद से एकत्र किया गया था, जबकि द्वितीयक आंकड़ों को पुस्तकालय, पुस्तकों, पत्रिकाओं, समाचार पत्रों और विभिन्न वेबसाइटों के माध्यम से एकत्र किया गया था।

अध्ययन के उद्देश्य से शोधकर्ता ने बिहार राज्य के गया जिले में स्थित 'सिंदुआरी' गाँव का चयन किया है। 2011 की जनगणना के अनुसार सिंदुआरी की जनसंख्या 3602 है, इस गाँव में लगभग 735 परिवार रहते हैं। 735 परिवारों में से 296 परिवार ऐसे हैं जिनमें 25 से 40 वर्ष की आयु के छोटे बच्चे हैं। चूंकि इन 296 परिवारों का अध्ययन करना संभव नहीं है, इसलिए शोधकर्ता ने अध्ययन के लिए इनमें से 10 प्रतिशत परिवार यानी तीस परिवारों का चयन किया है। इन 30 परिवारों में कुल 56 छोटे बच्चे हैं जिनकी आयु 25 से 40 वर्ष के बीच है। समस्या को समझने के लिए, साक्षात्कार और अवलोकन तकनीक की मदद से परिवार के मुखिया के साथ चर्चा की गई है और एकत्रित आंकड़ों को निम्नानुसार संकलित किया गया है।

तालिका संख्या: 1 आयु वर्ग में युवाओं की संख्या

Age Groups	Total Number	Percentage (%)
25-30	21	37.5%
30-35	19	33.92 %
35-40	16	28.58 %
Total	56	100 %

इस विशेष अध्ययन के लिए 30 परिवारों में से 25 से 40 आयु वर्ग के 56 युवा थे। फिर से यह आयु वर्ग 25 से 30 (37.5%), 30 से 35 (33.92%), 35 से 40 (28.58%) में विभाजित हो गया, 30 परिवारों में 25 से 40 आयु वर्ग के कुल 56 युवा पाए गए। इन सभी को शोध के उद्देश्य से चुना गया है।

तालिका संख्या: 2 शैक्षिक जानकारी

Age Group	Up to 10th Standard	Up to 12th Standard	Up to Graduate	Up to Post Graduate	Total
25-30	02	04	09	06	21
30-35	04	06	07	02	19
35-40	05	04	06	01	16
Total	11	14	26	09	56
Percentage	19.64%	25%	39.28%	16.08%	100%

तालिका संख्या 2 चयनित उत्तरदाताओं की कुल शैक्षिक जानकारी का विश्लेषण करती है। यह पाया गया है कि अधिकांश उत्तरदाताओं (39.28%) के पास डिग्री स्तर की शिक्षा है, उसके बाद 12वीं कक्षा तक (25%), 10वीं कक्षा तक (19.64%) और केवल 16.08% ने अपनी स्नातकोत्तर शिक्षा पूरी की है।

तालिका क्रमांक: 3 व्यवसाय की प्रकृति और रोजगार की स्थिति

Age group	Agriculture	Co-operatives Societies	MIDC	Government Job	Total
25-30	11	04	05	01	21
30-35	13	02	04	--	19
35-40	09	02	05	--	16
Total	33	08	14	01	56
Percentage	58.93%	14.29%	25%	1.78%	100%

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि, अधिकांश उत्तरदाता (58.93%) कृषि से जुड़े हैं, इसके बाद सहकारी समिति (14.29%) में सेवा, निजी क्षेत्र यानी एमआईडीसी (25%) और केवल (1.78%) उत्तरदाताओं के पास सरकारी नौकरी है।

तालिका क्रमांक: 4 आयु वर्ग में विवाहित और अविवाहित युवाओं की संख्या

Age Groups	Married	Percentage (%)	Unmarried	Percentage (%)	Total
25-30	06	10.71%	15	26.79%	21
30-35	10	17.86%	09	16.08%	19
35-40	11	19.64%	05	8.92%	16
Total	27	48.21 %	29	51.79%	56

तालिका संख्या 4 से पता चलता है कि कुल उत्तरदाताओं में से 25 से 40 आयु वर्ग के अधिकतम 51.79% युवा अभी भी अविवाहित हैं और 48.21% विवाहित हैं। इसमें यह भी ध्यान दिया गया कि, अधिकांश उत्तरदाता (यानी 26.79%) 25 से 30 आयु वर्ग के अविवाहित हैं, इसके बाद 30 से 35 आयु वर्ग के 16.08% और 35 से 40 आयु वर्ग के 8.92% हैं। उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि, अध्ययन क्षेत्र में देर से शादी या अविवाहित होने की समस्या दिखाई देती है।

शोध निष्कर्ष (Findings)

अध्ययन से पता चलता है कि, ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष रूप से कृषक परिवारों में युवाओं का समय पर विवाह नहीं हो रहा है। इस तरह की स्थिति ग्रामीण सामाजिक संरचना में अन्य सामाजिक समस्याओं को जन्म दे सकती है। ग्रामीण विवाह प्रणाली में इस विशेष शोध के दौरान पाए गए निम्नलिखित परिवर्तनों पर चर्चा की जानी है। देर से विवाह करने वाले ग्रामीण युवाओं की समस्याओं पर चर्चा करते हुए युवाओं ने कई मुद्दों पर चर्चा की जो इस प्रकार हैं।

1. परंपरा से हटकर आर्थिक लाभ की ओर रुखः

जैसा कि हमने कहा कि पारंपरिक हिंदू विवाह और मुख्य रूप से ग्रामीण समुदाय में स्पष्ट उद्देश्य, परिवार के सदस्यों की यौन आवश्यकताओं को हल करना और निरंतरता बनाए रखना था। हालाँकि, आज उद्देश्य परंपरा से हटकर आर्थिक लाभ की ओर हो गया

है। वैवाहिक संबंधों को आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए बदल दिया गया है और इस तरह का व्यवहार परिवर्तन हाल के दिनों में हुआ है।

2. जोड़े के चयन के प्रति दृष्टिकोण में बदलावः

शुरू में, पारंपरिक भारतीय समाज में, दुल्हन का चयन उस परिवार की स्थिति, पवित्रता और रिश्तेदारी पर निर्भर करता था जिसमें विवाह संबंध जुड़ने जा रहे थे। प्राथमिकता दोनों परिवारों की आपसी समझ के आधार पर दी जाती थी जो एक साथ आ रहे थे। लेकिन आजकल, वधू-वर संकेतक मंडल, भारत मैट्रिमोनी, वेडिंग्स डॉट कॉम आदि वैवाहिक संबंधों को जोड़ने वाली एजेंसियां हैं और इस प्रक्रिया में परिवार की भूमिका गौण हो जाती है और केवल दूल्हा-दुल्हन ही प्राथमिक हो जाते हैं। लेकिन कभी-कभी पारंपरिक प्रकृति के ग्रामीण परिवारों द्वारा चयन को स्वीकार नहीं किया जा सकता था।

3. जीवनसाथी के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन:

पारंपरिक ग्रामीण समाज कठोर और रूढ़िवादी मानसिकता वाले थे, इसलिए विवाह करते समय नियमों और मानदंडों का सख्ती से पालन किया जाता था। वैवाहिक संबंध बनाते समय जाति, धर्म और जातीयता जैसे कारक प्रभावित होते थे। आज दृष्टिकोण बदल गया है। वे अपनी पसंद से अपने साथी का चयन करते हैं और पारंपरिक नियमों और मानदंडों को त्याग देते हैं। इसका उद्देश्य केवल वित्तीय और आज की जीवन स्थितियों के साथ समायोजन करना था।

4. महिलाओं की शैक्षणिक और आर्थिक स्थिति में बदलाव:

ब्रिटिश काल से ही भारतीय महिलाओं की शैक्षणिक और आर्थिक स्थिति में तेजी से बदलाव आया है और उन्हें आजादी देने की कोशिश की जा रही है। आजादी के बाद सरकार ने आरक्षण, छात्रवृत्ति, लड़कियों की शिक्षा के लिए मुफ्त शिक्षा जैसी कई चीजें लागू की हैं। इसके परिणामस्वरूप शहरी समुदाय से लेकर ग्रामीण समुदाय तक महिलाओं का शैक्षणिक विकास तेजी से हो रहा है। इससे महिलाएं आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो रही हैं। सेवा क्षेत्र के विकास के कारण इस क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की संख्या में वृद्धि हो रही है। ग्रामीण समुदायों में भी यह दृष्टिकोण विकसित होने लगा है, जिससे महिलाओं को शिक्षित करने और रोजगार देने के प्रति लोगों का पारंपरिक नजरिया बदल रहा है। परिवार के आर्थिक विकास के लिए महिलाओं का रोजगार और व्यवसाय जरूरी है। हालांकि, महिलाओं में शिक्षा और रोजगार के कारण उनकी मानसिकता बदल जाती है और इस तरह के बदलाव से ग्रामीण विवाह प्रणाली में समस्या पैदा होती है।

5. शहरी जीवनशैली के प्रति आकर्षण:

सामान्य तौर पर, भारतीय समाज में युवा लोगों में शहरी जीवनशैली, आकर्षक व्यक्तित्व के मामले में काफी वृद्धि हुई है। शहरी जीवन के आकर्षण के कारण, विवाह साथी शहरी रोजगार, व्यवसाय, शहरी जीवन और आकर्षक व्यक्तित्व को भी पसंद की प्रणाली में ध्यान में रखते हैं। परिणामस्वरूप, ग्रामीण समुदायों में युवा लोगों को वैवाहिक साथी के रूप में नहीं चुना जाता है। परिणामस्वरूप, किसान परिवारों के बच्चों की सही उम्र में शादी नहीं हो पाती है और ग्रामीण समुदायों की लड़कियाँ भी शहरी साथी से शादी करने के लिए उत्सुक रहती हैं। प्राकृतिक परिस्थितियों की अनिश्चितता के कारण खेती लाभदायक नहीं है। अन्य नौकरियाँ उपलब्ध नहीं हैं। पारंपरिक शिक्षा युवाओं को रोजगार प्रदान नहीं करती है। ग्रामीण क्षेत्रों में लोग विकसित नहीं हुए हैं क्योंकि उद्योग विकसित नहीं हैं। इससे गाँव में वित्तीय आय की कमी होती है। पारंपरिक खेती का संबंध पारंपरिक जीवन शैली से है। इसलिए, परिणामस्वरूप गाँव को अलग तरह से देखा जाता है; विवाह साथी चुनते समय ग्रामीणों का चयन नहीं किया जाता है।

6. मनोरंजन के लिए अपर्याप्त उपकरण:

शहरी क्षेत्रों की तुलना में कोई मनोरंजन सुविधाएँ नहीं हैं। त्योहारों, पर्यटन, टेलीविजन के अलावा, होटल, बार, सिनेमा, मॉल, खेल के मैदान जैसी कोई शहरी मनोरंजन सुविधाएँ नहीं हैं। ग्रामीण समुदाय एक शांतिपूर्ण और स्थिर जीवन जी रहा है। इसलिए, ग्रामीण समुदाय

विवाह साथी का चयन करना पसंद नहीं करता है। उपरोक्त सभी बातों पर विचार करने पर, यह देखा जा सकता है कि वैवाहिक जोड़े के चयन की प्रक्रिया बदल रही है। इसका असर यह भी है कि ग्रामीण समुदाय में युवा लोग विवाह की उम्र में विवाह नहीं करते हैं। इस अध्ययन की धारणा यह है कि विवाह की सही उम्र में कई विवाह नहीं होते हैं। इस अध्ययन में यह धारणा बनाई गई थी और इस अध्ययन के लिए एकत्र किए गए तथ्यों पर यह साबित भी हुई।

निष्कर्ष:

ग्रामीण विवाह प्रणाली में जो बदलाव आ रहे हैं, वे कई कारणों से हो रहे हैं, जैसे शहरीकरण, जीवनशैली और खुले समाज के प्रति दृष्टिकोण। विवाह साथी चुनने की प्रक्रिया में लड़कियों की बढ़ती भागीदारी के कारण, लड़कियाँ मुख्य रूप से शिक्षा, वित्तीय क्षमता, स्थिति, जीवन शैली, आकर्षक व्यक्तित्व, शहरी आकर्षण आदि पर विचार कर रही हैं। परिणामस्वरूप, ग्रामीण समुदायों के युवा जो कम शिक्षित हैं, किसान और पारंपरिक व्यवसायी हैं, वे विवाह नहीं करते हैं या देर से विवाह करते हैं। इससे ग्रामीण युवाओं और ग्रामीण परिवारों के लिए सही उम्र में विवाह न करना एक समस्या बन गई है। यह शोधपत्र निष्कर्ष निकालता है कि, ग्रामीण समुदाय में अभी भी खेती और अन्य पारंपरिक व्यवसाय किए जाते हैं। लोगों का जीवन स्तर बहुत निम्न है। रोजगार के अन्य साधन नहीं हैं। इसलिए, लड़कियाँ ग्रामीण क्षेत्रों में अपनी शादी तय करना पसंद नहीं करती हैं, आज ग्रामीण युवाओं के लिए कोई अपेक्षित नौकरी, अच्छा घर और कई अन्य चीजें नहीं हैं, और विशेष रूप से उन लड़कियों की अनुचित अपेक्षाएं हैं जो कृषक समुदाय से संबंधित पति नहीं चाहती हैं। इसलिए आज ग्रामीण समुदाय में बहुत से युवा विवाह नहीं कर रहे हैं। इससे अविवाहित युवाओं के जीवन में अवसाद, शारीरिक और विभिन्न समस्याएं पैदा हो रही हैं। परिणामस्वरूप, ग्रामीण विवाह और पारिवारिक संगठन में परिवर्तन समाज में एक नई समस्या पैदा कर रहे हैं।

यह अध्ययन दर्शाता है कि कृषक समुदायों में ग्रामीण युवा विवाह की सही उम्र में शादी नहीं करते हैं। यह शोध पत्र भविष्य में और अधिक शोध के लिए नया मार्ग प्रशस्त करेगा। यह अध्ययन मुख्य रूप से अविवाहित और देर से शादी करने वालों की समस्याओं पर केंद्रित है।

यह अध्ययन इस बात पर भी केंद्रित है कि ग्रामीण युवा किस तरह अपराध, नशे की लत, आत्महत्या आदि जैसी समस्याओं का शिकार हो रहे हैं।

संदर्भ सूची

1. आहूजा, आर. (2002). भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. अगलेव, पी. (2002). समाजसत्र (मराठी), साईनाथ प्रकाशन, नागपुर।
3. सालुंखे एस. (1996), बेसिक कॉन्सेप्ट इन सोशियोलॉजी, नरेंद्र प्रकाशन, पुणे।
4. शर्मा, ए. "भारत में विवाह प्रणाली और पारिवारिक संरचना में हालिया बदलाव," www.yourarticlelibrary.com से प्राप्त
5. शुआनी, "हिंदू विवाह में हालिया बदलाव," www.yourarticlelibrary.com से प्राप्त
6. हुंडेल, एम." विवाह में बदलती प्रवृत्ति: समाचार पत्र में वैवाहिक विज्ञापनों का एक अध्ययन, जर्नल ऑफ रिसर्च इन ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस, खंड-3, अंक-11 (2015), www.questjournals.org।
7. www.ukessays.com से लिया गया

नातेदारी संरचना में रूपांतरण

डॉ० राममनोहर यादव
सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग,
गोपाल जी पी०जी० कालेज रेवती, बलिया

विवाह अनुस्थापन परिवार और प्रजनन परिवार के बीच की कड़ी है। दो एकाकी परिवारों में व्यक्तिगत सदस्यता का यह सत्य ही नातेदारी प्रथा को जन्म देता है। नातेदारी को इस प्रकार परिभाषित किया गया है– ''परिवार से सम्बद्ध आधार पर सामाजिक सम्बन्ध'' (थियोडोरसन 1969 221)। वह सम्बन्ध जो या तो समरक्तमूलक (consanguinal) या दम्पत्तिस्वजन (affinal) आधारित हों, व्यक्तियों के अधिकार व कर्तव्यों का निर्धारण करते हैं। अतः नातेदारी व्यवस्था का अर्थ है ''प्रस्थितियों और भूमिकाओं और सम्बन्धों की एक ऐसी संचरित व्यवस्था जिसमें नातेदार (प्राथमिक, द्वैतियक, तृतीयक व दूरस्थ) जटिल श्रंखलाबद्ध बन्धनों द्वारा परस्पर बँधे रहते हैं।'' नातेदारों के बीच सम्बन्धों को बताने वाला पारस्परिक व्यवहार ऐसे शब्दों से संज्ञिप्त होता है, जिनके द्वारा प्रत्येक नातेदार एक दूसरे को सम्बोधित करता है, अर्थात् व्यक्तिगत नाम से या नातेदारी की शब्दावली से (पिताजी, दादाजी, बहिन जी) या व्यक्ति व नातेदारी शब्दावली के सम्मिलित नाम से (राम के पिता, रीता की माँ, आदि)। नातेदारी शब्द (सम्बोधन व सन्दर्भ के) जो या तो प्रारम्भिक (जिन्हें किन्हीं अन्य शब्द में कम नहीं किया जा सकता, जैसे, माता, पिता, काका, चाचा, भाई, बहन, आदि) या यौगिक (जो प्रारम्भिक शब्द के योग से बना हो, जैसे बहनोई, मौसा, आदि) या वर्णनात्मक (जो दो या अधिक प्रारम्भिक शब्दों के मेल से बना हो, जैसे मौसेरी बहन, फुफेरा भाई, आदि) और जिन्हें एकाकी (isolative) कह कर विभेदित किया जाता है (एक ही नातेदार पर लागू होता है जो कि पीढ़ी, लिंग और वंश–सम्बन्धों से जाने जाते हों, जैसे भाई, बहिन, पति, पत्नी, आदि) या वर्गात्मक (classification) शब्द (दो या अधिक नातेदारी श्रेणी के लोगों पर लागू जैसे 'सम्भ्राता' (cousin) पिता के भाईयों के पुत्रों और माता की बहिन के पुत्रों, दोनों के लिए प्रयुक्त)। क्योंकि वर्गात्मक शब्द एक या अधिक मूल आधार की अवहेलना करते हैं (जैसे लिंग, आयु, पीढ़ी, दाम्पत्य मूलक निकटता, सह सम्बद्धता, विभाजन, आदि), इसलिए नातेदारों के श्रेणियों की संख्या हजारों से कुछ गिनी चुनी संख्या तक ही सीमित कर देते हैं।

हिन्दुओं के सामाजिक समारोहों, संस्कारों और दैनिक जीवन में परिवार के बाद नातेदारी समूह ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जीवन के संकटकाल में ही लोग केवल नातेदारों की ओर नहीं देखते हैं, बल्कि अन्य नियमित अवसरों पर भी उनकी सहायता लेते हैं। परिवार के बाद महत्वपूर्ण नातेदार समूह हैंः वंश और गोत्र वंश एक रक्तमूलक एक पक्षीय वंशानुक्रम समूह (consanguineous unilateral descent group) है जिसके सदस्य अपने को एक ज्ञात तथा वास्तविक सामान्य पूर्वज से सम्बद्ध मानते हैं। यह वंशानुक्रम समूह पितृवंशीय या मातृवंशीय हो सकता है।

विभिन्न परिक्षेत्रों में नातेदारी व्यवस्था

Features of Kinship in Different Zones

उत्तर परिक्षेत्र (Northern Zone)

नातेदारी की विशेषताएँ दक्षिण भारत में व्यवस्था के सामाजिक सांस्कृतिक तत्व उत्तर तथा मध्य भारत से भिन्न होती हैं। नातेदारी (co-relates) हैं– भाषा, जाति (मैदानी और पहाड़ी) व्यवस्थात्र (region) नातेदारी सम्बन्धों पर इन तीनों तत्वों के प्रभाव के बावजूद कुछ सामूहिक आधारों पर नातेदारी संगठन पर बात करना सम्भव है, जैसे जाति एवं परिवशाय आम्ररि पर। यद्यपि उत्तरी परिक्षेत्र में नातेदारी व्यवहार क्षेत्र में और एक ही क्षेत्र में जाति से जाति में भिन्न है, फिर भी तुलनात्मक अध्ययन दर्शाता है कि एक 'आदर्श' उत्तरी संरूप पर बात करना सम्भव है, विशेष रूप से अधिकत्तर जातियों के बीच–अधिकत्तर सामान्य रूप से जाने वाली अभिवृत्तियों तथा प्रथाओं के सन्दर्भ में ।

उत्तर परिक्षेत्र (zone) के नातेदारी संगठन के सन्दर्भ में इरावती कर्वे (1953 : 115) ने कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं बतायी हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं– (1) अहं (ego) से कनिष्ट नातेदार उनके व्यक्तिगत नाम से सम्बोधित किए जाते हैं जब कि वरिष्ठ व्यक्ति नातेदारी शब्दों से। (2) ऊपरी व निचली (ascending and descending) पीढ़ियों के सभी बच्चे अपने सहोदर समूह भाई बहिन (sibling group) बराबर माने जाते हैं और हैं। सहोदर समूह के सभी बच्चे स्वयं के बच्चों के बराबर माने जाते हैं। (3) पीढ़ियों की एकता का सिद्धान्त माना जाता है (उदाहरणार्थ, पर बाबा, और बाबा को वही सम्मान दिया जाता है जो पिता को। (4) एक ही पीढ़ी में वृद्ध और युवा नातेदार पृथक माने जाते हैं। (5) तीन पीढ़ियों के सदस्यों के व्यवहार संरूप और र्कतव्य कठोरता से पालन किए जाते हैं। (6) संस्कृत मूल के कुछ प्राचीन नातेदारी शब्दों के स्थान पर नये शब्द प्रयोग किए जाने लगे हैंय उदाहरणार्थ पितामह के स्थान पर पिता, श्वक्ताश से बड़े के लिए 'जी' उपसर्ग लगाया जाता है (जैसे चाचा जी, ताऊ जी)। बंगाल में श्जीश के स्थान पर श्मोशायश उपसर्ग लगाया जाता है। (7) निकट नातेदारों के बीच विवाह की अनुमति नहीं है। (8) विवाह के बाद लड़की को अपने सास– श्वसुर से (बातचीत में) आजादी (free) नहीं रहती, बल्कि जब वह माँ बन जाती है तब वह सम्मान व शक्ति का पद प्राप्त कर लेती है और तब उस पर लगे प्रतिबन्ध कम हो जाते हैं। (9) परिवार इसी प्रकार संरचित होता है कि बच्चे, माता– पिता, दादा–दादी या तो आथ रहते हैं या उनके प्रति नातेदारी दायित्व पूरे किए जाते हैं। (10) उस संयुक्त परिवार के अतिरिक्त, जो व्यक्ति के लिए निकट सम्बन्धों का जाति का प्रतिनिधित्व करता है, भी मध्य भारत के नातेदारी संगठन की विशेषताएँ उत्तर भारत से अधिक भिन्न नहीं हैं। मध्य भारत में नातेदारी की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं– (1) प्रत्येक क्षेत्र में विवाह प्रथाएं उत्तर के समान ही मानी जाती हैं, अर्थात् समरत्कता (consanguinity) मुख्य विचार है जो विवाह में लागू रहता है। (2) अनेक जातियाँ बहिर्विवाही कुलों (बसंदे) में विभाजित होती हैं। कुछ जातियों में बहिर्विवाही कुल प्रतिलोम विवाही श्रेष्ठक्रम (hypergamous hierarchy) में व्यवस्थित होते हैं। (3) नातेदारी शब्दावली विभिन्न नातेदारों के बीच घनिष्टता और निकटता दर्शाती है। नातेदारों के बीच सम्बन्ध न्योता उपहारश रीति से संचालित होते हैं जिसके अनुसार प्राप्त नकद भेंट के बदले में बराबर की नकद भेंट दी जाती है। न्योता पंजी (register) बनाई जाती है और यह पीढ़ियों तक सुरक्षित रखी जाती है। (4) गुजरात में, ममेरा प्रकार का सहोदरज विवाह (माँ के भाई से) और देवर विवाह (पति के भाई से विवाह) कुछ जातियों मे प्रचलित है। (5) गुजरात में नियतकालिक (periodic) विवाह के रिवाज में बाल विवाह और असमान विवाह को प्रोत्साहन दिया है। ऐसे विवाहों का प्रचलन वहाँ आज भी है। (6) महाराष्ट्र में नातेदारी सम्बन्धों पर उत्तरी व दक्षिणी दोनों परिक्षेत्रों का प्रभाव है। उदाहरणार्थ, मराठों का कुल (clan) संगठन राजपूतों की तरह का है जो सीढ़ी के रूप में व्यवस्थित होते हैं। कुलों को विभागों (divisions) में संगठित किया जाता है और प्रत्येक भाग को इसमें सम्मिलित कुलों की संख्या के अनुसार नाम दिया जाता

हैय उदाहरणार्थ– पंच कुली, सत कुली, आदि। कुल अनुलोम क्रम में व्यवस्थित होते हैं– सबसे ऊँचा पंच कुली, फिर हैं, सतकुली, आदि। पंचकुली आपस में विवाह कर सकते हैं या सतकुली कन्या ले सकते लेकिन अपनी पुत्री को पंचकुली से बाहर नहीं देते। (7) मध्य परिक्षेत्र में कुछ जातियों में जैसे पायी पिता मराठा और कुन्बीस (Kunbis) में, वधु मूल्य का प्रचलन है यद्यपि दहेज प्रथा भी उनमें जाती है। (8) यद्यपि महाराष्ट्र में परिवार व्यवस्था पितृवंशीय और पतिस्थानिक चंजतपसवबंस) है लेकिन उत्तर भारत में विपरीत जहां पत्नी गौने के बाद अपने पति के साथ (स्थाई रूप से रहती है और यदाकदा ही अपने पिता के घर जाती है, मराठा जाति में वह अपने के घर बार बार जाती है। एक बार वह अपने पिता के घर चली जाये तो उसे पति के घर लाना कठिन होता है। यह नातेदारों पर दक्षिण का प्रभाव दर्शाता है (9) यद्यपि नातेदारी के शब्द अधिकतर उत्तर के समान ही हैं लेकिन कुछ शब्द दक्षिण के द्रविड़ मूल के भी है– उदाहरणार्थ, भाई के लिए 'अन्ना' या 'नाना' और साथ ही 'दादा' का भी प्रयोग होता है।

इसी प्रकार बहिन के लिए 'अक्का' 'ताई' और 'माईश। (10) राजस्थान और मध्य प्रदेश में आदिवासियों में नातेदारी व्यवस्था जातिवादी हिन्दुओं से कुछ भिन्न है। यह अन्तर नातेदारी शब्दावली, विवाह नियमों, उत्तराधिकार व्यवस्था, और कुल के दायित्वों में देखने को मिलता दक्षिण परिक्षेत्र एक जटिल नातेदारी व्यवस्था का संरूप प्रस्तुत करता है। यद्यपि अधिकत जातियों और समुदायों में परिवार के रूप मुख्यतः पितृवंशीय और पतिस्थानिक हैं (जैसे नम्बूदरी), परन्तु जनसंख्या के ऐसे भाग भी हैं जो मातृवंशीय और पत्नीस्थानिक हैं (जैसे, नायर)। काफी संख्या में ऐसे भी हैं जिसकी व्यवस्था में पितृवंशीय व मातृवंशीय दोनों संगठनों की विशेषताएँ मौजूद हैं (जैसे टोडा)। इसी प्रकार ऐसी जातियाँ/और जनजातियाँ भी हैं जिनमें केवल बहुपत्नी प्रथा ही है (जैसे असारी, नायर), तथापि ऐसे भी हैं जिनमें बहुपली प्रथा और बहुपति प्रथा दोनों प्रचलित हैं (जैसे टोडा)। फिर, बहुपति प्रधान पितृवंशीय समूह भी हैं (जैसे असारी) और बहुपति प्रधान मातृवंशीय समूह भी है (जैसे तियान, नायर), और बहुपत्नी प्रधान पितृवंशीय समूह भी है (जैसे नम्बूदरी) लेकिन बहुपत्नी प्रधान मातृवंशीय समूह नहीं है। इसी प्रकार पितृवंशीय संयुक्त परिवार और मातृवंशीय संयुक्त परिवार भी हैं। यह सब दक्षिण परिक्षेत्र में नातेदारी संगठन की विविधता को दर्शाता है। यहाँ हम कुछ संगठनों/संरूपों पर चर्चा करेंगे।

मातृवंशीय परिवार में स्त्रियों में एक दूसरे से नातेदारी सम्बन्ध पुत्री, माता, बहिन, माँ, माँ की बहिन और बहिन की पुत्री के हैं। पुरुषों के साथ स्त्रियों के नातेदारी सम्बन्धों में पुरुष स्त्रियों के साथ भाई, पुत्र, पुत्री का पुत्र, और बहिन का पुत्र रूप में सम्बन्धित होते हैं। पुरुषों का एक दूसरे के साथ नातेदारी सम्बन्ध भाई, माँ का भाई और बहिन का पुत्र का होता है। ये सभी नातेदारी सम्बन्ध रक्तमूलक आधार के हैं। इनमें से विवाह से कोई सम्बन्ध नहीं बने हैं। ऐसा इसलिए कि पति परिवार में कभी कभी आता है। अतः हम देखते हैं कि– (i) पति और पत्नी के बीच साथी की भावना का अभाव है और पिता तथा बच्चों के बीच निकटता का अभाव है, और (ii) जहाँ तक पति की आय से जीवन यापन का सम्बन्ध है, स्त्रियाँ दिखावे के अपने से नफरत अच्छी हैं– पूर्णरूपेण स्वतंत्र हैं। इस प्रकार से कुछ दक्षिणी परिवार उत्तरी परिवारों से भिन्न हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारत में नातेदारी संगठन जाति और भाषा से प्रभावित है। प्रस्थिति तथा जीवनयापन के लिए कठिन स्पर्धा के आज के युग में, एक व्यक्ति का परिवार और उसके परिवार उसके सहायक के रूप में अवश्य होने चाहिए। जाति एवं भाषाई समूह समय–समय पर व्यक्ति की सहायता कर सकते हैं, लेकिन उसके कट्टर समर्थक, विश्वसनीय एवं वफादार लोग केवल उसके परिवार ही

हो सकते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति को न केवल अपने नातेदारों से सम्बन्ध मजबूत रखने चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. कुलश्रेष्ठ संदीप,(2020),'भारत इलेक्ट्रॉनिक और न्यू मीडिया',प्रतिभा प्रतिष्ठान, न्यू दिल्ली।
2. अग्रवाल, जी.सी.,कुलश्रेष्ठ एस.पी.,(2017–18),'शैक्षिक तकनीकी एवं सूचना सम्प्रेषण तकनीकी'', अग्रवाल प्रकाशन।
3. चौरसिया, सोनम,(2019), 'इंटरनेट का किशोर छात्र–छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन', स्वीकृत शोध प्रस्ताव, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर।
4. यादव पूरण मल भट्ट दिनेश चन्द्र 2010 वैश्वीकरण एक समाजशास्त्रीय–अवधारणा, आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर पृ. संख्या 4, 25
5. राजकुमार, 2004, "नारी के बदलते आयाम", अर्जुन पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, पृ. संख्या 25, 69
6. धनागरे, डी.एन. "ग्लोबलाइजेशनः टुवर्डस एन आल्टरनेटिव न्यू सोशियोजिकल बुलेटिन 52 (1)" पृ. संख्या 28

ग्रामीण जीवन एवं संचार माध्यम : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

नेहा चौरसिया
शोध छात्रा
लाल बहादुर शास्त्री पीजी कॉलेज मुगलसराय चंदौली
ईमेल–careerofneha@gmail.com
मोबाइल नंबर–8303130032

शोध सार
संचार साधनों में सुधार और उन्नति से, ग्रामीण क्षेत्रों में सामरिक, आर्थिक, और सामाजिक रूप से सुदृढ़ता का विकास होता है। इससे लोगों का जीवन स्तर और उद्यमिता में सुधार होता है और ग्रामीण क्षेत्रों का समृद्धिशील विकास होता है। संचार साधनों के माध्यम से सामाजिक जागरूकता को बढ़ाना ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत शोध पत्र में ग्रामीण सामाजिक जीवन में जनसंचार माध्यमों की भूमिका का सूक्ष्म अध्ययन किया गया है।

मुख्य शब्द : ग्रामीण जीवन, परिवर्तन ,संचार माध्यम, जागरूकता।

उद्देश्य

- जनसंचार के माध्यमों एवं उसके प्रयोग के प्रति ग्रामीण समाज में रहने वालों की सामान्य अभिवृत्ति का अध्ययन।
- जनसंचार के माध्यमों के कारण ग्रामीण सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवर्तनों का विश्लेषण करना।
- संचार माध्यमों के प्रयोग द्वारा बदलती जीवन शैली एवं खानपान

पद्धतिशास्त्री परिप्रेक्ष्य
प्रस्तुत प्रपत्र में द्वितीयक स्रोतों के विषय वस्तु विश्लेषण द्वारा संबंधित विषय के निष्कर्ष पर पहुंचने का प्रयास किया गया है। द्वितीयक तत्वों के संकलन के लिए ऑनलाइन सामग्री, किताबें ,शोध पत्रों का उपयोग किया गया है।

प्रस्तावना
लोकसम्पर्क या जनसम्पर्क या जनसंचार से तात्पर्य उन सभी साधनों के अध्ययन एवं विश्लेषण से है जो एक साथ बहुत बड़ी जनसंख्या के साथ संचार सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक होते हैं। प्रायः इसका अर्थ सम्मिलित रूप से समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, रेडियो, दूरदर्शन, चलचित्र से लिया जाता है जो समाचार एवं विज्ञापन दोनो के प्रसारण के लिये प्रयुक्त होते हैं।
ग्रामीण विकास के संदर्भ में, संचार को उस प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके द्वारा एक विचार या नवाचार या प्रौद्योगिकी को स्रोत से एक या अधिक प्राप्तकर्ताओं तक प्रेषित किया जाता है, जिसका उद्देश्य प्राप्तकर्ताओं के व्यवहार में परिवर्तन लाना होता है ।

ग्रामीण विकास एवं संचार माध्यम
भारत गांवों का देश है।इसकी एक तिहाई से अधिक राष्ट्रीय आय कृषि एवं संबद्ध गतिविधियों से प्राप्त होती है। दो तिहाई अब से अधिक आबादी को रोजगार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इन्हीं से प्राप्त होता है। संक्षेप

में गांव हमारे अर्थव्यवस्था की धुरी है। यह हमारे देश की रीड की हड्डी है ,भारतीय संस्कृति भी इन्हीं गांवों पर आधारित है। गांव हमारी संस्कृति एवं परंपराओं की भंडार है। हमारे नृत्य ,संगीत में गांव की मिट्टी की खुशबू आती है ।स्वतंत्रता के बाद गांव के विकास के अनेक कार्यक्रम तैयार किए गए, बड़ी–बड़ी योजनाएं बनाई गई। मीडिया एवं समाज, समाचार पत्र एवं जनसंचार के अन्य माध्यमों को उनके प्रचार प्रसार का दायित्व सौंपा गया। पहली पंचवर्षीय योजना में मीडिया जनता में जागरूकता लाने , योजना और उसके उद्देश्य के बारे में जानकारी देने, लक्ष्य और उसके फायदे के बारे में बताने की जिम्मेदारी सौंप गयी।दूसरी पंचवर्षीय योजना में मीडिया को और अधिक सक्रिय करने का लक्ष्य रखा गया ,लोगों को उनकी भाषा में घर–घर तक योजना का संदेश पहुंचाने के साथ–साथ इन लक्षण को उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप डालने के कार्यक्रम तैयार किए गए । तीसरी पंचवर्षीय योजना में विकास के कार्यक्रम में लोगों को शामिल करने उनका कारगर सहयोग प्राप्त करने का उद्देश्य रखा गया।लोगों को विकास के चरणों की जानकारी देने ,योजनाओं का संदेश घर–घर तक पहचाने का लक्ष्य ,योजनाओं का अभिन्न अंग है। हाल के क्षेत्र में संचार के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई है

विकास और परिवर्तन ने संचार क्रांति को नए आयाम दिए हैं संचार की नई तकनीक के साथ–साथ इसमें जान शब्द का अर्थ बढ़ता जा रहा है और इसमें अधिक से अधिक लोग जुड़ते चले गए हैं।किसी बात को आगे बढ़ाना या फैलाना ही संचार है ।संचार का उद्देश्य है जानकारी एवं विचारों को अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचाना जिससे वे इसका लाभ ले सके।

संचार माध्यमों की आवश्यकता

ग्रामीण समाज में संचार की आवश्यकता भारत जैसे देश में जो आकार की दृष्टि से महाद्वीपीय है । जहां पर 74 जनसंख्या कृषि पर निर्भर है । यहाँ विविध प्रकार के भाषाएं बोली जाती हैं।संचार के साधन के रूप में यहां रेडियो ,सिनेमा का बड़ा महत्व है एवं समाचार पत्र एवं पत्रिकाएं भी सर्वसाधारण को शिक्षा सूचना उपलब्ध कराने का शक्तिशाली माध्यम है।

आईआईटी से विकास प्रक्रिया को गति मिलती है लेकिन डिजिटल डिवाइड के कारण इसका लाभ शहरों तक सीमित है।ग्रामीण इलाके अभी भी इससे वंचित है अतः सूचना का एकत्रीकरण ,वितरण करने में एक विशेष दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। ग्रामीण की बात सुनना एवं उन्हें समझना आवश्यक है।वे स्थानीय समस्याओं को बेहतर समझते हैं। उनके पारंपरिक ज्ञान में नए वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न किया जा सकता है। मसलन वेबसाइट, रेडियो, टेलीविजन के माध्यम से उन्हें कीटनाशकों से सावधान किया जा सकता है। भारत ने आईटी सेक्टर में काफी वृद्धि की है अब समय आ गया की इसका विस्तार ग्रामीण क्षेत्रों को तक किया जाए। संचार तकनीक ग्रामीण विकास को सहयोगी बना सकती हैं।

संचार माध्यम के रूप में अपनी प्रकृति के कारण, ग्रामीण विकास के लिए संचार ग्रामीण आबादी के सभी वर्गों के लिए उपयोगी जानकारी प्रदान कर सकता है। हालाँकि, यह ष्ग्रामीण विस्तारष् सेवाओं और कृषि से परे ग्रामीण विकास संबंधी चिंताओं के उद्देश्य से गतिविधियों को आगे बढ़ाने की दिशा में पहला प्रयास करना होगा।

गांव में संचार माध्यमों का प्रसार

- **ई कृषि** – भारत में आज भी कृषि जलवायु और मौसम पर निर्भर है यहां ज्यादा से ज्यादा किस टीवी मोबाइल और रेडियो पर मौसम संबंधी जानकारी देखते सुनते हो समझते हैं उसके अनुसार ही अपनी फसल की योजना तैयार करते हैं ।
- **टेलीविजन और ग्रामीण क्षेत्र** – टेलीविजन एक ऐसा माध्यम है जो साक्षर और निरक्षर हर किसी को प्रभावित करता है। टेलीविजन के माध्यम से आज ग्रामीण जनता अपने अधिकारों के प्रति जागरूक

हुई है । टीवी के कारण गांव के लोगों का पहनावा तो बदला है साथ ही साथ सोच में भी परिवर्तन हुआ है।

- **इंटरनेट और ग्रामीण विपणन –** इंटरनेट के कारण ही ग्रामीण को आज अनाज के कुल उत्पादन ,बाजार मूल्य और बाजार मांग का पता चलता है। प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के कारण कृषि विपणन और बेहतर हुआ है ।इंटरनेट के कारण ही लोग शाखा विहीन बैंकों के माध्यम से ग्रामीण बैंक लेनदेन करने में समक्ष हुए हैं।
- **एम बैंकिंग** –आज गांव में कुछ युवाओं द्वारा एम बैंकिंग, ई रिजर्वेशन, ए–शॉपिंग इत्यादि सुविधाओं का उपयोग कर समय की बचत की जा रही है।

ग्रामीण जीवन के विविध पक्ष एवंम संचार माध्यम

1–सामाजिक पक्ष

आधुनिक संचार माध्यम ग्रामीण जीवन शैली को बहुत प्रभावित किया है। ग्रामीण क्षेत्रों में परम्परागत रहन–सहन एवं आचार–विचार में क्रांतिकारी परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है। इस प्रकार संचार माध्यमों की भूमिका व्यक्ति के विकास एवं सामाजिक विकास के लिए महत्वपूर्ण हो गया है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि ''विकास के लिए संचार एक निवेश है।'' लेकिन वहीं पर टेलीविजन और मोबाइल, इंटरनेट का प्रसार निरंतर दिनों–दिन बढ़ रहा है, परन्तु उसका स्तर दिन–ब–दिन गिर रहा है। ज्यादातर व्यक्ति टेलीविजन और मोबाइल, इंटरनेट की चपेट में हैं वो घरों में कैद होकर रह गये हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि व्यक्तिगत रूप से अन्तःक्रिया कम हुयी है। जिससे हम की भावना में कमी आ रही है।

2–आर्थिक पक्ष

भारत में राष्ट्रीय विकास की अवधारणा वस्तुतः भारत के ग्रामीण विकास में सन्निहित है। यदि कहा जाए कि आर्थिक विकास की धुरी, कृषि का विकास है और कृषि के विकास में ही आर्थिक विकास छिपा हुआ है, तो अतिशयोक्ति न होगी। कृषि की दशा के सुधार हेतु संचार–साधनों का सम्यक् प्रयोग करके तकनीकी व प्रौद्योगिकी ज्ञान एवं सूचनाओं से ग्रामीण कृषकों को अवगत कराया जा सकता है तथा शासकीय व अशासकीय सहायता से भी लाभान्वित किया जा सकता है। सहज जन सेवा केन्द्र, इण्टरनेट, मोबाइल आदि से कृषकों की दशा में सुधार आ रहा है।

3– राजनैतिक पक्ष

संचार माध्यमों ने अपनी उपयोगिता के रूप में राजनीतिक गतिविधियों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इससे राजनीतिक जागरूकता को बढ़ावा मिलता है और लोगों में राजनीतिक गतिविधियों के प्रति संवेदनशीलता में वृद्धि होती है। चुनाव के पूर्व होने वाले जनमत संग्रह राजनैतिक संचार के लिए एक महत्वपूर्ण पहलू है। संचार माध्यमों से आम जनता की आवश्यकताओं उनकी इच्छाओं एवं उनकी सोच प्रकट होती है। इन सबसे राजनीतिज्ञों को अपनें कार्यकलापों के बारे में फीडबैक मिलता है। संचार माध्यमों के प्रसार से अध्ययन क्षेत्र में राजनीतिक शिक्षा का प्रसार हुआ है।

4–शैक्षिक पक्ष

जब रेडियो, टेलीविजन का आविष्कार हुआ तो संचार माध्यमों में नई क्रांति आयी। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन ने शहरी क्षेत्रों के अतिरिक्त सुदूर बीहड़ और ग्रामीण क्षेत्रों में भी अपनी लोकप्रियता कायम की। आम आदमी की मानसिकता बदलने में वह काफी हद तक सफल रहा। पढ़नें–लिखनें और सीखनें के अतिरिक्त व्यक्ति के दैनिक जीवन को प्रभावित करने वाले आयामों में भी इलेक्ट्रानिक मीडिया ने प्रभावित किया। कोरोना काल में इंटरनेट और संचार के साधनों का विकास ग्रामीण क्षेत्र के छात्रों के लिए वरदान सिद्ध हो रहा है।

विकास खण्ड जहाँगीरगंज, रामनगर, बसखारी में सर्वेक्षण और साक्षात्कार से ज्ञात हुआ है कि क्षेत्र के छात्र–छात्राओं में शैक्षिक अभिरूचि में अभिवृद्धि हुयी है।

5–धार्मिक पक्ष

जन संचार के विविध साधन आज के युग में राष्ट्रधर्म के विकास के साथ–साथ अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के आदर्श को प्रस्तुत कर रहे हैं। विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा शांति और सद्भावना, भाई–चारे का संदेश प्रेषित करने में सहायक होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में रूढ़िवादिता और अंधविश्वास में तेजी से कमी आ रही है। संचार माध्यमों के कारण रूढ़िवादी एवं अप्रासंगिक तथ्यों से निजात पाने की प्रवृत्ति का संचार हो रहा है। क्षेत्र में वैज्ञानिक सोच और तर्क वितर्क करने की प्रक्रिया का विकास हुआ है।

6– अपराध एवं जनसंचार

संचार माध्यम समाज का दर्पण है। समाज में पल–पल घट रही घटनाओं का विश्लेषण आम लोगों तक पहुँचाने का कार्य करता है। ये समाज में जहाँ अनेक प्रकार की गतिविधियों का निवारण तथा ज्ञानपरक तथ्य प्रस्तुत करते हैं वहीं इससे सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि होती है। वहीं दूसरी ओर समाज में घट रही विसंगतियों एवं आपराधिक घटनाओं का प्रस्तुतीकरण भी इसी गति से हो रहा है। इन्हीं के फलस्वरूप जहाँ समाज में अनेकानेक सकारात्मक पहलुओं का प्रभाव रहता है वहीं नकारात्मक रूप में भी संचार माध्यम समाज पर प्रभाव डालते हैं। जैसे–जैसे इण्टरनेट पर निर्भरता बढ़ रही है, नये तरह के अपराधों को अंजाम देने का रास्ता खुल गया है। संचार माध्यमों से लोकसंस्कृति और परमंपराओं पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है।

7–खान–पान में जागरूकता एवं जनसंचार

संचार माध्यमों के विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से और खान–पान के संबंध में विभिन्न विज्ञापन और जागरुकता कार्यक्रमों के कारण अध्ययन क्षेत्र में पोषण के संबंध में सजगता का संचार हुआ है। जिसका प्रभाव ग्रामीणों के खान–पान की दिनचार्य पर पड़ रहा है। स्वच्छता संबंधी संदेश लोगों तक आसानी से पहुँच रहा है, जिससे बिमारियों में कमी आयी है और लोगों की जीवन प्रत्याशा बढ़ी है।

8– ग्रामीणों का शहरों की तरफ पलायन एवं जनसंचारः–

जनसंचार माध्यमों द्वारा ग्रामीणों की विभिन्न शासकीय योजनाओं जैसे–मनरेगा, एस.जी.एस.वाई आदि के प्रति जागरुक होने पर इन कार्यक्रमों में भागीदारी बढ़ी है जिसके परिणाम स्वरूप ग्रामीणों का शहरों की तरफ पलायन में कमी आयी है। सहज जन सेवा केन्द्र, ऑनलाइन शिक्षा के प्लेटफार्मों ने युवा पीढ़ी को गाँव में ही रोजगार का सृजन किया है।

निष्कर्ष –

संचार माध्यम क्षेत्र के लिए अभिशाप न होकर वरदान सिद्ध हो रहा है। जो ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन का मुख्य कारण बन रहा है। इस तरह यह परिवर्तन बहुत सारे पुराने स्वभाव, विश्वास, विचारधारा एवं मूल्यों के रूपांतरण से जुड़ा हुआ है साथ ही कुछ नए विचारधाराओं एवं मूल्यों को विकसित करता है जो आधुनिक समय में जीने के लिए आवश्यक है। जनसंचार में हुए क्रांतिकारी परिवर्तन, राष्ट्र के अंदर विभिन्न समूहों में बँटे हुए समाज को, एक सामाजिक संगठन के मूल्य एवं आदर्श एक समान रूप में विकसित हो रहे हैं। इस तरह यह एक तरफ तो राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा दे रहा है तो दूसरी तरफ, सामाजिक परिवर्तन में अपना महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा हैं। गाँव के सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन के लिए गृह निर्माण, स्वास्थ्य, कृषि, रहन–सहन, विकास योजनायें, उद्योग में आधुनिक तकनीक का अनुकूलन आवश्यक है। जनसंचार माध्यम द्वारा गाँवों में आधुनिक तकनीक को उपयोग करने पर जोर दिया जा रहा है। और आज इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगा है।

संदर्भ सूची

- लता स्नेहा डॉक्टर,(2023),'सोशल मीडिया और ब्लॉग लेखन',श्री नटराज प्रकाशन नई दिल्ली ।
- कुलश्रेष्ठ संदीप,(2020),'भारत इलेक्ट्रॉनिक और न्यू मीडिया',प्रतिभा प्रतिष्ठान, न्यू दिल्ली।
- अग्रवाल, जी.सी.,कुलश्रेष्ठ एस.पी.,(2017–18),'शैक्षिक तकनीकी एवं सूचना सम्प्रेषण तकनीकी'', अग्रवाल प्रकाशन।
- चौरसिया, सोनम,(2019), 'इंटरनेट का किशोर छात्र–छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन', स्वीकृत शोध प्रस्ताव, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर।
- सिंह, अरूण कुमार,(2017),'मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ', मोतीलाल बनारसीदास।
- आनंद रचना,2013,'किशोरावस्था एवं युवा', अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।

The Importance of English Language and Literature in the Santhal Pargana Belt

Shree Pranav Raj
Assistant Professer, Department of English
Degree College Maheshpur, Pakur
S.K.M.University, Dumka

Abstract
Santhal Pargana province is one of the homes of a variety of indigenous communities, like the Santhal community, and their own way of culture, language, and tradition within the Indian state of Jharkhand. Bringing about immense changes socially and economically to this region were people who, through history, were marginalised by modernity, education, and connectivity. Within this, English language and literature have gained much importance to be used for empowerment, identity building, and exchange of culture. This article discusses how the role of English in education will shape future opportunities, the role of language in protecting and promoting local identity, and its socio-economic impact in the belt of Santhal Pargana.

Keywords
Santhal Pargana, Cultural Preservation, Language and Culture, Tribal Education, Literature, Indigenous Heritage, Tribal Struggles, Local Identity.

Introduction

The region of Santhal Pargana is a very culturally rich place that contributes a lot to the tribal identity of Jharkhand. Santhali is the language spoken by one of the biggest indigenous groups of India, belonging to the Austroasiatic family of languages. The region owns a strong cultural heritage, but lacks accessibility to quality education, economic opportunity and political power. Here, the language of English comes to be regarded as an avenue to fill up the gap in the community toward the nation's broader context and toward globalization.

Besides acting as a passport to further education, economic prospects, and social status, English also plays an important role in the Santhal Pargana belt. Beyond such material concerns, however, English assumes significance as a language whereby cultural exchange, negotiation of identity, and social activism are achieved. Understanding global ideas as well as advocating and supporting local knowledge and heritage with English literature is more of a very good tool.

The linguistic means of educational empowerment for Santhal

Pargana's populations revolve mainly around the mastering of the use of the English language. English forms the content or text found primarily in up-to date material regarding books and journal content with regard to a more online body of information for any educational knowledge a student at such an academic region can possess in comparison. The ability to read and write in English will allow young individuals to pursue higher education within India as well as outside, giving them a higher probability of employment in competitive sectors such as technology, medicine, engineering, and business. Further, with increasing

digital presence, English becomes an important skill in surfing the internet, accessing information, and participating in global platforms for communication.

Economic Opportunities

In the Santhal Pargana region, economic growth has been slow, but the role of English is transforming the landscape. The growing demand for English-speaking professionals, particularly in sectors such as information technology, customer service, and marketing, has created new job opportunities for the youth. Learning English opens doors to employment in industries that require fluency in the language, allowing people to earn better wages and access job security. Furthermore, businesses in the region can benefit from English proficiency, as it enables them to expand their reach beyond local markets, form international collaborations, and increase trade prospects.

Cultural Preservation and Expression

Interestingly, English also plays a role in preserving and expressing the region's unique cultural identity. While the Santhal people have their own rich language and traditions, English can be used as a medium to document their history, stories, and folklore for future generations. The literature of Santhal Pargana, though traditionally oral, can find a platform in English, making it accessible to a global audience. Translating local stories and songs into English preserves the essence of these cultural expressions while showcasing the depth and beauty of Santhal traditions to the world.

Social Integration

The rise of English has also contributed to social integration in the region. As English becomes a common language of instruction in schools, people from diverse linguistic backgrounds can communicate with each other, fostering greater harmony. The ability to speak English also aids in bridging the gap between the indigenous Santhal community and the wider Indian society, encouraging inclusivity in politics, governance, and social participation.

The Role of English in Education

English has now become a medium of teaching in higher education across India. Even in Santhal Pargana, with schools and colleges being historically lacking in educational provisions, the prospects have opened their doors to study in English in national and international discourses.

This, in turn, opens up access to university education both within India and abroad for the students from the region. It also makes the students employable, since many government jobs, corporate positions, and development sector roles require a good command of the English language. A lack of command over the English language has always been a stumbling block for the indigenous communities, but the increased focus on the teaching of English is slowly closing the gap.

The improvement of English literacy through local schools and initiatives helps the children from the Santhal community break the cycle of poverty. Learning English will not only give them access to academic and professional opportunities but also equip them with the skills needed to be actively involved in civic and political life, thereby contributing to the empowerment process.

Cultural Preservation and Expression

In that sense, a focus on the English language and literature may well be assumed to destroy indigenous cultures, but that has often proved to be opposite. English has been a platform for the Santhal community to record their folklore, history, and oral traditions, which otherwise stand at the risk of being lost. For example, translating Santhali literature into English has preserved rich traditions and brought them to the attention of a larger audience.

Santhal writers and poets, like many other indigenous writers, are using English as a medium to express their social, political, and cultural struggles. By engaging with English literature, they are able to bridge the gap between their indigenous identity and the broader global literary world. This engagement with English also makes them strong writers themselves while promoting their culture in an international arena. In a sense, it voices the sufferings and hopes of the Santhals.

This in return thus hinged upon the development of English language education and directly holds a significant relationship with the social and economic development of the Santhal Pargana region. Many villages of the region have opened up to industries, governmental schemes, and big corporate investments. In this respect, English is necessary for the locals to negotiate with governmental and non-governmental organizations and articulate their needs while taking advantage of these opportunities.

It has also thrown open the doors of digital technology and the Internet, which can become a great instrument for economic and social progress of the underprivileged. Entrepreneurs and workers in the Santhal Pargana belt are increasingly using English language platforms to expand their markets, acquire business know-how, and communicate with prospective partners or clients. This new form of digital connectivity is helping form a new regional economic landscape-a more inclusive one and a very globalized economy.

Challenges and Opportunities

Although the introduction of English education in Santhal Pargana belt has many advantages still it faced several challenges. The biggest challenge is the scarcity of good English teachers, especially in rural areas. The gap in English proficiency between urban and rural students is growing, and the Santhal community, often at the bottom of the socio-economic ladder, is most affected.

Secondly, the erosion of Santhali language and culture is at stake. An education in the English language has more to it; still, this can't mean that one should undermine the languages of the indigenous and the cultural practices either, therefore, language revitalization has to go along with the promotion of education in the English language in that way students enjoy their identity in their indigenous languages as they enjoy going around the world.

Conclusion

The importance of English language and literature in the Santhal Pargana belt cannot be exaggerated. Although problems are there, particularly related to infrastructural facilities and training of teachers, the advantages of English education to the region are enormous. This would mean better education, increased socio-economic opportunities, easier communication on a

global scale, and preserving the unique cultural heritage of the Santhal people on the world platform. The future of Santhal Pargana lies in the harnessing of the power of English by promoting and protecting the cultural riches of its people.

The centrality of English in education, culture, and socio-economic development will help Santhal Pargana become more equal and better connected, hence helping indigenous peoples to thrive not only in the local but also in the global context.

References

1. Bhagat, R. B. (2019). English in the Tribes: Language, Identity, and Education in the Santhal Pargana Region. Jharkhand Educational Review.
2. Singh, A. K., & Das, S. (2020). Empowering Rural Communities through English Literacy: A Study of Santhal Pargana. Tribal Education Journal, 4(2), 54-67.
3. Kumar, P. (2018). Cultural Preservation and Modernity: The Role of English in Tribal India. Journal of South Asian Linguistics and Literature, 5(3), 89-101.

कानों में कंगना कहानी में धार्मिक चित्रण

अमित सोरेंग
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
डिग्री कॉलेज महेशपुर,पाकुड़
सिदो कानू मुर्मू विश्वविद्यालय, दुमका, झारखण्ड।

सारांश

कानों में कंगना केवल एक लोक अभिव्यक्ति है, उनसे कुछ अधिक भी है, यह कारक है भारतीय महिलाओं की पारंपरिक साज–सज्जा और सांस्कृतिक पहचान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा। यह कहावत आभूषणों के प्रति समाज के उसी आकर्षण को व्यक्त करती है और जाकर इशारा करती है कि कैसे आभूषण स्त्री की सामाजिक स्थिति, परंपरा एवं सांस्कृतिक धरोहर के प्रतीक होते हैं। यह शोध पत्र भारतीय समाज में आभूषणों, विशेषकर कानों के आभूषणों के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक महत्व का गहराई से विश्लेषण करता है। अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य यह जानना है कि आभूषण सौंदर्य प्रसाधन तक ही सीमित नहीं, बल्कि वे सांस्कृतिक प्रतीकों, धार्मिक आस्थाओं और सामाजिक मान्यताओं के साथ गहराई से जुड़े हुए हैं। शोध में यह भी देखा गया है कि कैसे विभिन्न समय और स्थानों पर कानों के आभूषणों का रूप, उपयोग और महत्व बदलता रहा है। इतिहास की दृष्टि से देखें तो कानों में आभूषण पहनने की परंपरा प्राचीन भारतीय ग्रंथों, मंदिरों की मूर्तियों और शाही चित्रों पर देखा जा सकता है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक महिलाओं और पुरुषों द्वारा कानों में आभूषण पहनने की परंपरा विद्यमान रही है। आयुर्वेद एवं पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों में भी कानों में आभूषण पहनने को स्वास्थ्य से जोड़ा गया है। इस विवेचन में इतिहासकालीन स्रोतों का सहारा लेते हुए यह प्रदर्शित किया गया है कि कैसे कानों के आभूषण समाज के विभिन्न वर्गों में पहचान और प्रतिष्ठा का संकेत बने रहे हैं।

इसके अतिरिक्त, सामाजिक दृष्टिकोण से देखें तो आभूषणों का संबंध न केवल व्यक्तिगत सौंदर्य से होता है, बल्कि वे जाति, वर्ग, क्षेत्रीयता, और धार्मिक आस्थाओं का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। भारतीय समाज में विवाहित महिलाओं के लिए आभूषण विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण रहे हैं, जहां कानों के झुमके, कर्णफूल, बाली, या कुंडल न केवल सौंदर्य को बढ़ाते हैं, बल्कि विवाह, समृद्धि, और सामाजिक स्थिति के भी प्रतीक होते हैं। समाज में आभूषणों को स्त्री की पारिवारिक और आर्थिक स्थिति से जोड़कर देखा जाता है, जो पितृसत्तात्मक संरचना को भी दर्शाता है। हालांकि, वैश्वीकरण और आधुनिकता के प्रभाव में पारंपरिक आभूषणों का स्वरूप और उनके प्रति दृष्टिकोण में भी परिवर्तन देखा गया है। इन दिनों कानों के आभूषण सांस्कृतिक धरोहर तक ही सीमित नहीं, जैसे पहले था, बल्कि फैशन और व्यक्तिगत अभिव्यक्ति के एक माध्यम के रूप में देखे जाते हैं। युवा पीढ़ी के लोगों में पारंपरिक आभूषणों की तुलना में आधुनिक डिजाइनों की ओर बढ़ती रुझान है, किंतु साथ ही कुछ लोगों द्वारा पारंपरिक शैली को फिर से अपनाने की प्रवृत्ति भी देखी जा रही है। शोध के निष्कर्षों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कानों में कंगना केवल एक लोक कहावत नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति, परंपरा और सामाजिक संरचना की एक महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति है। यह न केवल सौंदर्य और स्त्रीत्व का प्रतीक है, बल्कि सामाजिक पहचान और सांस्कृतिक निरंतरता का भी

परिचायक है। आधुनिक संदर्भों में भी यह कहावत प्रासंगिक बनी हुई है, जो यह दर्शाती है कि भारतीय समाज में परंपराएं किस प्रकार समय के साथ समायोजित होती हैं, लेकिन पूरी तरह लुप्त नहीं होतीं।

मुख्य शब्दः आभूषण, सांस्कृतिक प्रतीक, सामाजिक विश्लेषण, परंपरा, आधुनिकता, सामाजिक संरचना, भारतीय समाज, कानों में कंगना।

प्रस्तावना

भारतीय समाज में आभूषणों का विशेष स्थान रहा है। यह केवल सौंदर्य बढ़ाने का साधन नहीं है, बल्कि सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक प्रतीकों के रूप में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कानों में कंगना जैसी लोक अभिव्यक्तियाँ न केवल नारी सौंदर्य को दर्शाती हैं, बल्कि वे भारतीय परंपराओं, रीति–रिवाजों और सांस्कृतिक धरोहर का भी प्रतिनिधित्व करती हैं (शर्मा, 1980)। हिंदी साहित्य में यह कहावत स्त्री–सौंदर्य और सामाजिक मान्यताओं का प्रतिबिंब रही है, जो साहित्यिक अभिव्यक्तियों के माध्यम से गहराई से जुड़ी हुई है (सिंह, 1998)।

यह शोध पत्र हिंदी साहित्य में कानों में कंगना की अवधारणा को साहित्यिक, सांस्कृतिक और सौंदर्यबोधात्मक दृष्टि से समझने का प्रयास करेगा। इसमें यह विश्लेषण किया जाएगा कि विभिन्न साहित्यिक कृतियों में आभूषणों का वर्णन किस प्रकार हुआ है और वे नारी अस्मिता, समाज और सांस्कृतिक मूल्यों से कैसे जुड़े हैं (वर्मा, 1972)। हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं, काव्य, कथा और लोक साहित्य में आभूषणों का महत्व अलग–अलग रूपों में उभर कर सामने आता है, जो इस अध्ययन को और अधिक सारगर्भित बनाता है (चतुर्वेदी, 2005)।

1.1 आभूषणों का सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

भारतीय आभूषण न केवल सुंदरता के लिए माना जाता है बल्कि इसे सामाजिक वर्ग, धर्म और संस्कृति का प्रतीक भी माना जाता है। वेद साहित्य, महाकाव्य, पुराण और प्राचीन लेखों में उस समय उपलब्ध विभिन्न प्रकार के आभूषणों का उल्लेख किया गया है। कान के गहनों जैसे बालियों का उपयोग ऋग्वेद और अथर्ववेद में सकारात्मक ऊर्जा के प्रतीकों के रूप में किया जाता था (शर्मा, 2008)।

महाभारत और रामायण के पात्रों के पास आभूषण थे और महाभारत और रामायण इसे उनके शक्ति और पदक्रम का प्रतिनिधित्व करने के रूप में वर्णित करते हैं। जब द्रौपदी को सभा में वस्त्रहीन किया जाता है तो महाभारत में उसका आभूषण का उल्लेख किया गया है। इसी तरह, दक्षिण भारतीय मंदिर की मूर्तियों में महिलाओं और देवियों को बड़े कान के गहने और कंगन पहनने के रूप में दर्शाया गया है, जो इस प्रथा की प्राचीनता को दर्शाता है (मुखर्जी, 2015)।

1.2 "कानों में कंगना" वाक्य का प्रतीकात्मक अर्थ

"कानों में कंगना" एक वाक्य है जो हमारे लोक साहित्य और जनमानस की संस्कृति में गहरे पैठ रखता है। यह किसी आवश्यक बुनियादी सौंदर्य की श्रेणी में ही नहीं आता, अपितु इसके पीछे अनेकों सामाजिक और सांस्कृतिक विचारधाराएँ छिपी हुई हैं। भारतीय समाज में महिला के शादी के बाद गहनों का विशेष महत्व होता रहा है, और महिलाओं की एक विशेष श्रेणी को श्रंगार के सबसे विकराल रूप में सजाने के लिए सभी अंकित विवरणों की श्रृंखलानुमा कान के गहनों का उपयोग किया जाता है।

इन्हीं कारणों से सोने और चांदी के श्रंगी पत्तियों का गहनों के साथ जोड़ना अक्सर महिलाओं के धारण करने वाले पोर रत्न धारण करने के अभ्यस्त होने का सेवृत बंश होता है।

1.3 हिंदी साहित्य में आभूषणों का सांस्कृतिक संदर्भ

हिंदी साहित्य में आभूषणों का महत्व केवल सौंदर्य–वर्धन तक सीमित नहीं है, बल्कि वे सामाजिक संरचना, स्त्री चेतना, और सांस्कृतिक परंपराओं को भी अभिव्यक्त करते हैं। लोक साहित्य से लेकर आधुनिक साहित्य

तक, कानों के आभूषणों का उल्लेख सौंदर्य, स्त्रीत्व, समृद्धि और सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रतीक के रूप में मिलता है (वर्मा, 1972)। लोकगीतों में **कानों में कंगना** का उल्लेख विशेष रूप से मिलता है। उत्तर भारतीय लोकगीतों में विवाह, प्रेम और श्रृंगार से जुड़े गीतों में यह उक्ति विशेष स्थान रखती है। उदाहरण के लिए, बुंदेली और अवधी लोकगीतों में नवविवाहित स्त्रियों के कानों के आभूषणों का विशेष उल्लेख किया गया है, जो उनके नए वैवाहिक जीवन और सामाजिक प्रतिष्ठा को दर्शाता है (चौहान, 1952)। यह केवल नारी सौंदर्य को नहीं, बल्कि उसके जीवन में नए बदलावों को भी व्यक्त करता है (त्रिपाठी, 2010)।

भक्तिकालीन साहित्य में भी आभूषणों का विशेष उल्लेख मिलता है। कबीर और सूरदास जैसे संत कवियों की रचनाओं में आभूषणों का वर्णन सांसारिक मोह के प्रतीक के रूप में किया गया है, जबकि विद्यापति और केशवदास की रचनाओं में इन्हें नारी सौंदर्य और प्रेम के प्रतीक के रूप में देखा गया है (शर्मा, 1980)। यह भिन्न दृष्टिकोण हिंदी साहित्य में आभूषणों की बहुआयामी भूमिका को दर्शाता है (गुप्ता, 2015)।

शोध के उद्देश्य और महत्व

हिंदी साहित्य में साहित्यिक शोध का एक महत्वपूर्ण पहलू भारतीय प्रतीकों और उपमा का विश्लेषण है। **"कानों में कंगना"** एक 'संस्कृतिक प्रतीक' है जो न केवल सुंदरता के साथ जुड़ा हुआ है, बल्कि समाज में महिलाओं की स्थिति, उनकी पहचान, परंपराओं और सामाजिक संरचनाओं का भी प्रतिनिधित्व करता है। इस शोध का उद्देश्य "कानों में कंगना" के बारे में समाज की धारणा, "इसके प्रतीकात्मक महत्व", हिंदी साहित्य में इसकी उपस्थिति, और इसके सामाजिक प्रभावों का अध्ययन करना है।

शोध का उद्देश्य

1. संस्कृतिक और सामाजिक संदर्भ की व्याख्या –

इस शोध का मुख्य उद्देश्य **"कानों में कंगना"** वाक्यांश के पीछे के प्रतीकात्मक अर्थों की खोज करना है। इसमें भारतीय समाज में महिलाओं की पारंपरिक स्थिति को समझना शामिल होगा, जिसमें उन पर थोपी गई रूढ़ियाँ और सांस्कृतिक मूल्य शामिल हैं (शर्मा, 1980)।

2. हिंदी साहित्य में प्रतीक का उपयोग का अध्ययन –

"कानों में कंगना" के विभिन्न रूपों जैसे कविताओं, उपन्यास, लघु कथाओं और यहाँ तक कि नाटकों को केंद्रित करना और उनका विश्लेषण करना, और कई समय अवधियों में इसके बदलते अर्थों और संदर्भ का मूल्यांकन करना। (सिंह, 1998)

3. रिति काल से आधुनिक साहित्य की यात्रा –

यह शोध रिति साहित्य, छायावाद, प्रगतिवाद, और आधुनिक हिंदी साहित्य का तुलनात्मक तरीके से अध्ययन करेगा जिसमें 'कानों में कंगना' (महत्वपूर्ण सांस्कृतिक प्रतीक) के थीम शामिल होंगे। यह अध्ययन यह दर्शाएगा कि साहित्यिक परंपराओं में प्रतीकात्मकता का मिथक कैसे व्याख्यायित किया गया है।

अध्ययन के लक्ष्य और महत्व

इस अध्ययन का उद्देश्य कानों में कंगना जैसे सांस्कृतिक प्रतीक का सामाजिक अध्ययन करना है, जिसका सीधा अनुवाद है प्रत्येक कान में एक कंगन। यह शोध भारतीय समाज के वर्गों में कान के आभूषणों के महत्व को समझने का प्रयास करता है और उनके सामाजिक ढांचे और आधुनिकता के साथ intertwining को जानने का प्रयास करता है। इसके अतिरिक्त, इस शोध का उद्देश्य ऐतिहासिक और समकालीन संदर्भों में आभूषण के सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक प्रभावों का मूल्यांकन करना है।

इसके अलावा, अध्ययन का महत्व इस तथ्य में है कि यह जातीय पारंपरिक आभूषणों को केवल एक और फैशन बयाना के रूप में देखने की प्रवृत्ति को चुनौती देने का प्रयास करता है और उनके गहरे अंतर्निहित

सांस्कृतिक अर्थों को प्रकट करता है। यह अध्ययन आधुनिक शास्त्रीय सामाजिक सिद्धांतों के ढांचे के भीतर आभूषण के सामाजिक महत्व को भी सामने लाएगा।

कानों में कंगना और हिंदी काव्य परंपरा

रीतिकालीन हिंदी काव्य में नारी सौंदर्य का अत्यधिक श्रृंगारिक वर्णन किया गया है, जिसमें कानों के आभूषणों का उल्लेख प्रमुखता से मिलता है। केशवदास, बिहारी और घनानंद जैसे कवियों के काव्य में नायिका के कानों के आभूषण उसकी सुंदरता को और अधिक आकर्षक बनाते हैं (सिंह, 1998)।

बिहारी के दोहों में कानों के आभूषणों का वर्णन नायिका की सुंदरता बढ़ाने वाले तत्व के रूप में किया गया है:

नायक नायिका संग जब बैठें, कानों में झुमका लहराए।

यह झुमके न केवल सौंदर्य को दर्शाते हैं, बल्कि वे प्रेम और आकर्षण के भी प्रतीक बनते हैं (वर्मा, 1972)। वहीं, आधुनिक कवियों के काव्य में आभूषणों का स्वरूप धीरे–धीरे बदलता गया और उन्होंने इसे केवल बाहरी सौंदर्य तक सीमित न रखकर भावनाओं और अनुभवों से जोड़ने का प्रयास किया (चतुर्वेदी, 2005)।

आभूषण और स्त्री अस्मिता

हिंदी साहित्य में आभूषणों को स्त्री की सामाजिक स्थिति और अस्मिता से जोड़ा गया है। प्राचीन काल से ही आभूषणों को स्त्री के विवाह, सौभाग्य और पारिवारिक प्रतिष्ठा से जोड़ा गया है (प्रेमचंद, 1936)।

मुंशी प्रेमचंद की कहानी गहना में यह दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। इसमें एक गरीब स्त्री के लिए आभूषण केवल सौंदर्य का साधन नहीं, बल्कि आत्मसम्मान और पहचान का भी प्रतीक बन जाता है (प्रेमचंद, 1936)। इसी प्रकार, महादेवी वर्मा और सुभद्राकुमारी चौहान की कविताओं में भी आभूषणों को स्त्री की भावनाओं और इच्छाओं के रूप में प्रस्तुत किया गया है (चौहान, 1952)। यह सिद्ध करता है कि आभूषण केवल बाह्य सजावट नहीं, बल्कि स्त्री जीवन के महत्वपूर्ण प्रतीक भी हैं (गुप्ता, 2015)।

आधुनिक साहित्य में आभूषणों की भूमिका

आधुनिक हिंदी साहित्य में **कानों में कंगना** जैसी लोक अभिव्यक्तियाँ सांस्कृतिक धरोहर के रूप में देखने को मिलती हैं। अमृता प्रीतम, निर्मला वर्मा और मन्नू भंडारी की कहानियों में पारंपरिक आभूषणों के प्रति बदलते दृष्टिकोण को देखा जा सकता है (सिंह, 1998)।

वर्तमान समय में आभूषणों का स्वरूप बदल गया है। पारंपरिक समाज में जहाँ आभूषण स्त्री के विवाह, सौभाग्य और पारिवारिक प्रतिष्ठा से जुड़े थे, वहीं अब वे स्वतंत्रता और फैशन के प्रतीक भी बन गए हैं (वर्मा, 1972)। इसी कारण, समकालीन हिंदी साहित्य में आभूषणों को एक नए सामाजिक संदर्भ में देखा जाने लगा है (त्रिपाठी, 2010)।

निष्कर्ष

कानों में कंगना भारतीय सामाजिक जीवन और हिंदी साहित्य में एक सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में उभराता है। यह न केवल सौंदर्य और अलंकार का प्रतीक है, स्त्रीत्व, परंपरा, और सामाजिक पहचान का भी प्रतिबिंब है। हिंदी साहित्य में इसकी उपस्थिति शारीरिक अलंकार तक ही सीमित नहीं है, किंतु इसके माध्यम से सामाजिक संरचना, पितृसत्ता, स्त्री अस्मिता, और सांस्कृतिक मूल्यों का भी प्रतिबिंब किया गया है।

रीतिकालीन काव्य में, विशेषकर भक्ति और श्रृंगार रस से प्रभावित काव्यधारा में, ष्कानों में कंगनाष एक महत्वपूर्ण रूपक के रूप में प्रयुक्त होता है। रामविलास शर्मा (1980) के अनुसार, यह प्रतीक नारी सौंदर्य के पारंपरिक स्वरूप का प्रतिनिधित्व करता है, जो समाज की उस मानसिकता को दर्शाता है जहाँ स्त्रियों की पहचान उनके बाहरी सौंदर्य से की जाती थी। वहीं, आधुनिक हिंदी साहित्य में यह प्रतीक एक नए दृ

ष्टिकोण से देखा जाने लगा है, जहाँ स्त्री विमर्श और नारी सशक्तिकरण की धारा इसे पितृसत्तात्मक दायरे से बाहर लाने का प्रयास करती है (सिंह, 1998).

महादेवी वर्मा (1972) ने **श्रृंखला की कड़ियाँ** में नारी जीवन के संघर्षों को जिस प्रकार अभिव्यक्त किया है, वह यह दर्शाता है कि बाहरी आभूषणों से अधिक महत्वपूर्ण स्त्री की आंतरिक चेतना और स्वतंत्रता है। इसी प्रकार, सुभद्राकुमारी चौहान (1952) की कविताओं में भी पारंपरिक प्रतीकों को नारी चेतना से जोड़कर देखने का प्रयास किया गया है। साहित्य में यह बदलाव इस बात का प्रमाण है कि समय के साथ प्रतीकों की व्याख्या और उनकी प्रासंगिकता भी बदलती रहती है।

भारतीय समाज में आभूषणों का संबंध सिर्फ सौंदर्य से ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक धरोहर, आर्थिक स्थिति और सामाजिक संबंधों से भी बना रहा है। प्रेमचंद (1936) का उपन्यास गबन में नायक की पत्नी का गहनों के प्रति आकर्षण केवल स्त्री सौंदर्य और विलासिता की भावना को नहीं प्रस्तुत करता, बल्कि उस सामाजिक दबाव को भी प्रकट करता है, जिसमें स्त्रियों को अपने गहनों के रूप में सम्मान और प्रतिष्ठा होती थी। यह उदाहरण यह प्रदर्शित करता है कि कैसे साहित्य में प्रतीकों का उपयोग सामाजिक संरचना और व्यवहार की गहरी समझ विकसित करने के लिए किया जाता है।

इस प्रकार, **कानों में कंगना** केवल एक अलंकरण भर नहीं है, बल्कि यह समाज की मानसिकता, स्त्री की स्थिति और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का भी प्रतिनिधित्व करता है। हिंदी साहित्य में इस प्रतीक का विकास सामाजिक बदलावों और स्त्रीवादी दृष्टिकोणों के अनुरूप हुआ है। साहित्य केवल जीवन का अनुकरण नहीं करता, बल्कि वह समाज को दिशा भी देता है और उसके भीतर बदलाव लाने की क्षमता भी रखता है। इसलिए, **कानों में कंगना** जैसे प्रतीक हिंदी साहित्य और समाज के विकास को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण आधार प्रदान करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा, रामविलास (1980) रीतिकालीन काव्य और भारतीय समाज. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृ. 84।
2. सिंह, नामवर (1998) हिंदी साहित्य की परंपरा और प्रवृत्तियाँ. साहित्य अकादमी, नई दिल्ली पृ. 104।
3. वर्मा, महादेवी (1972) श्रृंखला की कड़ियाँ. लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज पृ. 112।
4. प्रेमचंद, मुंशी (1936) गबन।
5. चौहान, सुभद्राकुमारी (1952) मुकुल पृ. 118।
6. चतुर्वेदी, आलोक (2005) आधुनिक हिंदी साहित्य में सांस्कृतिक प्रतीक पृ. 46।
7. गुप्ता, शशिकांत (2015) हिंदी साहित्य में स्त्री और सामाजिक बदलाव पृ. 132।
8. त्रिपाठी, सुमन (2010) भारतीय समाज और लोक साहित्य।

गांधीजी जी के ग्रामीण विकास सम्बन्धी विचार

डॉ0 सुरेन्द्र कुमार यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
डी0 ए0 वी0 पी0 जी0 कालेज, आजमगढ़

सारांश–

गांधी जी का मानना था कि भारत की आत्मा उसके गांवों में बसती है भारत का विकसित देश बनना है तो पहले उसके गांवों का विकास करना होगा क्योंकि भारत गांवों का देश है गांधीजी के ग्रामीण विकास सम्बन्धी विचार और कार्यक्रम उनके 18 सूत्री साबरमती कार्यक्रम, 1920 ओर सेवाग्राम कार्यक्रम 1934 में स्पष्टतया दृष्टिगोचर होते है, गांधीजी सर्वोदय का सपना देखते थे, वे चाहते थे कि गाँव आत्मनिर्भर बनें और लोगों में स्वदेशी की भावना जाग्रत हो अमीर और गरीब के मध्य आर्थिक विषमता में कमी लाई जाए और गाँवों के विकास को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाए, वे गरीब से गरीब का उत्थान चाहते थे, इसलिए उनका विचार था कि देश का आर्थिक भविष्य ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर आधारित हो इसलिए वे कुटीर और ग्रामोद्योग पर बल देते थे, उन्होंने ''हाथ से कमाओं और सीखो'' पर बल दिया उनका विचार था कि गाँवों को स्वावलम्बी होना चाहिए तथा प्रत्येक गाँव एक गणतन्त्र की तरह हो जहाँ एक पंचायत हो जिसके माध्यम से ग्रामवासी अपनी समस्याओं का निपटारा करें। इस तरह गांधीजी ग्रामीण उद्योग और ग्रामीण शिल्पकारी के विकास, सामाजिक एकता और साम्प्रदायिक सद्भाव, छुआछूत निवारण, नशाबन्दी, गाँव संगठन के विकास (पंचायतीराज) पर विशेष बल देते थे।

शब्द कुंजी– ग्रामीण विकास, सर्वोदय, आर्थिक, महत्वपूर्ण, ग्रामोद्योग, विचार।

प्रस्तावना–

ग्रामीण क्षेत्रों के कल्याण के लिए गांधीजी ने जो कार्यक्रम तैयार किए थे वे इस प्रकार थे–खादी का प्रयोग, ग्रामोद्योग में धान कूट कर चावल तैयार करना, गुड़ बनाना, नीम का तेल निकालना, हाथ से कपड़ा बुनना, मृत पशुओं का उपयोग, हाथ द्वारा कागज बनाना, ऊनी कम्बल तैयार करना, प्रारम्भिक और प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम, पिछड़े वर्ग को ऊपर उठाना, नारी कल्याण कार्य, सार्वजनिक स्वास्थ्य और आरोग्य शास्त्र की शिक्षा, आर्थिक समानता लाने की गतिविधियाँ, छुआछूत दूर करना, साम्प्रदायिक शांति, नशाबन्दी, मातृ और राष्ट्र भाषा का प्रसार आदि। अब हम यहाँ गांधीजी के ग्रामीण विकास से सम्बन्धित सामाजिक और आर्थिक विचारों का विश्लेषण अलग–अलग कर रहे हैं ताकि हम यह समझ सकें कि हमने गांधीजी के विचारों को कितना अपनाया है।[1] गांधीजी के समाज, स्त्री, पुरूष, श्रम, पूँजी, औद्योगीकरण, मशीनीकरण, विकेन्द्रीकरण सम्बन्धी विचारों को ही उनके सामाजिक और आर्थिक दर्शन की संज्ञा दी जाती है, जिनकी मूल विशेषताएं इस प्रकार हैंः–

1. समाज सम्बन्धी विचारः–

गांधीजी एक वर्गविहीन, शोषण रहित, शांतिपूर्ण प्रजातांत्रिक आदर्श समाज के पोषक थे उन्होंने लिखा है कि ''मैं ऐसे भारत के निर्माण हेतु कार्य करूँगा, जिसमें निर्धनतम व्यक्ति भी यह गौरव अनुभव करेगा कि यह देश उनका है और इसके निर्माण में उसकी प्रभावपूर्ण आवाज हैं, मैं ऐसे भारत की रचना चाहूँगा जिसमें ऊँच–नीच का भेद–भाव न हो, वह ऐसा भारत होगा जिसमें सभी वर्ग प्रेम से रह सकें, ऐसे भारत में छुआछूत, मद्यपान और नशीली वस्तुओं के सेवन हेतु कोई स्थान न हो, स्त्रियों और पुरूषों के समान अधिकार होंगे, सभी देशों से मैत्री रखने के कारण हम विश्व के देशों के साथ शान्तिपूर्वक रह

सकेंगे, हम न किसी का शोषण करेंगे और न कोई हमारा शोषण करेगा, हमारे देश में कम–से–कम सेना रहेगी, करोड़ों की संख्या में मूक जनता का ध्यान रखा जाएगा, व्यक्तिगत रूप से मैं देशी और विदेशी के भेद को घृणा की दृष्टि से देखता हूँ, मेरी कल्पना का भारत यही है।''

गांधीजी के उक्त कथन से स्पष्ट है कि गांधीजी एक ऐसे समाज की रचना करना चाहते थे, जिसमें जाति और वर्ण भेद समाप्त हो और सभी व्यक्ति समान समझे जाए। वे उत्तराधिकार से प्राप्त जाति को नहीं मानते थे, उनका विचार था कि ''वर्तमान जाति प्रथा पूर्व की वर्णाश्रम व्यवस्था से पूर्णतः विपरीत है, जनता जितनी ही जल्दी इसको नष्ट कर दे, उतना ही श्रेयस्कर है, जाति का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है, यह तो राष्ट्रीय और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की प्रगति में बाधक है,'' इस प्रकार गांधीजी के अनुसार समाज का कर्तव्य है कि वह व्यक्ति पर उसके आध्यात्मिक उत्थान हेतु आदर्श वातावरण का सृजन करें, ऐसे समाज की रचना का आधार सत्य, अहिंसा, प्रेम और न्याय होग, व्यक्ति की जाति उसकी कार्यकुशलता पर आधारित होगी, उनका कहना था कि ''आदर्श सामाजिक व्यवस्था तभी स्थापित की जा सकती है जब इस वर्ण व्यवस्था को पूरी तरह समझ कर क्रियान्वित किया जाए।''

किन्तु क्या आज हम गांधीजी के उक्त विचारों को अमल में ला रहे हैं? आज स्थिति ठीक इसके विपरीत हो गई हैं, आज जाति और धर्म का जो जहर देश में फैल गया है, वह देश को विनाश की ओर ले जा रहा है।[2]

2. श्रम और पूँजी सम्बन्धी विचार :–

गांधीजी श्रम और पूँजी के महत्व को स्वीकार करते थे, उनका विचार था कि प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह कुछ न कुछ शारीरिक श्रम करके रोटी कमाए गांधीजी ने कहा है कि ''यदि सब अपनी रोटी के लिए खुद मेहनत करें, तो ऊँच–नीच का भेद–भाव दूर हो जाएगा और फिर जो धनी वर्ग रह जाएगा, वह अपने को मालिक न मानकर उस धन का केवल रक्षक या ट्रस्टी मानेगा तथा उसका उपयोग मुख्यतः लोक सेवा के लिए करेगा, मजदूरी न करने वाले को खाने का क्या अधिकार हो सकता है ?'' वे बाईबिल का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि ''तू अपने भौहे के पसीने से अपना भोजन पाएगा.''

गांधीजी पूँजी से श्रम को अधिक श्रेष्ठ मानते थे, उनका विचार था कि श्रम और पूँजी में वैवाहिक सम्बन्ध जैसा सामंजस्य होना चाहिए इस प्रकार उन्होंने पूँजीपतियों को सलाह दी कि वे अपने धन को जनता की धरोहर समझें और मजदूरों को सलाह दी कि वे अपना कार्य सुचारू रूप से करते हुए देश का नव निर्माण करें।

आज की स्थिति तो यह है कि जिसके पास जितना ही अधिक पैसा है वह उतना ही बड़ा शोषक है आज रूपये की आर्थिक व्यवस्था मनुष्य को अन्धा बना कर उसे असत्य, शोषण, हिंसा की ओर ले जा रही है और झूठ, फरेब और ठगी का बाजार गर्म कर रही है, आज धन का महत्व जो अढ़ा हुआ है उसका कारण यही है कि वह विनिमय का माध्यम बना हुआ है, अन्यथा वह मनुष्य कि रोजमर्रा की किसी जरूरत को पूरा नहीं करता इसलिए धन के महत्व को कम करने के लिए उसकी जगह श्रम को माध्यम बनाया जाना चाहिए। वह श्रम ऐसा होना चाहिए जिससे सब परिचित हों जिसके परिणाम का हिसाब आसानी से लगाया जा सके। ऐसे श्रम का स्थूल रूप कोई जीवनोपयोगी वस्तु ही हो सकती है कहाँ किस वस्तु को प्राथमिकता दी जाए, यह देश काल का विचार करके निश्चित किया जा सकता है।

इस सम्बन्ध में गांधीजी ने कहा है कि ''धातु के सिक्के या कागज के नोट मूल्य का सच्चा माप नहीं है, क्योंकि इनकी कीमत कृत्रिम है फिर भी बड़े पैमाने पर व्यापार करने के लिए यह माप आवश्यक है, ग्रामोद्योग के पीछे उल्टी कल्पना है, हम बड़े पैमाने का व्यवहार नहीं चाहते, हम देहात की स्वतंत्रता और स्वावलम्बन चाहते हैं, देहात में पारम्परिक व्यवहार के लिए धातु की या अन्य किसी कृत्रिम माप की

आवश्यकता नहीं हो सकती, हमारा माप तो कोई ऐसी देहाती चीज होनी चाहिए जिसे हर कोई बना सकता है और जिसका दाम हर रोज बदलता नहीं है तथा जिसको आसानी से संग्रह किया जा सकता है। ऐसी वस्तु क्या हो सकती है ? साबुन नहीं, तेल नहीं, तरकारी नहीं, इस तरह गिनते–गिनते खाली सूत रह जाता है, उसे सब उत्पन्न कर सकते हैं, उसकी हमेशा जरूरत रहती है, अगर सूत माप हम देहात में दाखिल कर सकें, तो देहात की बहुत उन्नति कर सकेंगे और शीघ्रता से स्वावलम्बी बन सकेंगे।''

''इस योजना में प्रत्येक घर टकसाल बन सकता है ओर जितने चाहिए उतने पैसे बना सकता है। साफ है कि ऐसी दुकानों में मादक पदार्थ, विदेशी पदार्थ, नुकसानकारक पदार्थ आदि नहीं बिक सकते इस तरह इनका सम्बन्ध पवित्र होगा।''

निश्चित ही यह प्रयोग अव्यावहारिक नहीं, सम्भव है, थोड़ा प्रयत्न करने पर इसमें बहुत बड़ी सफलता मिल सकती है और यह ग्रामीण विकास का आधार बन सकता है।[3]

3. औद्योगीकरण और मशीनीकरण सम्बन्धी विचारः–

गांधीजी कुटीर उद्योग के समर्थक थे, किन्तु जहाँ श्रमिकों की कमी हो वहाँ औद्योगीकरण के समर्थक थे, उनका विचार था कि औद्योगीकरण अनेक बुराईयों, यात्रिक दासता और अनैतिक कार्यों का वृहद भण्डार है, जिससे मानव को यथा–सम्भव बचना चाहिए, गांधीजी का कहना था कि ''मैं ऐसे मशीन का स्वागत करूँगा जो झोपड़ों में रहने वाले करोड़ों मनुष्यों के बोझ को हल्का करती है, करोड़ों सजीव मनुष्यों के मुकाबले जो भारत में सात लाख गाँवों में हैं, निर्जीव मशीनों को स्थान नहीं दिया जा सकता।''

किन्तु आज स्थिति यह है कि यन्त्रोद्योग का इतना विकास हो गया है कि उसमें कई दोष होते हुए भी उससे पूरे तोर पर बचा नहीं जा सकता, एक सीमा तक तो मशीनों को रखना ही होगा, फिर भी उन्हें उतना ही अपनाया जाए जितना कि अनिवार्य हो, यन्त्रोद्योग का प्रारम्भ और विकास पश्चिमी देशों में हुआ था, जहाँ मानव श्रम की कमी थी अब तो आधुनिक तकनीकी ने वहाँ भी बेकारी की समस्या उत्पन्न कर दी है, भारत जैसे देश में तो आबादी घनी होने से यहाँ समस्या मानव श्रम को कम करने की है ही नहीं, यहाँ तो सब लोगों को काम देने का प्रश्न है, अपने देश में तो खाने वाले मुँह और काम करने वाले हाथ बढ़ते ही जा रहे हैं, इसलिए अपने देश में ग्रामोद्योग पद्धति को ही प्रधानता मिलनी चाहिए, हाँ उसके साथ ऐसी उन्नत वैज्ञानिक तकनीकों को काम में लाया जाए कि लोगों को बहुत थकाने वाले या अरूचिकर कार्य न करना पड़े, बल्कि हमारी अर्थव्यवस्था ग्रामोद्योग के प्रतिद्वंद्वी न होकर उनके पूरक हों।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गांधीजी मशीनीकरण के विरोधी नहीं थे, बल्कि मशीनीकरण को महत्व देते हुए कहते थे, ''मशीन अपना महत्व रखती है, वह तो संसार में ठहरेगी ही, परन्तु इसका उपयोग इसलिए नहीं करना चाहिए कि वह मानव श्रम को हटा कर उसका स्थान स्वयं ग्रहण करलें, मैं मशीनरी का विरोध नहीं करता, मैं तो मशीनरी के उत्पाद का विरोध करता हूँ, मेरा उद्देश्य मशीनों को हटाना नहीं,द अपितु उन्हें सीमित करना है, मेरा सर्वोपरि विचार मनुष्य की भलाई में है,'' इस प्रकार गांधीजी मशीनों के विरोधी नहीं थे, लेकिन उनका उपयोग सीमित रूप में करने के पक्षधर थे।

4. विकेन्द्रीकरण सम्बन्धी विचार

गांधीजी का विचार था कि विकास के लिए आवश्यक है कि सभी क्षेत्रों में विकेन्द्रीकरण हो, इसी आधार पर नव भारत का निर्माण करना चाहते थे उनका विचार था कि ''यदि भारत अहिंसात्मक मार्ग पर चलना चाहता हे, तो सुझाव में उसे बहुतसी जीचों को विकेन्द्रित करना पडत्रेगा। केन्द्रीयकरण को न तो अधिकतम समय तक ठहरने देना ठीक है और न ही उपयुक्त बल के अभाव में उसकी रक्षा करना ही ठीक है, झोंपड़ी जिसमें चोरी की कोई वस्तु ही नहीं होती, पुलिस भी सुरक्षा की आवश्यकता नहीं

समझती।''

गांधीजी का विचार था कि केन्द्रीयकरण से ही युद्धों और हिंसा को बल मिलता है। अतः अहिंसात्मक प्रणाली के समयक विकास हेतु केन्द्रीयकरण तयागना अपरिहार्य है।

जबकि आज स्थिति यह है कि चाहे कोई भी क्षेत्र हो, केन्द्रीयकरण की प्रवृति ही पनप रही है, जिसके चलते चोरी, भ्रष्टाचार, अराजकता, अनैतिकता, आदि की वृद्धि हो रही है, जो देश के विकास में बाधक है।

आज यह निर्विवाद है कि जितना अधिक मानव अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कम–से कम स्वावलम्बी और अधिकारिक परावलम्बी होगा, खाने पहनने के मामले में वह किसी केन्द्रीय सत्ता या साधन पर अवलम्बित होग, वह अधिकाधिक शोषण का शिकार होगा। अर्थ, सत्ता और साधनों के इस केन्द्रीयकरण से असमानता बढ़ेगी तथा उस केन्द्रीयकरण और उससे उत्पन्न विषमता की रक्षा के लिए अधिकाधिक हिंसा की शक्तियों के युद्ध दैत्य को खुल कर खेलने के अवसर बढ़ते जाऐंगे और इस तरह देश का विकास बाधित होगा।

5. आर्थिक समानता सम्बन्धी विचार

गांधीजी सबको समान पारिश्रमिक देने के हिमायती थे। उनका विचार था कि वकील, डॉक्टर और अध्यापक सफाई कर्मचारी से अधिक पारिश्रमिक पाने के अधिकारी नहीं हैं। किसी राष्ट्र तथा विश्व को श्रम विभाजन ही ऊँचा उठाता है। सच्ची सभ्यता अथवा प्रसन्नता हेतु इससे अधिक सम्मानित मागर्क कोई नहीं हो सकेगा। उनका विचार था कि यदि सबको समान पारिश्रमिक देने की स्थिति पैदा कर दी जाए, तो प्रत्येक व्यक्ति अपना कार्य पूर्ण उत्तरदायित्व, लगन और कौशल से समपन्न करेगा जिससे समाज का उत्थान होगा और राष्ट्र की कीर्ति बढ़ेगी।

आर्थिक असमानता से गांधीजी का मतलब यह नहीं था कि सबको समान वेतन दिया जाए, बल्कि उनका तात्पर्य यह था कि सबको उतना वेतन अवश्य मिले जितने से उनका भरण–पोषण हो सके। उन्होंने कहा भी है कि ''आर्थिक समानता की मेरी कल्पना का यह अर्थ नहीं है कि प्रत्येक को शब्दशः एक ही रकम दी जाए। उनका सीधा मतलब यह है कि प्रत्येक को उसकी जरूरत की रकम मिलनी चाहिए। मगर कोई अकेला आदमी, एक औरत और चार बच्चों वाले आदमी के बराबर मांग करता है, तो इसको आर्थिक समानता का भंग कहा जाएगा''।

किन्तु ठीक इसके विपरीत आज अपने देश में स्पष्ट आर्थिक विषमता देखने को मिलती है। इस आर्थिक विषमता के चलते आज समाज के कुद लोग बहुत धनवान और कुछ लोग बहुत दरिद्र हो गए हैं, जिसके चलते भुखमरी और कुपोषण में वृद्धि हुई है तथा नैतिक पतन होता जा रहा है। आज धनवान और धनी होते जा रहे हैं और गरीब और गरीब। आज यह स्थिति है कि एक तरफ तो गरीब दाने–दाने को तरस रहा है, तो दूसरे तरफ धनवानों के कुत्ते तक दूध–भात खा रहे हैं। गांधीजी ने भी स्पष्ट शब्दों कहा है कि ''धनी के घर उसके लिए अनावश्यक चीजें पड़ी रहती हैं, मारी मारी फिरती हैं, खराब होती रहती हैं, जबकि दूसरे तरफ उसके अभाव में करोडत्रों मनुष्य भटकते फिरते हैं, भूखों मर जाते हैं, जाड़े में ठिठुरते रहते हैं। यदि सब लोग अपनी आवश्यकता भर ही संग्रह करें, तो किसी को तंगी न हो और सबको संतोष हो, ''किन्तु आज यह विडम्बना यह है कि सभी स्वार्थी हो गए हैं। जिसके पास है वह और अधिक चाहता है।

यहाँ एक बात दृष्टव्य है कि जब गांधीजी ने आर्थिक समानता सम्बन्धी उपर्युक्त बातें कही थी, तो उनका दृष्टिकोण व्यवस्था का था, सत्ता का नहीं, लेकिन उनकी यह चाह थी कि जब भारत में अपना राज हो, तो उसमें पारिश्रमिक की व्यवस्था ऐसी बने जो समाजवाद का प्रतीक हो। दुःख है कि और आमंदनियों

की आज जो व्यवस्था है उसमें अन्तर काफी अधिक है। आज हम इस बात को अस्वीकार नहीं कर सकते कि देश में विषमता की बहुत बड़ी खाई है। भारत में दुनिया के सबसे बड़े धनी हैं और सबसे बड़े गरीब भी हैं। हमारी जनसंख्या का 40 प्रतिशत भाग गरीबी रेखा के नीचे गुजर–बसर कर रहा है और जब तक उत्पादन तथा आवश्यकता का मेल–जोल नहीं बैठता तब तक हमारी गरीबी नहीं मिट सकती।[4]

अल्प विकास और असमानता हमारी दो बाधाऐं हैं, जिनसे हमें जूझना है, विदेशी कर्जों के बोध से हम दबते जा रहे हैं। अतः इससे हमें बचना होगा और हमें आत्मनिर्ीर होना पड़ेगा। आज देश संक्रमण काल की स्थिति से गुजर रहा है। हमें दायित्व बोध का अभाव है। राष्ट्रीय चरित्र का बेहद अभाव है। नेतृत्व में रचनात्मक शक्ति की कमी है। इन सबके लिए आखिरी इजाल गांधीवाद ही है। जब तक हम अपनी गलतियाँ महसूस नहीं करेंगे और लौट कर सही रास्ता नहीं पकडेंगे, भटकते ही रह जाएंगे।

गांधीजी के समाजवाद का मुख्य आधार गरीब भारत के साथ साधारणीकरण और तादात्म्य स्थापित करना ही था, इसलिए गांधीजी ने गरीबी को ओढ़ लिया था, उसे वरण किया था, तभी दरिद्र उनकी दृष्टि में नारायण था। क्या हमने ऐसा किया है?

गांधीजी ने कहा था कि ''आर्थिक असमानता का सच्चा अर्थ है जगत् के सब मनुष्यों के पास एकसमान सम्पत्ति को होना यानि सबके पास इतनी सम्पति होना कि वे अपनी कुदरती आवश्यकताऐं पूरीय कर सकें, ''किन्तु क्या ऐसा सम्भव हो पाया है? आज आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी भूलों की मजार पर एक सुनहरा महल खड़ा कर सकें और ऐसा तभी सम्भव है कि जब हम गांधीजी के बताऐ हुए रास्ते पर चलें।

वैश्विक गांव

सूचना एवं संचार क्रांति ने एक नवीन दुनिया का निर्माण किया है अर्थात् उपग्रह प्रणाली, माइक्रोवेब तथा कम्प्यूटर प्रणाली ने सूचना के मामले में संपूर्ण विश्व के आकार को दिन–प्रतिदिन छोटा कर दिया हैं हम एक–दूसरे के इतने अधिक निकट आ गए हैं कि आप विश्व को 'ग्लोबल विलेज' या 'विश्वस्तरीय गांव' की संज्ञा दी जाने लगी है। इस संज्ञा का सर्वप्रथम प्रयोग मार्शल मैकलुहान ने किया था।

वैश्वीकरण में यह निहित है कि विभिन्न राष्ट्र–राज्यों को विश्व व्यापार संगठन के ढांचे के अधीन एकीकृत किया जाए। 20वीं शताब्दी के अनितम दशक में वैश्वीकरण की संकल्पना तेजी से उभरी, जो 21वीं शताब्दी के दूसरे दशक में भी चर्चा का विषय बनी हुई है। वैज्ञानिक अनुसंधान एवं विकास से विश्व के देश व्यवहारिक रूप से एक–दूसरे के इतने अधिक निकट आ गए हैं कि तकनीकी दृष्टि से विश्व को वैश्विक गांव की संज्ञा दी जाने लगी है। कम्प्यूटर, टेलीविजन, मोबाइल फोन आदि के माध्यम से संचार क्षेत्र में क्रांति आ गई है और वर्तमान में विश्व के किसी भी भाग में पलक झपकते ही संपर्क किया जा सकता हैं परिवहन के तीव्रगामी एवं सस्ते साधन उपलब्ध हो जाने से श्रम, कच्चे माल, विनिर्मित वस्तुओं, तकनीकों आदि की गतिशीलता बढ़ गई है। नई संचार प्रणाली के कारण व्यापार एवं वित्त के अन्तरण में तीव्रता एवं पारदर्शिता आई है। वर्तमान शेयर बाजारों के संपूर्ण कार्य प्रणाली अति लघु एपरचर टर्मिनल के माध्यम से ''स्क्रिपलेस तथा प्लोरलेस'' हो चुकी है। इस कारण विश्व के किसी कोने में बैठा व्यक्ति किसी भी स्टॉक एक्सचेंज से कारोबार कर सकता है। अर्थशास्त्रियों के अनुसार वैश्वीकरण की धारणा में निम्नलिखित बातों का समावेश हैः–

- व्यापार के वैश्विक रूकावटों को कम करना, जिससे विश्व के विभिन्न देशों के बीच वस्तुओं एवं सेवाओं का प्रवाह बिना रूकावट के हो सके।
- पूंजी के स्वतंत्र प्रवाह के लिए कुशल वैश्विक परिस्थितियों का निर्माण करना।

- ऐसा वातावरण पैदा करना ताकि विश्व के प्रत्येक भाग में तकनीकी का बेरोक–टोक आदान–प्रदान हो सके।
- इसी प्रकार वैश्वीकरण में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी समाहित है कि वैश्विक परिस्थितियों का इस प्रकार से निर्माण किया जाए कि श्रम का निर्बाध–प्रवाह हो। वैश्वीकरण की धारणा में समाहित यह बिन्दु विकासशील देशों के लिए काफी महत्वपूर्ण है।

उल्लेखनीय है कि विकसित देश वैश्वीकरण को परिभाषित करते समय पहले तीन बिन्दुओं को तो समाहित करते हैं किन्तु श्रम के मुक्त प्रवाह को वैश्वीकरण का अंग नहीं मानते। विकसित देश स्वंय के द्वारा वैश्वीकरण की तय की गई परिभाषा को ही विकासशील देशों को स्वीकार करने का दबाव डालते हैं और अपने द्वारा निर्धारित परिधि में वैश्वीकरण पर विचार करने पर जोर देते हैं, किन्तु विकासशील देश वैश्वीकरण की इस परिभाषा से सहमत नहीं हैं और वे वैश्वीकरण का अन्तिम लक्ष्य समस्त संसार को एक ''सार्वभौमिक ग्राम'' के रूप में बदलता मानते हैं। ऐसे में श्रम के प्रवाह की उपेक्षा नहीं की जा सकती हैं।[5]

निष्कर्ष–

गांधी जी का मानना था कि हम भारत के विकास की कल्पना गांवों की उपेक्षा कर नहीं कर सकते। गांधी जी एक वर्ग विहीन, जाति विहीन समाज को महत्व देते थे वे मशीनीकरण के भी पथ में थे वे विकेन्द्रीकरण को भी चाहते थे समाज से आर्थिक, असमानता मिटाने के लिए गांवों का समग्र विकास अत्यन्त आवश्यक है।

संदर्भ

1. अग्रवाल, एस.एन., 1977 इंडियाज पापुलेशन प्राब्लम्स, मैकग्रा हिल, नई दिल्ली, पृ. संख्या 87
2. मूर, विलबर्ट आर., सोशल चेंज, नई दिल्ली, दि प्रेंटिस हॉल ऑफ इण्डिया लिमिटेड, 1965, पृ. संख्या 10
3. यादव पूरण मल भट्ट दिनेश चन्द्र 2010 वैश्वीकरण एक समाजशास्त्रीय–अवधारणा, आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर पृ. संख्या 4, 25
4. राजकुमार, 2004, "नारी के बदलते आयाम", अर्जुन पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, पृ. संख्या 25, 69
5. धनागरे, डी.एन. "ग्लोबलाइजेशनः टुवर्डस एन आल्टरनेटिव न्यू सोशियोजिकल बुलेटिन 52 (1)" पृ. संख्या 28

सतत विकास में महिलाओं की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

किरन कुमारी मौर्या
शोध छात्रा–समाजशास्त्र
डॉ० राममनोहर लोहिया पी० जी० कॉलेज
भैरवतालाब, वाराणसी

प्रो० बृजेश कुमार जायसवाल
समाजशास्त्र विभाग
डॉ० राममनोहर लोहिया पी० जी० कॉलेज
भैरवतालाब, वाराणसी

शोध सारांश :–
सतत विकास में महिलाओं की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। महिलाएं समाज में परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और सतत विकास के लिए उनकी भागीदारी आवश्यक हैं। वर्तमान समय में महिलाओं का विकास प्राथमिकता में रखा जा रहा है। महिलाएं अब हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चल रही है। कुटीर उद्योग से लेकर कम्पन्नीयों तक का संचालन कर रहीं है। महिलाओं में सृजन क्षमता के साथ साथ संरक्षण के भी गुण होते हैं जिससे वे सतत विकास के लक्ष्य को पूरा करने में सहयोग देती हैं। ये पुरुषों के अपेक्षा अधिक सहयोग देती है। ये पुरुषों के अपेक्षा अधिक पर्यावरण संरक्षण और उनका संवर्धन में योगदान देती है। वर्तमान में जलवायु परिवर्तन पर्यावरण और आपदा जोखिम में कमी नीतियों और कार्यक्रमों का संदर्भ, लैंगिक समानता, महिलाओं और लड़कियों के सशक्तिकरण से संबंधित बनाये जा रहे हैं।

Key word – सतत विकास, महिलाएं, सशक्तिकरण, लैंगिक समानता

प्रस्तावना – महिलाएं पर्यावरण के सबसे नजदीक है तथा पर्यावरण संरक्षण में एक अहम भूमिका निभाती है, परन्तु वर्तमान विकास नीतियों में उनको कोई स्थान नहीं दिया जाता जिसका सीधा प्रभाव पर्यावरण विनाश हो रहा है। सततशीलता की मांग पर्यावरण – नारीवादी आन्दोलनों के केन्द्र में है। अफ्रिका में हरित पट्टी आन्दोलन भारत में चिपको आन्दोलन पश्चिमी घाट के एपिको आन्दोलन तथा नर्मदा बचाओं आन्दोलनों ने यह प्रदर्शित किया है कि विकास नीतियों में महिलाओं की आवश्यकताओं पर ध्यान नहीं दिया गया। जंगल के ठेकेदार, तटीय क्षेत्र में मछली पकड़ने की आधुनिक मशीने आधुनिक वन प्रबन्धन, व्यापारिक फसले, लुप्त होते प्राकृतिक संसाधन महिलाओं के आधारभूत परम्परागत अधिकारों को छीनते जा रहे है यह विकास प्रक्रिया अन्ततः पर्यावरण विनाश को प्रोत्साहन दे रही है अब सतत विकास लैंगिक समानता को पर्यावरण संरक्षण की एक अनिवार्य आवश्यकता मानता है।

सतत विकास की अवधारणा –

'पर्यावरण की रक्षा व मानव का सतत विकास' की सहगामी अवधारणा को सतत विकास, जीवन सह विकास, धारणीय विकास, प्रतिपालनीय विकास, सुस्थिर विकास, पोषणीय विकास, संधृत विकास, सम्पोषित विकास (Sustainable Development)आदि नामों से जाना गया। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 1980 में 'विश्व संरक्षण रणनीति' में किया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1983 में पर्यावरण एवं सतत विकास पर नार्वे की प्रधानमन्त्री जी० एच० ब्रटलैण्ड की अध्यक्षता में एक आयोग द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट

को 'हमारा सांझा भविष्य' (Our Common Future) के नाम से भी जाना गया। ब्रटलैण्ड कमीशन की रिपोर्ट का प्रकाशन 1987 में वर्ल्ड कमीशन ऑन एनवायर्नमेंट डेवलपमेन्ट द्वारा किया गया था। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 2012 में रियो डी जेनेरियो, ब्राजील (द० अमेरिका) के एक सम्मेलन में सतत विकास के लक्ष्य को एक प्रक्रिया के रूप में विकसित करने की शुरुआत की गई। 25 सितम्बर 2015 को संयुक्त राष्ट्र के 193 देशों द्वारा सतत विकास के 17 लक्ष्यों को अपनाया गया जिन्हें श्ग्लोबल गोल्सश कहा गया । 1 जनवरी 2016 से इन लक्ष्यों की शुरुआत की जाती है जिसमें 17 लक्ष्य और उनके 169 विशिष्ट लक्ष्य को 2030 तक पूर्ण करने का लक्ष्य रखा गया जिसे एजेण्डा 2030 कहा जाता है। यह एक कानूनी बाध्यता नहीं है बल्कि वैश्विक परिवर्तन के समस्या को ध्यान में रखते हुए एक वैश्विक आहवाहन है जिसके सभी लक्ष्य एक दूसरे से जुड़े हुए होते हैं। सतत् विकास के प्रमुख लक्ष्य है। :– 1 गरीबी की पूर्ण समाप्ति 2 भूखमरी की समाप्ति 3 अच्छा स्वास्थ्य और जीवन स्तर 4 गुणवत्तापूर्ण शिक्षा 5 लैंगिक समानता 6 साफ पानी और स्वच्छता 7 सस्ती और स्वच्छ ऊर्जा 8 अच्छा काम और आर्थिक विकास 9 उद्योग, नवाचार और बुनियादी दांचा का विकास 10 असमानता में कमी 11 टिकाऊ शहरी और सामुदायिक 12 जिम्मेदारी उपभोग और उत्पादन 13 जलवायु कार्यवाई 14 पानी के नीचे जीवन 15 जमीन पर जीवन 16 शांति और न्याय मजबूत संस्थाएं 17 लक्ष्यों के लिए साझेदारिया

जी० एच० ब्रटलैण्ड के अनुसार :–

"सतत विकास एक उपागम है, जो भविष्य में मानव की मांग की आपूर्ति करने की पर्यावरण की क्षमता के साथ कोई समझौता किये बिना वर्तमान समाज की इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति करने का घोतक है।

विलियम कन्निधम व मैरी कन्निधम के अनुसार :–

" सम्पोषित विकास मानव कल्याण में प्रगति को दर्शाता है, जिसे हम मात्र कुछ वर्षों के स्थान पर दीर्घकाल तक कायम रहो । सम्पोषि विकास के परिणाम का भागीदार, सम्पूर्ण मानव समाज होना चाहि न कि यह किसी खास वर्ग तक सीमित रहें।

राबर्ट रेपीटो के अनुसार :-

"सतत विकास से आशय विकास की उस रणनीति से है जो सभी प्राकृतिक, मानवीय, वित्तिय तथा भौतिक साधनों का सम्पदा तथा या आर्थिक कल्याण में दीर्घकालीन वृद्धि करने के प्रबन्ध करती है"।

आशीष कोठारी (1993) **:-**

सतत विकास की परिभाषा आन्तर–पीढ़ीगत आंतर जीवी असमानता की सततता को पर्याप्त रूप से संबोधित नहीं करती हैं और इसलिए खुशी, समानता न्याय और शान्ति के विशाल मानवीय लक्ष्यों के दृष्टिकोण से स्वीकार्य नहीं है।

सतत् विकास के सामाजिक आयाम :–

शून्य भूख, अच्छा स्वास्थ्य और कल्याण, उत्तम शिक्षा, जनसंख्या नियन्त्रण और जेन्डर समानता पर जोर देने के साथ एक मजबूत स्वास्थ्य और न्यायपूर्ण समाज सुनिश्चित करना सम्मिलित है।

सतत विकास की विशेषताएं **:–**

- सतत विकास में व्यक्तियों को प्रमुख स्थान दिया जाता है। इसमें न केवल वर्तमान पीढ़ी बल्कि भावी पीढ़ी के विकास का भी ध्यान रखा जाता है।
- सतत् विकास विभिन्न पीढ़ीयों के साथ एक ही पीढी के विभिन्न वर्गों के बीच समानता पर जोर देता है।
- सतत् विकास में गरीबी को कम करने पर रोजगार पर, सामाजिक एकीकरण पर पर्यावरण के नवीनीकरण पर जोर देने के साथ शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यादि पर भी बल देता हैं।
- सतत विकास प्रकृति तथा बातावरण के संरक्षण के अनुकूल होता हैं।
- सतत विकास में पर्यावरण के संरक्षण के साथ गुणात्मक सुधार भी किये जाते है।

सतत विकास की शर्ते :–

1-प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण

2-समन्वित एवं संतुलित उपयोग

3-प्रदूषण रहित विकास करना

4-जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि करना।

5-भावी पीढ़ी की अवहेलना नहीं करना

सतत विकास लक्ष्य एवं उद्देश्य –

1 पहले से हुए पर्यावरण व जैविक नुकसान की भरपाई करना।

2 भविष्य में देश में विकास के कारण होने वाले नुकसान से रक्षा करना।

3 संसाधनों का सफल प्रबन्धन करना ताकि मानव की परिवर्तनशील आवश्यकताओं को संतुष्ट किया जा सकें ।

4 पर्यावरण क्षरण एवं प्रदूषण पर नियन्त्रण करना।

5 सामाजिक समानता और सामाजिक न्याय के प्रति वचनबद्धता।

6 जैविक सह अस्तित्व की रक्षा करना ।

7 विकास के अवसरों में केवल कुछ ही लोगों को भागीदार न बनाकर सभी लोगों को भागीदार करना।

सतत विकास हेतु सुझाव –

1- पर्यावरण चेतना के विकास की दिशा में काम करना चाहिए !

2- हमें पुनः प्रकृति की ओर के मंत्र पर निर्भर रहना होगा।

3- ऐसी जीवनशैली अपनानी होगी जिससे प्राकृतिक संसाधनों का न्यूनतम उपयोग हो और सम्पूर्ण जीवन चक्र में अपशिष्ट एवं प्रदूषकों की मात्रा न्यूनतम रहे।

4- प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण किया जाना चाहिए।

5- ऊर्जा के प्रभावी उपयोग के लिए पहले से ही विद्यमान प्रौद्योगिकी के त्वरित संवर्धन हेतु कार्यक्रम प्रारम्भ करने हेतु एवं नवीन 'हरित प्रौद्योगिकियों' के विकास एवं प्रसार की आवश्यकता है।

6- पर्यावरण संरक्षण के उपाय अपनाए जाने चाहिए।

महिलाओं द्वारा सतत विकास के विविध आयाम –

महिला शिक्षा और जागरुकता –

महिलाएं शिक्षा और जागरूकता के माध्यम से समाज में परिवर्तन ला सकती है शिक्षित महिलाएं अपने परिवार और समाज को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वे अपने परिवार और समाज को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वे अपने बच्चों को शिक्षित करने में मदद करती है और उन्हें स्वस्थ्य और सुरक्षित जीवन जीने में मदद करती है वर्तमान शिक्षा को एक बड़ी शक्ति के रूप में देखा जाता हैं, एक ऐसी शक्ति जो न केवल राष्ट्रीय विकास में भी योगदान देती है। यह सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक या पर्यावरणीय विकास की कुंजी है। सतत विकास को प्राप्त करने के लिए शिक्षा आबश्यक ज्ञान और कौशल के विकास को बढ़ावा देती है। यह आर्थिक कल्याण सामाजिक समानता, लोकतान्त्रिक मूल्यों और बहुत सी चीजों को प्रोत्साहित करती है या बढ़ावा देती है। सतत विकास के लिए शिक्षा, लोगो और नागरिकों को यह भी जानने में सक्षम बनाती है कि पृथ्वी के संसाधनों को कैसे संरक्षित किया जाए जो सीमित मात्रा में उपलब्ध है। शिक्षित माहिलाएं जागरूक होकर अपने आने वाली पीढीयों के भविष्य के लिए बेहतर संसाधन का प्रयोग व सैरक्षण करती है क्योंरि इनमें बचत की प्रकृति होती है ये केवल आवश्यकता के अनुसार ही संसाधनों का खर्च करती हैं। सतत विकास के प्रमुख लक्ष्य है–जलवायु परिवर्तन आपदा जोखिम में कमी, जैव विविधता गरीबी में घटौती और सतत उपभोग । सतत विकास के लिए शिक्षा परिणामस्वरूप महत्वपूर्ण सोच भविष्य के परिदृश्यों की कल्पना और सहयोगपूर्ण तरीके से निर्णय – निर्माण जैसी दक्षताओं को बढ़ावा देती है। इस प्रकार सतत विकास के लिए शिक्षा के दूरगामी परिवर्तनों की आवश्यकता है। महिलाओं व बालिकाओं को मौलिक शिक्षा, उच्चशिक्षा, प्रशिक्षण, व कौशल दक्ष कर के सतत विकास लक्ष्य को सुनिश्चित कर सकती है।

महिला, आर्थिक सशक्तिकरण –

महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण उन्हें आत्मनिर्भर बनाता है और वे समाज में अपनी भूमिका निभा सकती हैं। आर्थिक रूप से सशक्त महिलाएं अपने परिवार को आर्थिक रूप से सुरक्षित बनाने में मदद करती है और उन्हें बेहतर जीवन जीने में मदद करती है। भारत के आर्थिक विकास में महिलायों का योगदान निरन्तर बढ़ रहा है। वर्तमान समय में 68%- से आधिक मुद्रा लाभार्थी महिलाएं है। स्टैंड अप इंडिया से लाभान्वित होने वाले 81% उद्यमी महिलाएं है। 56% से अधिक जनधन खाते महिलाओं के पास हैं। आर्थिक सशक्तिकरण द्वारा फरवरी 2024 तक स्वयं सहायता समूह ने महिलाओं के नेतृत्व वाले उद्यमों के लिए 17 लाख करोड़ से अधिक का ऋण जुटाया था ई–गिग इकॉनमी के अवसर, ई–कॉमर्स प्लेटफोर्म महिला ई–होट, अमेजन सहेली द्वारा महिलाओं को उद्धमिता से जोड़ा जा रहा है कौशल भारत मिशन, डिजिटल इंडिया, स्टैण्ड अप इंडिया जैसी पहलों के साथ महिलाओं को रोजगार सृजनकर्ता व उद्यमशीलता को प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

सतत विकास के पांचवे लक्ष्य लैंगिक समानता और आठवे लक्ष्य उत्कृष्ट श्रम के साथ तालमेल बिठाते हुए नीतियों बनाई जा रही है, किन्तु अभी भी महिलाएं आर्थिक रूप से कमजोर हैं जिसके कारण वे उन ऊंचाईयों तक नहीं पहुंच पाती है. जहाँ तक पहुंचना चाहिए। विश्व असमानता रिपोर्ट 2022 के अनुसार भारत में पुरुष श्रम आय का 82% कमाते है जबकि महिलाए 18% कमाती है। सांस्कृतिक बाधाएं तथा लैंगिक सामाजिक मानदण्ड और पुर्वाग्ग्रह को त्यागकर महिलाओं को आगे लाकर उनके सशक्तिकरण द्वारा सतत विकास लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

महिला एवं पर्यावरण संरक्षण –

महिलाए पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है और स्थायी विकास को बढ़ावा दे सकती है वे अपने परिवार और समाज को पर्यावरण संरक्षण के महत्व के बारे में जागरूक करती रहती है और पर्यावरण संरक्षण में मदद भी करती है। यदि भारतीय संस्कृति सामाजिक प्रथाओं– परम्पराओं और रीति रिवाजों को देखा जाय तो स्पष्ट दिखाई देता है कि प्राचीन काल से ही महिलाएं। किसी न किसी प्रकार से पर्यावरण से जुड़ी हुई है। भारत में, महिलाओं ने पर्यावरण के प्रति मनुष्य मनुष्य के लगाव को पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाया है। आज भी महिलाओं की दिनचर्या को देखा जाए तो यह स्पष्टतः दिखाई पड़ता है कि महिलाए व्रत त्यौहार के अवसर पर, प्रतिदिन के कामकाज में पूजा–अर्चना में अनेक वृक्षों के संरक्षण का कार्य करती है जैसे– तुलसी, पीपल, नीम, बॉस, आँवला, अशोक, केला आदि वृक्षों की देखभाल तो महिलाए रीति–रिवाजों के तौर पर पीढ़ी दर पीढ़ी करती आ रही है। पर्यावरण संरक्षण, के इतिहास पर नजर डाला जाय हो. ऐसी बहुत सी महिलाए है जिन्होंने इस क्षेत्र में नेतृत्व कर प्रकृति को बचाया है।

चिपको आन्दोलन नर्मदा बचाओ आन्दोलन खेजडली आन्दोलन ये सब वो आन्दोलन है जिसमें महिलाओं ने पर्यावरण संरक्षण के लिए अपने प्राण तक न्यौछावर कर दिये थे।

कार्ल मार्क्स के अनुसार – कोई भी बड़ा सामाजिक परिवर्तन महिलाओं के बिना नहीं हो सकता। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक इस कथन को कई महिलाओं ने साबित भी कर दिखाया है। गौरा देवी, सुनीता नारायन वंदना शिवा, मेधा पाटकर, अमृता देवी, तुलसी गौडा जैसी बहुत सी, महिलाओं ने पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ये महिलाएं भारतीय समाज में पर्यावरण के प्रति जागरूकता लाने और लोगों के लिए प्रेरणा स्त्रोत भी बनी है। खास तौर पर आदिवासी महिलायों ने वन सम्पदा, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं।

महिला, सामाजिक न्याय और राजनीतिक भागीदारी –

महिलाएं सामाजिक न्याय के लिए लड़ सकती है और समाज में समानता को बढ़ावा दे सकती है वे अपने अधिकारों के लिए लड. सकती है। सतत विकास के लिए महिला को समान अधिकार प्रदान करने होगे। आधी आबादी के साथ शोषण पूर्ण व्यवहार अनुचित है। महिलाओं को समान अधिकार, समान अवसर और जिम्मेदारियों मिले तो वे उन सभी पहलुओं या पक्षों का बेहतर प्रयोग करते हुए भावी पीढ़ी के मानवाधिकार व सामाजिक न्याय को प्रदान करेंगी।

महिलाएं राजनीतिक भागीदारी के माध्यम से नीतियों का बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है और समाज में परिवर्तन ला सकती हैं। वे अपने समाज के लिए में भविष्य की पीढ़ीयों के लिए भी नीतियों को बनाने में मदद कर सकती है और उन्हें बेहतर जीवन जीने में मदद कर सकती हैं। प्रतिनिधित्व या नेतृत्व के रूप में महिलायों की भागीदारी केवल 'रबर स्टाम्प' हैं,

यदि ये अपनी क्षमता को पहचान ले और निर्णय क्षमता का प्रयोग करें तो भी एक सशक्त राष्ट्र का निर्माण कर सकती है। महिलाओं को स्वच्छ जल, स्वच्छ ईंधन स्वच्छ वातावरण, शिक्षा, न्याय, सुरक्षा मिले तो वे भविष्य के लिए अनेक प्रयत्ल कर सकेंगी। महिलाओं के प्रति हिंसा, बच्चों की देखभाल, परिवार की जिम्मेदारी, मातृ–स्वास्थ्य, यौन अपराध, घरेलू हिंसा, कम वेतन, घर से दूर न जाने की मजबूरी ने उनके पांवों में बेड़ियों का कार्य किया है। यदि महिलाओं को लैंगिक समानता के आधार पर समानता के अधिकार प्राप्त हो तो वे सतत विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर सकती है।

सुझाव:

भारत में महिलाओं का प्रकृति के प्रति लगाव काफी गहरा है। सतत विकास के जो लक्ष्य निर्धारित किये गये है उनको केवल पुरुषों द्वारा ही पूरा नहीं किया जा सकता। यदि महिलाओं को आर्थिक रूप से और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता मिले तो वे निर्णय लेने में तथा नेतृत्व करने में सफल हो सकती है। तीव्र विकास

के लिए तीव्र प्राकृतिक संसाधनों का दोहन होता है। यदि महिलाओं को पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूक किया जाय तथा उन्हें सतत विकास के लक्ष्य को. बताया जाय तो उनके द्वारा महत्वपूर्ण प्रयास किये जायेंगे। महिलाओं को डिजिटल माध्यम से तथा स्कूली पाठ्यक्रमों में यदि सतत विकास के लक्ष्यों को बताया जाय तो भी सतता विकास को प्राप्त किया जा सकता है।

निष्कर्ष –

सतत विकास में महिलाओं की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। महिलाए समाज में परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण रोल अदा करती है। सतत विकास के लिए उनकी भागीदारी आवश्यक है। महिलाओं को सतत विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। सतत विकास के लक्ष्य 2030 तक तभी प्राप्त हो सकेंगे जब विश्व की आधी आबादी आत्मनिर्भर व शिक्षित होगी तभी वे स्वयं के बारे में व आने वाली पीढी के बारे में सोच पायेंगी। महिलाओं के सशक्तिकरण से परिवार, राष्ट्र, व विश्व के सतत विकास को समझा जा सकता है। जिसप्रकार महिलाएं अपने परिवार में वर्तमान आवश्यकता को ध्यान में रखने के साथ भविष्य के लिए भी नीतियाँ बनाती है उसी प्रकार के राष्ट्रीय व अंतराष्ट्रीय स्तर पर सतत विकास लक्ष्य को पूर्ण कर सकती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची –

- प्रो० एम० एल० गुप्ता, डॉ० डी० डी० शर्मा, डॉ. अंजुवेनीवाल : भारत में सामाजिक समस्याएं एवं विकास के मुद्दे : साहित्य भवन पब्लिकेशन (2022)
- वी० सी० सिन्हा पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, आर्थिक संवृद्धि एवं विकास : एस० वी० पी० डी० पब्लिकेशिंग हाउस (2024)
- सुनीलू गोयल : भारत में सामाजिक समस्याएँ एवं विकास के मुद्दे : राम प्रसाद पब्लिकेशन, आगरा (2024)
- अजय गौतम : महिला सशक्तिकरणय सतत विकास की कुंजी
- इग्नू नोट्स–
- संयुक्त राष्ट्र महिला: महिलाएं और सतत विकास लक्ष्य
- https://www.drishtiias.com
- https://www.inspirajournals.com
- https://www.worldwide
- Journals.com

साइबर अपराध के एक उपकरण के रूप में सोशल मीडिया

मनीषा सिंह
शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग
लाल बहादूर शास्त्री पी.जी. कॉलेज मुगलसराय चंदौली
डॉ. भावना
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
लाल बहादूर शास्त्री पीजी कॉलेज मुगलसराय चंदौली

सारांश
पिछले कुछ वर्षों में सोशल मीडिया के उपयोगकर्ताओं में भारी वृद्धि के कारण संचार के तरीके में अत्यधिक बदलाव आया है, जिससे उपयोगकर्ता तुरंत इंटरनेट पर सेकंडों में किसी से भी जुड़ सकते हैं और संवाद कर सकते हैं। इंटरनेट पर सोशल मीडिया को समझने के लिए बहुत सारी परिभाषाएँ हैं। यह किताब सोशल मीडिया और साइबर अपराध की संक्षिप्त समझ के साथ शुरू होती है।यह पेपर सोशल मीडिया के दुरुपयोग की पहचान करता है और हम उस अध्ययन पर ध्यान केंद्रित करते हैं जो सोशल मीडिया की जांच और साइबर अपराध के उपकरण के रूप में उनके उपयोग पर आधारित है। सोशल मीडिया के विकास ने साइबर अपराधियों के मानदंडों को बदल दिया है क्योंकि उन्हें काम पूरा करने के लिए अधिक तकनीकी विशेषज्ञता की आवश्यकता नहीं होती है। राष्ट्रीय जांच एजेंसी के प्रमुख के रूप में आलोक मित्तल ने कहा है कि भारत में हर छठा साइबर अपराध सोशल मीडिया के माध्यम से किया जाता है।

कीवर्ड : साइबर अपराध, सोशल मीडिया, इंटरनेट, नेटवर्क, साइबर कानून इत्यादि।

परिचय

अपराध भी एक तरह से कानून का उल्लंघन है और अपराध से निपटने के लिए अलग-अलग देशों की अलग-अलग रणनीतियाँ हैं। यह एक सच्चाई है कि जिस देश में अपराध के मामले ऊंचे हैं, वह कभी भी विकास नहीं कर सकता। जैसे-जैसे विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अनुसंधान और विकास एक नई ऊंचाई की ओर बढ़ रहे हैं, यहां एक नए प्रकार के अपराध की शुरुआत हुई है जिसे "साइबर अपराध" कहा जाता है। इस प्रकार के अपराध में कंप्यूटर शामिल होता है और इंटरनेट की पहुंच के साथ इसे अंजाम दिया जाता है। आजकल इंटरनेट और सोशल मीडिया शब्द आपस में पूरी तरह जुड़े हुए हैं। व्यक्तिगत संचार में भारी बदलाव आया है, जैसे कि फेसबुक, पर, यूट्यूब, पर, ट्विटर आदि पर। मार्केटिंग भी सोशल मीडिया के अनुकूल हिस्सों में से एक है जो उपयोगकर्ताओं को जुड़ने और संवाद करने की अनुमति देता है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) के डेटा से पता चलता है कि 2013 और 2015 के बीच सालाना साइबर अपराधों में लगभग 70% की वृद्धि हुई है, साइबर विशेषज्ञों ने कहा कि साइबर अपराध की उच्च दर ऐसे देश में स्वाभाविक है जहां प्रौद्योगिकी को अपनाना अधिक है लेकिन जागरूकता कम है। सोशल मीडिया के माध्यम से होने वाले प्रमुख साइबर अपराध पहचान की चोरी, मानहानि, उत्पीड़न, अश्लील साहित्य, पीछा करना, आपत्तिजनक पोस्ट और अन्य हैं। 12 फरवरी 2014 को सूचना प्रौद्योगिकी पर 2013-2014 की स्थायी समिति द्वारा जारी साइबर अपराध, साइबर सुरक्षा और निजता के अधिकार पर बावनवीं रिपोर्ट में भारत के साइबर सुरक्षा ढांचे में सुधार की तत्काल आवश्यकता और बहुप्रतीक्षित कानून की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया।

उद्देश्य

शोध का मुख्य लक्ष्य एक आसान शिकायत और न्यायपालिका प्रक्रिया का मूल्यांकन करना है। हम पुलिस और सोशल साइट्स के यूजर के बीच के अंतर को कैसे पूरा करते हैं। प्रस्तुत शोध के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं:-

- सोशल मीडिया में किस प्रकार के साइबर अपराध हैं।
- उस प्रकार के अनियंत्रित अपराध के कारण क्या हैं।
- न्यायिक टिप्पणियाँ क्या हैं।
- साइबर अपराधियों से संचार के इस व्यापक माध्यम को रोकने में कानून और पुलिस क्यों विफल हैं।
- विशेषज्ञों के सुझाव क्या हैं।

साइबर अपराध की श्रेणियां

इस तरह के अपराध के लिए किसी हथियार की आवश्यकता नहीं होती इसके लिए इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स की आवश्यकता होती है। साइबर अपराध की मूल रूप से तीन प्रमुख श्रेणियां हैं।

- किसी व्यक्ति के विरुद्ध इस प्रकार का साइबर अपराध पहचान की चोरी धोखाधड़ी आदि का परिचय देता है।
- सभी प्रकार की संपत्ति के विरुद्ध इसमें मैलवेयर फ़िशिंग आदि शामिल हैं।
- सरकारी संविधान के विरुद्ध इसका तात्पर्य अवैध जानकारी संग्रहीत करना सरकारी वेबसाइटों को हैक करना है। इस श्रेणी में सबसे गंभीर अपराध साइबर आतंकवाद है।

सोशल मीडिया और साइबर अपराध के बीच संबंध

साइबर अपराध कई प्रकार के होते हैं और 2010 तक साइबर अपराध के बारे में मान्यता यह थी कि कुछ प्रतिभाशाली, विशेष रूप से प्रशिक्षित व्यक्ति और कंप्यूटर का कुछ ज्ञान रखने वाले तकनीकी व्यक्ति इस प्रकार के अपराध में लिप्त हैं। लेकिन आजकल यह धारणा या मान्यता झूठी साबित होती है, इसके पीछे का कारण सोशल मीडिया है, जिसे चलाना हर किसी के लिए बहुत आसान है। साइबर क्राइम में बढ़ोतरी के लिए यह लोगों के बीच एक बहुत ही आसान विकल्प भी साबित होता है। सोशल मीडिया के उपयोग से कई प्रकार के साइबर अपराध होते हैं जैसे पहचान की चोरी, महिलाओं की विनम्रता, मानहानि, आपत्तिजनक संदेश, हैकिंग, बाल अश्लीलता, चरम और हिंसक यौन गतिविधि के कृत्यों वाली छवियां आदि।

ये अपराध हमारे समाज के लिए खतरनाक हैं, सुरक्षा को लेकर यह बेहद गंभीर चुनौती है क्योंकि इसका इस्तेमाल सांप्रदायिक और आतंकवादी गतिविधियों में किया जाता है। सोशल मीडिया भी समाज में जहर फैलाने का एक सहज और सीधा जरिया साबित होता है। संपादन उपकरण फर्जी खबरें, तस्वीरें और वीडियो लोगों को गुमराह कर रहे हैं और लोगों को अलग-अलग समूहों में बांट रहे हैं। इसका उपयोग राजनीतिक दलों के लिए लाभार्थी उपकरण के रूप में भी किया जाता है। साइबर क्रिमिनल को प्रेरित करने के लिए सोशल मीडिया बहुत ही आसान भूमिका निभा रहा है। अब साइबर अपराध को बढ़ावा देने के लिए तकनीकी क्षेत्र में विशेषज्ञ या प्रशिक्षित होना जरूरी नहीं है, यहां सोशल मीडिया का दुरुपयोग आम है। आतंकवादी लगातार संचार और आतंक फैलाने के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं। अब इन गतिविधियों को पहचानना और इन गतिविधियों पर लगाम लगाना सोशल मीडिया के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है। सोशल मीडिया और साइबर क्राइम का रिश्ता बिल्कुल वैसा ही है जैसे स्वस्थ नदी में प्रदूषित सीवर का पानी एक साथ मिलकर प्रतिकूल अस्वास्थ्यकर जल का निर्माण करता है।

इस विषय के बारे में बेहतर समझ प्रदान करने वाली तीन आवश्यक उपकरण इस प्रकार हैं:

- कंप्यूटर

- इंटरनेट
- सोशल मीडिया

कंप्यूटर

कंप्यूटर एक मशीन (अधिकतर इलेक्ट्रॉनिक) है जो जानकारी (इनपुट) लेने, उस पर कुछ काम करने या जानकारी (प्रक्रिया) में बदलाव करने, नई जानकारी (आउटपुट) बनाने में सक्षम है। कंप्यूटर मानव इतिहास के अधिकांश समय से मौजूद हैं। प्रारंभिक कंप्यूटर के उदाहरण एस्ट्रोलैब और अबेकस हैं। कंप्यूटर में चार मुख्य प्रोसेसिंग चरण होते हैं, और वे हैं: इनपुटिंग, आउटपुटिंग, स्टोरेज और प्रोसेसिंग। आधुनिक कंप्यूटर शुरुआती कंप्यूटरों से बहुत अलग हैं.. वे प्रति सेकंड अरबों गणनाएँ कर सकते हैं। अधिकांश लोगों ने अपने घर या कार्यस्थल पर पर्सनल कंप्यूटर का उपयोग किया है। कंप्यूटर कई अलग-अलग कार्य करते हैं जहां स्वचालन उपयोगी होता है।

अपराधों में "आपराधिक कानून का कोई भी उल्लंघन शामिल है जिसमें उनके अपराध, जांच या अभियोजन के लिए कंप्यूटर प्रौद्योगिकी का ज्ञान शामिल है।" कंप्यूटर अपराध के अंतर्गत आने वाले अपराधों की विशाल संख्या के कारण, यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसे परिभाषित करना अभी भी कठिन बना हुआ है। कंप्यूटर अपराधों में स्पैम ईमेल में वायरस भेजने से लेकर बड़े पैमाने पर संगठित हैकिंग तक सब कुछ शामिल है, जिसे किसी कंपनी या यहां तक कि सरकार पर "साइबर युद्ध" के रूप में जाना जाता है।

"साइबर-अपराध", जैसा कि यह भी ज्ञात है, हाल के वर्षों में वैश्विक स्तर पर अत्यधिक वृद्धि हुई है। ऐसा दो कारणों से है। पहला, व्यापार के लिए कंप्यूटर पर निर्भर रहने वाले व्यवसायों की लगातार बढ़ती संख्या और दूसरा, अपराध करने के लिए प्रौद्योगिकी में महारत हासिल करने वाले लोगों की संख्या में वृद्धि। "ई-कॉमर्स" सभी आकारों और आकारों के व्यवसायों के लिए आम हो गया है, आज कोई भी कंपनी जोखिम में है - न कि केवल संचार कंपनियों, क्रेडिट एजेंसियों और स्टॉकब्रोकर जैसे पारंपरिक लक्ष्य।

इंटरनेट

इंटरनेट को आम तौर पर लाखों कंप्यूटरों को जोड़ने वाले एक वैश्विक नेटवर्क के रूप में परिभाषित किया गया है। 190 से अधिक देश डेटा, समाचार और विचारों के आदान-प्रदान से जुड़े हुए हैं। ऑनलाइन सेवाओं के विपरीत, जो डिजाइन द्वारा केंद्रीय रूप से नियंत्रित होती हैं, इंटरनेट विकेंद्रीकृत है। प्रत्येक इंटरनेट कंप्यूटर, जिसे होस्ट कहा जाता है, स्वतंत्र है। ऑपरेटर चुन सकते हैं कि कौन सी इंटरनेट सेवाओं का उपयोग करना है और कौन सी स्थानीय सेवाओं को वैश्विक इंटरनेट समुदाय के लिए उपलब्ध कराना है। उल्लेखनीय रूप से, डिज़ाइन द्वारा यह अराजकता बहुत अच्छी तरह से काम करती है।

सोशल मीडिया

सोशल नेटवर्किंग घटना दुनिया भर में लाखों उपयोगकर्ताओं के जीवन को fuxy रही है। नीलसन (2009) की रिपोर्ट है कि दो-तिहाई इंटरनेट उपयोगकर्ता सोशल नेटवर्किंग और हॉगिंग साइटों का उपयोग कर रहे हैं। सोशल नेटवर्किंग साइटों पर गोपनीयता के खतरों को कम महत्व दिया जाता है, वास्तविकता यह है कि सार्वजनिक क्षेत्र यानी इंटरनेट का मतलब है कि दुनिया भर के लाखों उपयोगकर्ता बेहद खुले और सार्वजनिक वातावरण में बातचीत और सामाजिककरण कर रहे हैं। जब तक सुरक्षात्मक नियंत्रण सक्रिय रूप से उपयोग नहीं किया जाता है, सोशल नेटवर्किंग उपयोगकर्ताओं को अपनी व्यक्तिगत जानकारी पर नियंत्रण खोने का जोखिम होता है, जो बाद में ऑनलाइन गोपनीयता को नष्ट कर देता है। अग्रणी सोशल नेटवर्किंग साइट फेसबुक हाल ही में 500 मिलियन उपयोगकर्ताओं (वॉर्थम, 2010) के मील के पत्थर तक पहुंच गई है। 2006 में वेबसाइट के सार्वजनिक पहुंच मॉडल बनने के बाद से वेबसाइट की वृद्धि असाधारण रही है: फेसबुक, व्हाट्सएप, ट्विटर जैसे कई अन्य वेबसाइट तेजी से विकसित और व्यावसायीकृत हुए हैं, जिससे उपयोगकर्ताओं के लिए नई सुविधाएं और सेवाएं पेश की गई हैं। हालाँकि निरंतर विकास की कीमत उपयोगकर्ता को चुकानी पड़ी है:

उनकी गोपनीयता को नुकसान। उपयोगकर्ता ऑनलाइन सोशल नेटवर्क पर गोपनीयता में खामियों को लेकर बढ़ती चिंता प्रदर्शित कर रहे हैं।

भारत में साइबर कानून की आवश्यकता

जब इंटरनेट का विकास हुआ, तो इंटरनेट के संस्थापकों को इस बात की जरा भी इच्छा नहीं थी कि इंटरनेट खुद को एक सर्वव्यापी क्रांति में बदल सकता है, जिसका दुरुपयोग आपराधिक गतिविधियों के लिए किया जा सकता है और जिसके लिए विनियमन की आवश्यकता होगी। आज साइबरस्पेस में कई परेशान करने वाली चीजें हो रही हैं। इंटरनेट की गुमनाम प्रकृति के कारण, बिना किसी दंड के विभिन्न प्रकार की आपराधिक गतिविधियों में शामिल होना संभव है और बुद्धिमान लोग साइबरस्पेस में आपराधिक गतिविधियों को जारी रखने के लिए इंटरनेट के इस पहलू का घोर दुरुपयोग कर रहे हैं। इसलिए भारत में साइबर कानून महत्वपूर्ण है क्योंकि यह इंटरनेट, वर्ल्ड वाइड वेब और साइबरस्पेस से संबंधित लेनदेन और गतिविधियों के लगभग सभी पहलुओं को छूता है। प्रारंभ में ऐसा लग सकता है कि साइबर कानून एक बहुत ही तकनीकी क्षेत्र है और इसका साइबरस्पेस की अधिकांश गतिविधियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। लेकिन असल सच्चाई तो ये है कि कुछ भी नहीं सच्चाई से भी आगे हो सकता है. चाहे हमें इसका एहसास हो या न हो, साइबरस्पेस में हर क्रिया और हर प्रतिक्रिया के कुछ कानूनी और साइबर कानूनी दृष्टिकोण होते हैं।

जैसे-जैसे इंटरनेट की प्रकृति बदल रही है और इस नए माध्यम को मानव इतिहास में अब तक विकसित हुए सर्वोत्तम माध्यम के रूप में देखा जा रहा है, साइबरस्पेस में आपकी हर गतिविधि में साइबर-कानूनी परिप्रेक्ष्य हो सकता है और रहेगा। जिस समय आप अपना डोमेन नाम पंजीकृत करते हैं, उस समय तक जब आप अपनी वेब साइट स्थापित करते हैं, उस समय तक जब आप अपनी वेबसाइट का प्रचार करते हैं, उस समय तक जब आप ईमेल भेजते और प्राप्त करते हैं, उस समय तक जब आप उक्त साइट पर इलेक्ट्रॉनिक वाणिज्य लेनदेन करते हैं, हर समय, विभिन्न साइबर कानून मुद्दे शामिल होते हैं। हो सकता है कि आज आप इन मुद्दों को लेकर परेशान न हों क्योंकि आपको लग सकता है कि ये आपसे बहुत दूर हैं और इनका आपकी साइबर गतिविधियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। लेकिन देर-सबेर आपको सख्ती बरतनी होगी।

साइबर कानूनों के लाभ

आईटी अधिनियम 2000 पुराने कानूनों को बदलने का प्रयास करता है और साइबर अपराधों से निपटने के तरीके प्रदान करता है। हमें ऐसे कानूनों की आवश्यकता है ताकि लोग दुरुपयोग के डर के बिना क्रेडिट कार्ड के माध्यम से नेट पर खरीदारी लेनदेन कर सकें। अधिनियम अत्यंत आवश्यक कानूनी ढाँचा प्रदान करता है ताकि जानकारी को केवल इस आधार पर कानूनी प्रभाव, वैधता या प्रवर्तनीयता से वंचित न किया जाए कि यह इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड के रूप में है।

भारत में ई-कॉमर्स के दृष्टिकोण से, आईटी अधिनियम 2000 और इसके प्रावधानों में कई सकारात्मक पहलू शामिल हैं। सबसे पहले, ई-व्यवसायों के लिए इन प्रावधानों का निहितार्थ यह होगा कि ईमेल अब हमारे देश में संचार का एक वैध और कानूनी रूप होगा जिसे अदालत में विधिवत प्रस्तुत और अनुमोदित किया जा सकता है।

कंपनियां अब अधिनियम द्वारा प्रदान किए गए कानूनी बुनियादी ढांचे का उपयोग करके इलेक्ट्रॉनिक वाणिज्य करने में सक्षम होंगी।

यह अधिनियम प्रमाणित प्राधिकारी बनने के व्यवसाय में कॉर्पोरेट कंपनियों के प्रवेश के लिए दरवाजे खोलता है।

डिजिटल हस्ताक्षर प्रमाणपत्र जारी करना। अधिनियम अब सरकार को अधिसूचना जारी करने की अनुमति देता है।

भारत में ई-कॉमर्स के दृष्टिकोण से, आईटी अधिनियम 2000 और इसके प्रावधानों में कई सकारात्मक पहलू शामिल हैं। सबसे पहले, ई-व्यवसायों के लिए इन प्रावधानों का निहितार्थ यह होगा कि ईमेल अब हमारे देश में संचार का एक वैध और कानूनी रूप होगा जिसे अदालत में विधिवत प्रस्तुत और अनुमोदित किया जा सकता है।

कंपनियां अब अधिनियम द्वारा प्रदान किए गए कानूनी बुनियादी ढांचे का उपयोग करके इलेक्ट्रॉनिक वाणिज्य करने में सक्षम होंगी।

अधिनियम कंपनियों को स्वामित्व या नियंत्रण वाले किसी भी कार्यालय, प्राधिकरण, निकाय या एजेंसी के साथ इलेक्ट्रॉनिक रूप में किसी भी फॉर्म, आवेदन या किसी अन्य दस्तावेज़ को ऐसे इलेक्ट्रॉनिक फॉर्म के माध्यम से दाखिल करने में सक्षम बनाता है जो उपयुक्त सरकार द्वारा निर्धारित किया जा सकता है।

आईटी अधिनियम सुरक्षा के महत्वपूर्ण मुद्दों को भी संबोधित करता है, जो इलेक्ट्रॉनिक लेनदेन की सफलता के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। अधिनियम ने सुरक्षित डिजिटल हस्ताक्षर की अवधारणा को एक कानूनी परिभाषा दी है जिसे बाद की तारीख में सरकार द्वारा निर्धारित सुरक्षा प्रक्रिया की एक प्रणाली के माध्यम से पारित करना आवश्यक होगा।

आईटी अधिनियम, 2000 के तहत, अब कॉरपोरेट्स के लिए वैधानिक उपाय करना संभव होगा यदि कोई उनके कंप्यूटर सिस्टम या नेटवर्क में सेंध लगाता है और नुकसान पहुंचाता है या डेटा कॉपी करता है। अधिनियम द्वारा प्रदान किया गया उपाय मौद्रिक क्षति के रूप में है।

निष्कर्ष

सोशल मीडिया को किसी भी वेबसाइट या सॉफ़्टवेयर के रूप में वर्णित करते हैं (विशेष रूप से वह सॉफ़्टवेयर शामिल है जो उपयोगकर्ता को सामाजिक अपडेट, सूचनात्मक लेख, टेक्स्ट अपडेट, वीडियो पोस्ट करने या ऑडियो स्ट्रीम करने आदि की अनुमति देता है) जो उपयोगकर्ता को प्राप्त करने और प्रचार करने की अनुमति देता है सूचना या डेटा अंतःक्रियात्मक रूप से कुछ वेबसाइटों के नाम जो हम लेने जा रहे हैं उन्हें किसी परिचय की आवश्यकता नहीं है क्योंकि ये साइटें फेसबुक, ट्विटर, व्हाट्सएप, हाइक, यूट्यूब और कई अन्य हैं। कुछ वेबसाइटें ऑनलाइन गेमिंग और ऑनलाइन मार्केटिंग भी प्रदान करती हैं, ये हैं क्लैश ऑफ क्लैन्स, पोकेमॉन, फ्लिपकार्ट, अमेज़ॅन, ओएलएक्स आदि। ये वेबसाइटें उपयोगकर्ताओं को एक ऑनलाइन प्रोफ़ाइल बनाने की अनुमति देती हैं, जिसमें उनकी व्यक्तिगत और व्यावसायिक जानकारी होती है और यह जानकारी संभावित सोने की खान के रूप में काम करती है। साइबर अपराधियों के लिए क्योंकि वे इन विवरणों को वित्तीय अवसरों में बदल देते हैं। यहां साइबर अपराध होता है और परिभाषा के अनुसार कंप्यूटर का उपयोग करके इंटरनेट पर किया जाने वाला अपराध होता है।

संदर्भ सूची -

- https://m_jagran.com
- https://www.dristiias.com
- https://en-wikipedia.org
- स्मिथ, जे (2018) "डिजिटल पुस्तकालय : उन्नति और चुनौतियां" सूचना प्रौद्योगिकी जर्नल, 27 (2) 45-68।
- श्रीवास्तव सुरेंद्र सहाय, (2016) "अपराधशास्त्र, दंडशास्त्र एवं पीड़ितशास्त्र", एशिया लॉ हाउस, हैदराबाद।
- सुमन स्वर्ण, (2014) "सोशल मीडिया संपर्क क्रांति", नई दिल्ली।
- नवर्य महेश, (2008) "साइबर और समाज : आधुनिक भारत के संदर्भ में", रावत प्रकाशन, गुजरात।

ज्ञानात्मक समाज मे शिक्षा एंव शिक्षक की भूमिका व उसकी उपादेयता

अनामिका गुप्ता
शोध छात्रा
जगतपुर पी.जी.कॉलेज,जगतपुर, वाराणसी
डॉ निलय
प्रोफेसर
जगतपुर पी.जी.कॉलेज,जगतपुर,वाराणसी

सारांश

प्राचीन काल से भारत को ज्ञान की भूमि माना गया है। हमारा संगीत, नृत्य, वास्तु कला, साहित्य, विश्व सनातन आत्मा एवं सांस्कृतिक विरासत के उदाहरण है। इसके साथ–साथ भारत विज्ञान के आधुनिक साधनों के मूल सिद्धांतों का उद्गम स्थल भी रहा है। 'ज्ञानी समाज' में ज्ञान उपलब्धि के लिए ज्ञान के स्रोतों तक की पहुंच का अपना ही महत्त्व है। 'ज्ञानी समाज' की तुलना में आज का समाज अभी भी मौखिक और प्रकाशित स्रोतों पर अत्यधिक आश्रित है। रूढ़िवादी समाज ने आज की प्रौद्योगिकी–आधारित सम्प्रेषण माध्यमों को मन से स्वीकार नहीं किया है। इस परिस्थिति में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। ज्ञान सदा से ही विभिन्न समाजों का अभीष्ट रहा है। आज का ज्ञानी समाज व्यापक जन प्रतिभागिता, प्रजातांत्रिक स्वरूप, ज्ञान वृद्धि की द्रुत गति एवं टेक्नोलॉजी की उत्कृष्टता के कारण प्राचीन व मध्यकालीन समाजों से भिन्न है जिनमें प्रतिभागिता केवल अभिजात वर्ग तक ही सीमित थी।

मुख्य शब्द– ज्ञानात्मक समाज, व्यक्तित्व, नवाचार, संप्रेषण

प्रस्तावना

'ज्ञानी समाज' की चर्चा सर्वप्रथम पीटर ड्रकर ने 1969 में की थी परन्तु इसका वर्तमान स्वरूप केवल 1990 में ही स्पष्ट हो पाया। उसके पहले आर. एम. हचिन्स ने 'सूचना' आधारित समाजों की चर्चा की थी। तब ऐसा माना गया कि सूचना अपने में पर्याप्त है और सबसे अधिक सूचना रखने वाला व्यक्ति या समाज अपने में सबसे अग्रणी होगा। उन्होंने यह भी माना था कि जहां शिक्षा का सर्वाधिक विस्तार है वहीं शिक्षा–सुलभ समाज अपने में ज्ञानी हो जायेगा। कहने का अर्थ है कि शिक्षा विस्तार और उसकी सुलभता अपने में एक मानदंड बन जायेगा। इसका यह अर्थ नहीं कि 'गुणवत्ता' की चिन्ता ही छोड़ दी जाये या उसको उपेक्षा की जाये। लगभग इसी समय दो और विचारों का जन्म हुआ। उनमें एक विचार था 'सीखने वाले समाज' और दूसरा था 'जीवन–पर्यन्त' शिक्षा। वैसे भी सामान्य रूप से मनुष्य सदैव सीखता ही रहता है यद्यपि कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि हमारी शिक्षा अब समाप्त हो गई है। आज 'ज्ञानी समाज' प्रत्येक समाज ('विकसित' तथा 'अविकसित') का मुख्य उद्देश्य बन गया है। समाज में ज्ञान के हर आयाम या क्षेत्र की अपनी उपादेयता है। अतः ज्ञानी समाज में व्यावहारिक, सैद्धांतिक, कौशल आधारित सभी प्रकार के ज्ञान में उत्कृष्टता पर बल दिया जाता है। आज के ज्ञानी समाज का शिक्षक मानवीय संवेदना से परिपूर्ण होने के साथ–साथ स्वयं नित नवीन ज्ञान के साथ कदमबद्ध होना चाहिए। वह विद्यार्थी को प्रस करना सिखाये, जिज्ञासु बनाये। विभिन्न स्रोतों से सूचनाओं को छांटना, विभेद करना व वर्गीकृत करना सिखाये तथा सूचना से ज्ञान की सीढ़ी तक चढ़ने की कला में दक्ष बनाये। विद्यार्थी को सही–गलत में अंतर करना सिखाकर स्वयं निर्णय लेने में पारंगत करे। तर्क का प्रशिक्षण दे। सम्प्रेषण (कौशल, प्रक्रिया, कला) में कुशल बनाये। यूनेस्को रिपोर्ट (2002) के अनुसार शिक्षक विद्यार्थी को टेक्नोलॉजी निष्णात, तर्कपूर्ण तथा सामाजिक दायित्व के प्रति

संवेदनशील भी बनाये। शिक्षक प्रश्नोत्तर, तर्क, नवाचार को बढ़ावा देने वाली विधियों का प्रयोग, व्यक्तिगत विभिन्नताओं को स्वीकृति, विभिन्न दृष्टिकोणों को स्वीकृति देने वाली विधियों व दृष्टिकोण को अपनायें। शिक्षक को स्वयं भी औसत से अधिक तीक्ष्ण समझ व नवीनतम सूचना से लैस होना पड़ेगा।

अध्यापक का समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान होता है वह उस धुरी के समान है जो बौद्धिक परम्पराओं व तकनीकी क्षमताओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित करता है और सभ्यता की ज्योति को प्रज्ज्वलित करता है। डॉ. राधाकृष्णनन,'एक शिक्षक ही विद्यालय तथा शिक्षा–पद्धति की वास्तविक गत्यात्मक शक्ति है। यह सत्य है कि विद्यालय में पाठ्यक्रम, पाठ्य–पुस्तकें आदि शैक्षिक कार्यक्रम में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं, परंतु जब तक उन्हें अच्छे व योग्य शिक्षक द्वारा जीवन–शक्ति प्रदान नहीं की जायेगी तब तक वे निरर्थक रहेंगी। शिक्षक ही वह शक्ति है जो प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से समाज पर अपना प्रभाव डालती है। कहा भी गया है कि यदि किसी समाज को देखना है तो उस समाज के शिक्षकों पर दृष्टि डाल लीजिए। कहने का तात्पर्य है कि मानव समाज व देश की उन्नति उत्तम शिक्षकों पर निर्भर है,किन्तु क्या आज के शिक्षक द्वारा ज्ञानी समाज का निर्माण हो रहा है। ज्ञानी समाज से तात्पर्य है एक ऐसा समाज जिसमें पूर्णतः साक्षरता हो, समाज में सुख– शांति व समृद्धि हो, हमारी सभ्यता व संस्कृति उन्नत हो, साथ ही उसमें सामाजिक भावनाओं, संवेदनाओं का विकास हो, सामाजिक चेतना हो। क्योंकि जो कुछ भी पूर्णता के लिए है वही ज्ञान है। आज का समाज एवं हमारी शिक्षा–व्यवस्था भी इसी प्रकार की है, शिक्षा संस्थाएं अपना हित देख रही हैं। शिक्षक को एक माध्यम बना दिया गया है। इसके फलस्वरूप शिक्षण स्तर में दिन–ब–दिन गिरावट आ रही है। छात्रों को उससे कितना लाभ हो रहा है, वह शिक्षा छात्र जीवन के लिए कितनी महत्त्वपूर्ण है, समाज लिए कितनी महत्त्वपूर्ण है तथा समाज का कितना विकास हो रहा है, इससे किसी को कोई सरोकार नहीं है'।

आज की शिक्षा व्यक्ति को पेशेवर बना रही है। वह व्यक्ति के अनुभव को महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं देती। हमें ज्ञानी समाज को मशीनी समाज नहीं बनाना। शिक्षा का विकास शून्य में नहीं हो सकता। यदि हम शिक्षा का सही रूप विकसित करन चाहते हैं, समाज को उन्नत एवं ज्ञानी समाज का रूप देना चाहते हैं तो शिक्षक को ठीक प्रकार से शिक्षित व प्रशिक्षित करने की व्यवस्था करनी होगी। शिक्षित शिक्षक के बिना यह समाज उस पाषाण के सदृश्य है जिसमें जीवन नहीं अर्थात हम कह सकते हैं कि वह शिक्षक शिक्षित नहीं है या वह सही अर्थों में शिक्षक नहीं है। ज्ञानी समाज में शिक्षा का अर्थ–जो कुछ हम नहीं जानते वह सिखलाना नहीं है वरन् यह सिखलाना है कि हम वैसा व्यवहार व आचरण करें जैसा कि हम नहीं करते, किन्तु करना चाहते हैं।

शिक्षक–शिक्षा एक समाज के लिए उसी प्रकार है जिस प्रकार एक शिल्पी के लिए संगमरमर का खण्ड होता है। जिस प्रकार एक चतुर शिल्पी उस खण्ड से जैसी प्रतिमा चाहता है गढ़ लेता है, ठीक उसी प्रकार शिक्षित शिक्षक के द्वारा एक बालक का निर्माण होगा, उसके चरित्र व नैतिकता का विकास होगा जिसके फलस्वरूप ज्ञानी समाज का निर्माण होगा। जिस प्रकार जीवन के लिए शिक्षा आवश्यक है उसी प्रकार ज्ञानी समाज के लिए शिक्षक–शिक्षा आवश्यक है। यह एक ऐसा यंत्र है जो शिक्षक में न केवल उसके निहित गुणों का विकास करेगा बल्कि उसमें जनतांत्रिकता, उदारता, समानता, न्याय आदि की भावना की स्थापना, पोषण व विकास करेगा। शिक्षा पल–पल, घड़ी घड़ी, दिन–दिन करके विस्तृत ज्ञान का स्वामित्व करने की एक सधैर्य प्रक्रिया है और एक शिक्षक ही शिक्षा के पुनः निर्माण की कुंजी है। शिक्षा–पद्धति की कुशलता शिक्षकों की योग्यता पर निर्भर है, अच्छे शिक्षकों के अभाव में सर्वोतम शिक्षा–पद्धति का असफल होना अवश्यम्भावी है। अतः शिक्षक– शिक्षा के माध्यम से ही शिक्षा पद्धति के दोषों को दूर कर सकते हैं।

शिक्षक एक धुरी के समान है जिसके चारों ओर सम्पूर्ण शिक्षा–प्रणाली चक्कर लगाती है। अतः उत्तम शिक्षक–शिक्षा प्राथमिक स्तर से ही आवश्यक है क्योंकि एक शिक्षक इसी स्तर पर बालक की नींव तैयार करता है। जिस ज्ञानी समाज की हम कल्पना कर रहे हैं उसकी नींव प्राथमिक स्तर से ही डालनी होगी। उच्चतर माध्यमिक स्तर पर शिक्षक दिशा प्रदान करता है, और स्नातक स्तर पर सहायता मात्र करता है।विकास के लिए तथा भविष्य में शिक्षा–व्यवस्था को उन्नत बनाने के लिए उत्तम अतः छात्रों को पूर्णता प्रदान करने के लिए, विद्यालय तथा समाज के पूर्ण शिक्षक–शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है।

शिक्षा जीवन के विकास का साधन एवं साध्य है। शिक्षा मानवत्व का आधार है। पशु और मानव में मूलभूत अन्तर है कि पशु–पक्षी जीवन जीने की योग्यता के साथ जन्म लेते हैं। चिड़ियां चहचहाती हुई उड़ती हैं, मछली तैरती है, थलचर भूमि पर चलते हैं, परंतु हमें जीने के लिए सब कुछ परिवार व समाज से सीखना पड़ता है। शिक्षा हमें अनेक क्षेत्रों में शिखर पर प्रतिष्ठित कर देती है। आकाश, जल, थल सर्वत्र विचरण योग्य बना देती है। ज्ञान की अथाह अगम्य खोज जीने की कला में निपुण बना देती है। शिक्षा द्वारा भौतिक जीवन निखरता है, ज्ञान द्वारा आत्मिक आनंद प्राप्त होता है। शिक्षा से बुद्धि सूक्ष्म होती है। चिंतन का आयाम व्यापक होता है।शिक्षा प्रदान करने के मूल स्रोत शिक्षक होते हैं। जैसा स्रोत वैसी धारा। वर्तमान परिवेश में आपा–धापी, तनाव, मूल्यहीनता की बात बार–बार दोहराई जाती है। इसका कारण क्या है ? इसका उत्तर जीवन के व्यापक परिवेश में निहित है। प्राचीन काल में शिक्षक नहीं गुरु होते थे, जिनके निस्पृही, संयत, आनंदी, जिज्ञासु, निष्कामी व्यक्तित्व का सान्निध्य शिष्यों को ज्ञान के साथ–साथ जीने की ऊर्जा भी प्रदान करता था, परंतु आज की स्थिति विपरीत है।

ज्ञानात्मक समाज

ज्ञानात्मक समाज ज्ञान में रुचि रखने वाले व्यक्तियों का एक औपचारिक संघ है जो कि अपने सम्मिलित ज्ञान का प्रभावकारी प्रयोग करने का प्रयास करते हैं और ज्ञान की इस प्रक्रिया में अपने नवीन ज्ञान का योगदान देने का प्रयास करते हैं। ज्ञानात्मक समाज में मनोवैज्ञानिक रूप में तकनीकियों के प्रयोग द्वारा सीखने, तर्क करने तथा अनुभव करने के अवसर प्राप्त होते हैं। ज्ञानात्मक समाज की मुख्य विशेषता है कि ज्ञानात्मक समाज में ज्ञान किसी भी मानवीय क्रिया को सम्पन्न करने वाला मुख्य तत्त्व है। समाज में सम्पन्न होने वाली आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और अन्य सभी मानवीय क्रियाओं की प्रभावशीलता, समाज में व्याप्त ज्ञान व जानकारी पर निर्भर करती है। अतः ज्ञानात्मक समाज वह है जिसमें ज्ञान एक मुख्य सृजनात्मक बल है, चाहे वह मानवीय क्रिया के किसी भी पक्ष से सम्बन्धित हो।ज्ञानात्मक समाज में तकनीकी की महत्त्वपूर्ण भूमिका है जिसमें स्थानीय भाषा, मेलिंग लिस्ट, वेब पोर्टल, विकीज, चैट रूम, वीडियो कॉन्फ्रेंस, वर्चुअल मीटिंग, दूरस्थ शिक्षा आदि ज्ञान के संचार को प्रभावी बनाते हैं।

वर्तमान तकनीकियों के कारण ज्ञानात्मक समाज में भौगोलिक नजदीकियां उत्पन्न करने में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं आती। वर्तमान तकनीकियों के कारण ही ज्ञान को बांटने, संग्रहित करने तथा अन्वेषण करने की सम्भावना बहुत बढ़ जाती है। आज के ज्ञानात्मक समाज में पुराने पाठ्यक्रम, पुरानी शिक्षण–विधियाँ, पुराने शैक्षिक प्रत्यय अब एकदम असंगत से प्रतीत होते हैं। ज्ञान के इस विकासक्रम के परिणामस्वरूप जहां शिक्षा का स्वरूप बदल रहा है, वहीं कक्षा–कक्ष परिस्थितियां, सीखने की प्रक्रिया, यहां तक कि शिक्षक का स्वरूप भी बदल रहा है। तकनीकी के इस युग में स्व–अध्ययन पद्धतियां विकसित हो रही हैं, जिसमें छात्र स्वतः ही ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। आज विद्यार्थी सीखने के लिए ज्यादा–से–ज्यादा स्वतंत्रता एवं नवीन तकनीकियों से परिपूर्ण वातावरण चाहते हैं। शैक्षिक क्रियाओं का एक बड़ा भाग शिक्षकों की बजाय विद्यार्थियों के द्वारा ही प्रारम्भ किया जाता है और साथ ही नियन्त्रित भी किया

जाता है। इस प्रकार का ज्ञान विद्यार्थियों का केवल ज्ञानात्मक विकास करता है जबकि भावात्मक तथा गत्यात्मक विकास अधूरे ही रह जाते हैं।

शिक्षक वर्तमान आवश्यकता के अनुरूप अपनी भूमिका से अनभिज्ञ है। भावी शिक्षकों को सीखना चाहिए कि वह साधन उपलब्ध कराने वाले (Facilitator) तथा सीखने की क्रिया के प्रबंधक (Manager) के रूप में कैसे कार्य कर सकता है जिससे कि ज्ञानात्मक समाज में शिक्षक व छात्र की भूमिका में संतुलन बना रहे। साथ ही समाज में संचार के स्वरूप समन्वयकारी वातावरण उत्पन्न कर सकें। शिक्षक व छात्र दोनों को यह स्वीकार करना चाहिए कि सीखने के लिए व लक्ष्य– प्राप्ति के लिए दोनों की ही सम्मिलित जिम्मेदारी है। शिक्षक ही शैक्षिक प्रक्रिया की वह कड़ी है जिसके माध्यम से शैक्षिक उद्देश्य एवं पाठ्यक्रम सार्थकता को प्राप्त होते हैं। अतः आज के तकनीकी युक्त ज्ञानात्मक समाज में शिक्षक की उतनी ही सक्रिय भूमिका रहती है जितनी कि परम्परागत शिक्षण–प्रणाली में। आज के डिजिटल युग की सीखने की प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका को हम इस प्रकार समझ सकते हैं –

1. शिक्षक एक शिल्पकार (Sculptor) के रूप में – एक शिल्पकार की तरह शिक्षक महत्त्वपूर्ण सामग्री को प्रस्तुत करने की पूरी जिम्मेदारी लेता है। वह विद्यालय की समय सारणी तथा पाठ्यक्रम को नियन्त्रित करता है। साथ ही विद्यार्थियों के क्रिया–कलापों को भी नियंत्रित करता है। वह बच्चों को अति शीघ्र व सरलता से प्रेरित करने के योग्य होता है। वह कभी–कभी कमजोर विद्यार्थियों के लिए समर्पित रहता है क्योंकि यह उसके कार्य का एक हिस्सा है।

2. शिक्षक एक कलाकार (Entertainer) के रूप में – शिक्षक एक कलाकार की तरह भूमिका अदा करता है। वह यह ध्यान रखता है कि उसकी यह जिम्मेदारी है कि वह अपने विषय में विद्यार्थियों की रुचि उत्पन्न करे तथा विषय के मुख्य बिंदु को समझने योग्य बनाए। वह विद्यार्थियों के साथ सक्रिय संवाद स्थापित करने की कोशिश करता है जिससे कि वे अपने विचारों को प्रस्तुत करने में सक्षम हो सकें। वह पूरी निष्पक्षता से अपने विषय को पढ़ाने तथा अच्छा कार्य करने में रुचि रखता है, मुख्यतःतबजब वह कक्षा में उपस्थित हो।

3. शिक्षक एक कोच (coach) के रूप में – कोच विश्वास करता है कि जो भी कार्य के परिणाम हैं वह उसके प्रत्येक विद्यार्थी द्वारा किए गए कार्य पर निर्भर करते हैं और शिक्षक स्वयं को इस कार्य की गणना करने वाले के रूप में देखता है। वह प्रत्येक विद्यार्थी की पृष्ठभूमि, परिस्थितियां तथा क्षमताएं जानना चाहता है, साथ ही ऐसा वातावरण उत्पन्न करना चाहता है जिसमें विद्यार्थी अपनी क्षमता के अनुसार ज्ञान को प्राप्त कर सकें। वह उन्हें लक्ष्य के बारे में तथा उनकी प्राप्ति की सर्वश्रेष्ठ विधि के बारे में जानकारी देता है। साथ ही शैक्षिक कार्यक्रम की उनके साथ चर्चा करता है। उसे मूल्यांकन प्रणाली का स्पष्ट ज्ञान होता है वह विद्यार्थियों को पृष्ठपोषण देता है तथ। उनकी सभी प्रकार की समस्याओं के समाधान पाने में सहायता करता है।

4. शिक्षक एक प्रबन्धक (Manger) के रूप में शिक्षक अपने कक्षा– कक्ष व कार्यक्रम की व्यवस्था के लिए स्वयं को शिक्षण क्रिया के प्रबंधक के रूप में देखता है। शिक्षक को इस परिप्रेक्ष्य में अपनी जिम्मेदारियों व सीखने की प्रक्रिया से परिचित होना चाहिए। वह व्यक्तिगत भिन्नता के लिए जागरुक होता है और क्या करना है? तथा क्यों करना है? की व्याख्या करने के लिए अधिक समय लेता है। वह एक जनतांत्रिक नेता होता है जो कि सीखने की रणनीति पर विद्यार्थियों के साथ विचार–विमर्श करता है, लेकिन वह यह भी जानता है कि संरचना व प्रबंधन दोनों ही सीखने के लिए आवश्यक हैं।

5. ज्ञानी समाज का प्रधान आश्रय – शिक्षक समाज में राष्ट्रीय पूरक के रूप में प्रधान भूमिका निभाते हैं, विशेष तौर पर ऐसे दूरस्थ इलाकों में जहां आजज्ञानात्मक समाज की शैक्षिक प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिकाभी नवीन तकनीकी ज्ञान का प्रसार नहीं हुआ है, जहां किसी और माध्यम से ज्ञान नहीं दिया जा सकता। साथ ही ऐसे इलाकों के साथ–साथ अन्य तकनीकी युक्त वातावरण में भी ज्ञान को समझने योग्य बनाने में भी शिक्षक की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अतः हम कह सकते हैं कि आज के ज्ञानात्मक समाज में भी शिक्षक सम्पूर्ण शिक्षा प्रक्रिया की रीढ़ के समान एक विशिष्ट व्यक्ति है। वह मित्र, दार्शनिक तथा मार्गदर्शक के रूप में कार्य करता है।

6. सामाजिक अभियन्ता तथा सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में – विज्ञान व तकनीकी के युग में जहां विद्यार्थियों का ज्ञानात्मक पक्ष प्रबल हो रहा है वहीं भावात्मकता का स्थान कम होता जा रहा है। ऐसे में मूल्यों व परम्परागत विश्वासों को नये विचारों व अभ्यासों में समावेश करने का प्रयास शिक्षक ही कर सकता है।

7. शिक्षक एक प्रमुख मार्गदर्शक – प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में शिक्षक के व्यवहार की अमिट छाप होती है। वह बाल्यकाल से ही शिक्षक के गलत या सही कार्य का अनुसरण करना प्रारम्भ कर देता है। इस स्थिति में शिक्षक को एक कुशल मार्गदर्शक के रूप में अपनी भूमिका निभानी चाहिए जिससे कि वह विद्यार्थियों को पूर्ण उत्साह व लगन के साथ प्रगति के मार्ग पर अग्रसर कर सके।

8. शिक्षक राष्ट्र के निर्माणकर्त्ता के रूप में – राष्ट्र का निर्माण नवीन तकनीकियों के समाज में आने से ही नहीं होता बल्कि एक योग्य व प्रशिक्षित अध्यापक के द्वारा इन तकनीकियों का उचित पद्धतियों द्वारा प्रयोग करना भी आवश्यक है। यह कार्य शिक्षक के द्वारा ही सफलतापूर्वक किया जा सकता है। यदि समाज में शिक्षक न हो तो ज्ञानात्मक व तकनीकी वस्तुएं केवल एक उस ढेर के समान होंगी जिनका समाज के लिए कोई उचित उपयोग नहीं हो सकता। अतः कहा जा सकता है कि शिक्षक ही राष्ट्र का वास्तविक रूप में व सही दिशा में निर्माण करता है।

ज्ञान–आधारित सामाजिक व्यवस्था के विकास में शिक्षक का योगदान–

आज के शिक्षा जगत में उत्तरोत्तर विकास पथ पर अग्रसर होने के साथ–साथ कुछ समस्याएं भी प्रकट हो गई हैं जो उसके कर्तव्य में बाधा डालती है उसके पारिवारिक एवं व्यक्तिगत जीवन में कुछ समस्याएं ऐसी उत्पन्न हो जाती है जो अनिवार्य उपलब्धियों को निराकरण व उपेक्षित कर देती है। व्यक्तिगत जीवन में कुछ शिक्षकों के लिए समुचित वातावरण का अभाव खटकता है फिर भी कुछ ऐसी त्रुटियां रह जाती हैं जिनका समाज में कोई विकल्प नहीं है यह अध्यापक की ओर से भी होती है और समाज की ओर भी। अतः यह एक अग्रगामी, उत्साही एवं श्रमनिष्ठ शिक्षक के लिए उसी के अनुरूप वातावरण मिलना अत्यंत आवश्यक है। शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षकों की भूमिका के महत्व को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय नीति में शासन और समुदाय द्वारा ऐसी स्थितियाँ उपस्थित करने पर बल दिया गया है जिससे शिक्षकों को रचनात्मक तथा सृजनात्मक कार्यों के लिए प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मिले और वे शिक्षा के क्षेत्र में नवीन प्रयोग करने में समर्थ हो।

'शिक्षकों को अपने छात्रों के सामने सच्चाई, अच्छाई और नेक विचारों का उच्चतम उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए'।–**डॉ राधाकृष्णन**

'(शिक्षकों का) चरित्र ऐसा होना चाहिए कि वे जो कहते हैं और जो करते हैं उसमें कोई अंतर न हो'। –**डॉ राजेन्द्र**

'शिक्षकों को अपना कार्य धन कमाने का एक अन्तिम साधन नहीं मानना चाहिए बल्कि उसको एक ऐसा मार्ग मानना चाहिए जिससे वे महत्त्वपूर्ण सामाजिक सेवा कर रहे है और अपनी स्वयं–सन्तुष्टि और स्वयं–अभिव्यक्ति को भी प्राप्त कर रहे हैं'।– **माध्यमिक शिक्षा आयोग की रिपोर्ट**

आज का समाज ज्ञानात्मक समाज के नाम से जाना जा रहा है जिसमें दिन पर दि विज्ञान व तकनीकी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। इस कारण आज के युग को डिजिटल युग भी कहते हैं। इस डिजिटल युग के कारण ही शिक्षा के क्षेत्र में निरन्तर ज्ञान का विस्फोट होता जा रहा है जिसके कारण आज का समाज ज्ञानात्मक समाज के रूप में उभर रहा है।

वैदिक काल में अध्यापक का कार्य धनार्जन के लिए नहीं होता था। इस युग का आचार्य अपने भरण–पोषण की चिंता किये बिना नदी के जल तथा सूर्य के प्रकाश की भांति अपने ज्ञान का आलोक समाज में बिखेरता था तथा हजारों चिरागों को रोशनी बांटकर उन जिज्ञासुओं को नई दृष्टि देता था, जो कि शिक्षक द्वारा दिखाएं रास्ते पर चलकर राष्ट्रोत्थान या लोकमंगल के लिए जीवन कार्य में उतरते हैं। व्यकि निर्माण की इस अनुपम सेवा के लिए हमारा प्राचीन राज्य एवं समाज भी शिक्षक की इस अद्‌भुत प्रतिमा के सम्मुख सम्मान एवं श्रद्धा से नतमस्तक होते रहे हैं।

शिक्षण अनवरत ज्ञान संचरण में संलग्न एक क्रिया का नाम है तथा इस क्रिया को करने वाला व्यक्ति शिक्षक कहलाता है। शिक्षक एक दिशा सूचक यंत्र की भाँति कार्य करता है जो विविध सामाजिक–सांस्कृतिक–राजनैतिक झंझावातों से घिरी भावी पीढ़ी का उचित निर्देशन करता है। इस दृष्टि से शिक्षक एक प्रकाश स्तम्भ के समान होता है जो अपने आस–पास सदैव प्रकाश फैलाता है। यह प्रकाश तब और भी प्रकाशमय होता है जब शिक्षक सुसमायोजित, अनुकूल अभिवृत्ति तथा उचित मूल्यों वाला हो। यदि ऐसा नहीं होता है, तो एक शिक्षक का शिक्षण कार्य भी इससे प्रभावित होता है तथा वह प्रभावी ढंग से शिक्षण कार्य नहीं कर पाता।

ज्ञान–आधारित सामाजिक व्यवस्था में शिक्षा–व्यवस्था में सुधार के लिए सुझाव

जब शिक्षकों का अनुकूल व सकारात्मक प्रभाव छात्रों पर पड़ेगा तभी वे आगे चलकर योग्य नागरिक बन पाएँगे तथा राष्ट्र निर्माण में अपनी उचित भूमिका का निर्वहन कर सकेंगे। वर्तमान समय में महिलाएँ भी व्यापक स्तर पर शिक्षण व्यवसाय के क्षेत्र में आ रही हैं। ऐसे में महिला शिक्षकों पर घर एवं बाहरी कार्य क्षेत्रों में कार्य का दबाव बढ़ा है। ऐसे में महिला शिक्षक पुरूष अध्ययनों में भी ऐसा पाया गया है कि घर एवं बाहर के अतिरिक्त कार्यों का दबाव होने के कारण महिला शिक्षक प्रायः तनाव में रहती हैं। इसके साथ ही अत्यधिक व्यस्तता के चलते कभी–कभी वे अपने स्वास्थ्य पर ध्यान नहीं दे पाती है जिसके कारण उन्हें स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ भी हो जाती हैं। संभवतः इन्हीं कारणों से महिला शिक्षकों का समायोजन स्तर पुरूष शिक्षकों से निम्न पाया गया। अतः महिला शिक्षकों पर पारिवारिक, सामाजिक, व्यावसायिक दायित्वों को देखते हुए यदि उन्हें कुछ अतिरिक्त सुविधाएँ जैसे वाहन, पालनाघर आदि प्रदान की जाए ताकि उनके कार्यों के तनाव को कम किया जा सके। इसके अतिरिक्त समस्त शिक्षकों के समायोजन को बेहतर बनाने के लिए उन्हें निर्देशन एवं परामर्श जैसी सुविधाएँ देना आवश्यक है ताकि कोई समस्या सामने आने पर शिक्षक उन्हें हल करने के लिए उचित परामर्श प्राप्त कर सकें। इससे शिक्षकों के समायोजन स्तर में सुधार आएगा। अध्ययन में महिला शिक्षकों की व्यावसायिक अभिवृत्ति पुरूष शिक्षकों की तुलना में अनुकूल पायी गई है। छात्र केन्द्रित अभ्यास पर महिला शिक्षक पुरूष शिक्षकों से सार्थक रूप से उच्च पायी गई. अर्थात शिक्षण कार्य के दौरान महिला शिक्षक छात्रों को अधिक महत्व देती है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि महिला शिक्षकों को अधिकाधिक शिक्षण कार्य हेतु अभिप्रेरित किया जाना चाहिये। इससे शिक्षण में अवश्य सुधार होगा।

शिक्षकों में आर्थिक मूल्य निम्न होता है उनमें समायोजन एवं व्यावसायिक अभिवृत्ति उच्च होती है। ठीक इसके विपरीत यदि आर्थिक मूल्य उच्च है तो समायोजन एवं व्यावसायिक अभिवृत्ति निम्न होगी। संभवतः ऐसा इसलिए पाया गया है क्योंकि यदि शिक्षक अपने आर्थिक हितों के प्रति चिन्तित रहेगे तो

उनकी शिक्षण कार्य में रूचि कम होगी इसके फलस्वरूप उन्हें तनाव होता है जिससे उनका समायोजन प्रभावित होता है।मसामाजिक जिम्मेदारी की भावना का पोषण करके, शिक्षक अगली पीढ़ी को सामाजिक रूप से जागरूक व्यक्ति बनने के लिए प्रेरित करते हैं जो अपने समुदायों की बेहतरी के लिए सक्रिय रूप से काम करते हैं।

पूर्व में हुए अधिकांश शोधों के विपरीत प्रस्तुत अध्ययन पुरुष शिक्षकों की तुलना में महिला शिक्षकों में आर्थिक मूल्य सार्थक रूप से उच्च पाया गया। यह वर्तमान समय में महिला शिक्षकों की आत्मनिर्भरता की आकांक्षा की ओर संकेत करता हैं। साथ ही यह हमारे समाज की परिवर्तित होती प्रवृत्तियों का भी द्योतक है। शिक्षकों के समायोजन एवं व्यावसायिक अभिवृत्ति में अपेक्षित सुधार की आवश्यकता है, इससे शिक्षकों के शिक्षण स्तर में सुधार आएगा। इसके साथ ही आर्थिक मूल्य का शिक्षकों के समायोजन एवं व्यावसायिक अभिवृत्ति पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है, अतः इसमें सुधार हेतु प्रयास किया जाना चाहिये।

निष्कर्ष

अब समाज इक्कीसवीं सदी में साँस ले रहा है जिसमें तकनीकी युक्त ज्ञानात्मक समाज का बोलबाला है। ऐसी परिस्थितियों में शिक्षा का कोई भी तंत्र उसके शिक्षकों के स्तर से ऊपर उठकर उन्नति नहीं कर सकता। हम चाहे कितने भी उत्तमविद्यालय भवन, तकनीकीयुक्त पूर्ण सुविधा–सम्पन्न प्रयोगशाला तथा पुस्तकालय, कुशल तकनीकी युक्त प्रशासन–व्यवस्था तथा ज्ञानात्मक समाज की आवश्यकता के अनुकूल पाठ्यक्रम की व्यवस्था कर लें, यदि शिक्षक अपने व्यवसाय से उदासीन है तो ये सभी सुविधाएं या तो कम काम में लाई जाएगी या फिर उनका दुरुपयोग होगा। अतः शिक्षा का सम्पूर्ण तंत्र शिक्षकों से प्रभावित होता है। शिक्षकों का दायित्व है कि वे ज्ञानात्मक समाज में अपनी भूमिका को समझकर एक ओर ज्ञान, विज्ञान व तकनीकी के विकास और अनुसंधान की आवश्यकताओं को पूर्ण करें और दूसरी ओर राष्ट्रीय अपेक्षाओं को ध्यान में रखकर संतुलित शिक्षा का स्वरूप विकसित करें जिससे कि शिक्षा ज्ञान का साधन बने और राष्ट्रीय कल्पनाओं को मूर्त रूप देने हेतु संबल बने तभी एक सम्पूर्ण ज्ञानात्मक समाज की स्थापना हो सकेगी। इसी ज्ञानात्मक समाज में व्यक्तियों का ज्ञानात्मक, भावात्मक व गत्यात्मक तीनों प्रकार का विकास सम्भव हो सकेगा।

सन्दर्भ सूची–

• अग्रवाल, जे. सी. (2010) 'विकासशील समाज मे शिक्षक और शिक्षा',विकास प्रकाशन गृह,नई दिल्ली।

• सिन्हा, मंजरी डॉ सिंधू, आई एस (2020),'विकासोन्मुख भारतीय समाज मे शिक्षा तथा शिक्षक की भूमिका' श्री विनोद पुस्तक भंडार।

• कुमार,विमल (2017),'शिक्षा और समाज',ग्रीन लीफ प्रकाशन।

• शर्मा ,के,के (2022),'आधुनिक समाज में शिक्षा का महत्व',महावीर एंड संस, नई दिल्ली ।

• डॉ, जिंदल संजय , (जून 2021) ' बच्चों के व्यक्तित्व विकास मे शिक्षक की भूमिका',इंडियन जर्नल ऑफ रिसर्च vol. 10 ISSN NO 2250

• www.hi.vikaspedia.in

• www.dristiias.com

सामाजिक एकता व समरसता को बढ़ाने में महाकुंभ का योगदान : एक विश्लेषण

डॉ0 कंचन
एसो0 प्रोफेसर, समाजशास्त्र
स्वामी करपात्री जी महाराज राजकीय पी0जी0 कालेज
रानीगंज,प्रतापगढ़।
एवं
डॉ0 सतीश चन्द्र जैसल
असि0 प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार
उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सारांश :

महाकुम्भ केवल एक धार्मिक आयोजन नहीं है बल्कि यह सामाजिक एकता को भी परिलक्षित करता है। इसमें विभिन्न जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्र के लोग इकत्र होकर सामाजिक एकता और सद्भाव का संदेश देते हैं। यह आयोजन सामाजिक भेदभाव को मिटाने और मानवता को एकसूत्र में बांधने के कार्य के रूप में देखा जा सकता है। महाकुम्भ आयोजन के दौरान कुछ समस्यायें उत्पन्न होती हैं जैसे भीड़ प्रबन्धन, सफाई, स्वास्थ्य सेवायें एवं यातायात व्यवस्था। इन चुनौतियों का समाधान प्रशासन और समाज के सहयोग से किया जाता है।

महाकुम्भ आयोजन सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने के साथ–साथ सामाजिक समस्याओं को पहचानने और सुधारने का अवसर भी प्रदान करता है। इसके अलावा महाकुम्भ में सेवा दान और सहिष्णुता की भावना को बल मिलता है जिससे समाज में परस्पर सहयोग की संस्कृति विकसित होती है। इस प्रकार महाकुम्भ सामाजिक एकता और समरसता को सशक्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

शब्द कुंजी : सामाजिक एकता, समरसता, महाकुम्भ, भीड़ प्रबन्धन

कुम्भ भारत की धार्मिक आस्था और सांस्कृतिक चेतना का महापर्व है। कुंभ मेला भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख धार्मिक और सांस्कृतिक आयोजन है। इस अवसर पर एक स्थान पर एक समय में और एक साथ सम्पूर्ण भारत का दर्शन किया जा सकता है। कुम्भ लौकिक जीवन को फलदायी बनाता है, इसकी संकल्पना भारतीय साहित्य में प्राचीन काल में ही बहुत व्यापक रूप से प्राप्त होती है। कुम्भ अध्यात्मिक उन्नति के साथ ही जीवन का प्रवाह माना जाता है। कुम्भ जल और जीवन के सम्बन्ध को परिलक्षित करता है। सनातन धर्म में कुंभ मेले का विशेष महत्व है क्योंकि यह भक्ति अनुष्ठान, अनुशासन और कठोर तप का प्रतीक माना जाता है। यह यह मेला लगभग एक माह तक चलता है जिसमें आम लोगों से लेकर हर तरह के साधु–संत शामिल होकर भक्ति, तप और अनुष्ठात करते हैं। इसका आयोजन विशेष रूप से चार प्रमुख स्थानों प्रयागराज, (इलाहाबाद), हरिद्वार, उज्जैन और नासिक में होता है। प्रयागराज महाकुम्भ में त्रिवेणी संगम के तट स्नान का विशेष महत्व है। इस त्रिवेणी (गंगा, यमुना, सरस्वती) संगम पर स्नान करने को शाही स्नान के नाम से जाना जाता है। ऐसी धार्मिक मान्यता है कि महाकुंभ, कुम्भ और अर्द्धकुम्भ के दौरान त्रिवेणी संगम में स्नान करने से जातक को मोक्ष की प्राप्ति होती है। और पापों से छुटकारा मिल जाता है। शाही स्नान के दौरान करोड़ों श्रद्धालुओं का एक साथ स्नान करना समाज में धार्मिक एकता और सामूहिकता का संदेश देता है।यह भारतीय संस्कृति की महानता और उसकी परंपरा को भी दर्शाता है। महाकुंभ का यह मेला न केवल धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह सामाजिक एव समरसता को भी बढ़ावा देता है। इस मेले में विविध जाति, वर्ग, समुदाय और सांस्कृतिक पृष्ठिभूमि के लोग

एक साथ श्रद्धा के साथ शामिल होते हैं जिससे समाज में सामाजिक सौहार्द्ध और भाईचारे की भावना विकसित होती है।

महाकुंभ में जाति वर्ग, भाषा क्षेत्र आदि से परे जाकर सभी लोग स्नान, पूजा और धार्मिक अनुष्ठान करते हैं जिससे सामाजिक कुरीतियां कमजोर पड़ती है। इस मेले में विविध संत, महात्मा, विद्वान, और समाज सुधारकों का भी संगम होता है। जो समाज में एकता, समरता, शांति और सद्भाव पर विचार व्यक्त करते हैं। महाकुंभ में भारत के विविध क्षेत्रों से लोग आते हैं जिससे सांस्कृतिक आदान प्रदान भी होता है, जिससे राष्ट्र की सांस्कृतिक विविधता एकता के सूत्र में वध जाती है। यहाँ आयोजित होने वाले प्रवचन, सत्संग एवं धार्मिक चर्चाओं में शान्ति, सहिष्णुता और अहिंसा का संदेश फैलाने वाले विचारों का प्रसार होता है। महाकुम्भ समाज को ऐसा मंच प्रदान करता है जहां विविध भाषा–भाषी क्षेत्र परंपराओं एवं रीति–रिवाजों के लोग आपस में मिलकर एक नई सामाजिक पहचान बनाते हैं। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में यह मेला केवल हिन्दू समाज तक सीमित नहीं रह गया है बल्कि अन्तरर्राष्ट्रीय स्तर पर भी इसकी पहचान बन चुकी है। देश ही नहीं अपितु विदेशी भी अब यहां आकर आध्यात्मिक ऊर्जा का अनुभव करते हैं। इससे धार्मिक एवं सामाजिक समरसता को काफी बल मिलता है। इस मेले के आयोजन के समय कई सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाएं सेवा का काम करती हैं। जैसे निःशुल्क पेयजल एवं भोजन वितरण, स्वास्थ्य सुविधाएं एवं सुरक्षा व्यवस्था जो समाज में एक दूसरे के प्रति सहयोग एवं परोपकार की भावना को प्रोत्साहित करता है।

कुंभ में अमीर एवं गरीब सभी एक साथ स्नान करते हैं और विविध धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेते हैं जिससे धार्मिक भेदभाव की भावना कम होती है। समरसता का तात्पर्य ही है समाज में समता, भाईचारा और एकजुटता स्थापित करना यह एक ऐसा भाव है जिसमें वर्गो, जातियों, समुदायों और विभिन्न आर्थिक स्तरों के लोग परस्पर सहयोग और सम्मान के साथ जीवन व्यतीत करें। समरसता, सामाजिक भेदभाव मिटाने और समाज में सभी को समान अवसर प्रदान करने पर बल देती है। यह आयोजन समरसता का प्रतीक इसलिए भी माना जाता है क्योंकि इसमें सभी जाति, धर्म और समाज के लोग एक समान आस्था के साथ भाग लेते हैं। अब महाकुंभ में हर जाति एवं वर्ग के लोग एक ही घाट पर स्नान करते है और एक ही स्थान पर पूजा–पाठ करते हैं। जिससे यह लोगों को एक साथ जोड़ने और सांस्कृतिक पहचान को सशक्त बनाने में मदद करता है। विविध संत अपने प्रवचन में समरसता एवं एकता का संदेश देते है। कुंम मेले में करोड़ो श्रद्धालु परस्पर सेवाभाव से एक–दूसरे की मदद करते हैं, जिससे सामाजिक एकता सौहार्द और समरसता का प्रसार होता है। भारत की अपनी एक समृद्ध सांस्कृतिक विरासत ''विविधता में एकता'' भारतीय संस्कृति की पहचान रही है। कुंभ मेला इसकी अभिव्यक्ति है। वर्तमान समय में कुम्भ मेला अपने धार्मिक महत्व के अलावा सद्भाव और सह – अस्तित्व का वैश्विक प्रतीक भी बन गया है। यूनेस्कों द्वारा एक अमूर्त सांस्कृतिक विरासत के रूप में मान्यता प्राप्त यह उत्सव अन्तर्राष्ट्रीय आगंतुकों को आकर्षित करता है। जो इसकी जीवंतता और आध्यात्मिकता का अनुभव करने के लिए आते है। यह विविधता के बीच एकता की संभावना के बारे में दुनिया को एक शक्तिशाली संदेश के रूप में कार्य करता है। इस मेले में विभिन्न पृष्ठभूमि, विश्वास, धर्म और क्षेत्रों में लोग एक साथ आकर अपने अनुभवों को एक–दूसरे से साझा करते है। यह इस बात का जीवन्त प्रमाण है कि कैसे विविधता एक सामंजस्यपूर्ण और एकीकृत वातावरण व सह–अस्तित्व मे रह सकती है। भारत के उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम के लोग अपने क्षेत्रीय नृत्य भाषाएं और रीति–रिवाज लेकर आते हैं। लोक संगीत पारंपरिक वाद्ययंत्र और क्षेत्रीय कलाओं का प्रदर्शन किया जाता है। भारत का विशाल सांस्कृतिक ताना–बाना कुंभ मेले में परिलक्षित होता है, जहाँ देश के विभिन्न क्षेत्रों के लोग, विविध भाषा, पाककला और परम्पराओं का प्रतिनिधित्व करते हुए एक साथ आते हैं। नदी में

स्नान करने प्रार्थना और आध्यात्मिक अभ्यास में शामिल होने की साझा रस्म सभी उम्र के लोगों के लिए जुडने का एक साझा आधार बनाती है। पीढ़ियों की विविधता आध्यात्मिक चिंतन के सामूहिक अनुभव में बुनी गई है, जहाँ ध्यान एक सामान्य आध्यात्मिक उद्देश्य पर केन्द्रित है।

कुम्भ मेले का आयोजन सम्बन्धी इस शोध विश्लेषण में यह आयोजन जिन सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना में पीछे रह जाता है। इनकी चर्चा भी आवश्यक है जिनमें साधु सन्तों के अखाड़ों को आमजन की तुलना में धार्मिक आधार पर विशेष अधिकार प्राप्त है। स्नान पर्वों पर उनके विशेषाधिकार आम स्नानार्थी को कहीं पीछे अवश्य छोड़ देता है। और प्रशासनिक रूप से अति विशिष्ट व्यक्तियों के लिये विशेष व्यवस्थाओं से जुड़ा एक पक्ष भी है जो भारतीय समाज के समतावादी लोकतांत्रिक आदर्श को प्राप्त करने में कहीं न कहीं पीछे रह जाता है।

लगभग एक माह से ज्यादा समय के कुम्भ आयोजन में मीडिया कर्मी एवं सोशल मीडिया इन्फ्लूएंसर अपनी टी0आर0पी0 के चक्कर में अखाड़ों और अति विशिष्ट व्यक्तियों पर अपने को केन्द्रित कर देने से महाकुम्भ के इस विशुद्ध धार्मिक व सांस्कृतिक आयोजन में कहीं न कहीं आर्थिक पक्ष बलवती हो जाता है। आने वाले समय में प्रशासन एवं समाज के लोगों को इस पक्ष पर समाधान की दृष्टि से प्रयास करना आवश्यक होगा तभी हम महाकुम्भ आयोजनों के अन्तनिर्हित सामाजिक सांस्कृतिक आदर्शो को संरक्षित कर सकेंगें।

इस प्रकार महाकुम्भ केवल एक धार्मिक आयोजन नहीं, बल्कि यह भारतीय समाज की समरसता, एकता और सहयोग का अद्भुत एवं अतुल्य उदाहरण है। यह हमें संदेश देता है कि विविधता में एकता संभव है और समाज को आपसी भेदभाव, ऊँच–नीच को भूलकर समतामूलक समाज निर्माण के मार्ग पर आगे बढ़ना चाहिए।

निष्कर्ष : महाकुम्भ मेला संस्कृतियों, भाषाओं और परम्पराओं का संगम है। भारत जो अपनी समृद्ध, सांस्कृतिक और धार्मिक विविधता के लिये जाना जाता है ने विविधता में एकता के सिद्धान्त पर लम्बे समय से गर्व किया है। कुम्भ मेला इस सिद्धान्त की पूर्ण अभिव्यक्ति है। इसके मूल में यह आयोजन सभी क्षेत्रों के लोगों के एक साथ आने को दर्शाता है चाहे उनकी जाति, पंथ, क्षेत्र या यहां तक की उनका देश कोई भी हो। महाकुम्भ आयोजन के दौरान कुछ समस्यायें जो दृष्टिगोचर होती है, भीड़ प्रबन्धन, सफाई, स्वास्य सेवायें एवं यातायात व्यवस्था जैसे चुनौतियों के साथ ही अति विशिष्ट व्यक्तियों की सुविधा व्यवस्था का प्रबन्धन भी एक प्रमुख चुनौती के रूप में सामने आती है। जिसका समाधान प्रशासन और समाज के सहयोग से किया जाता है। हाल के वर्षों में कुम्भ आयोजन अपने धार्मिक महत्व से आगे बढ़कर सद्भाव और सह–अस्तित्व का वैश्विक प्रतीक बन गया है। यूनेस्को द्वारा एक अमूर्त सांस्कृतिक विरासत के रूप में मान्यता प्राप्त यह उत्सव अन्तर्राष्ट्रीय आगन्तुकों को आकर्षिक करता है जो इसकी जीवन्तता और आध्यात्मिकता का अनुभव करने आते हैं। यह विविधता के बीच एकता के सम्भावना के बारे में दुनिया को दी जा सकने वाली शक्तिशाली संदेश के रूप में कार्य करता है। कुम्भ मेले का सार व्यक्तिगत मतभेदों को पार करने और सामूहिक भावना को बढ़ावा देने की इसकी क्षमता में निहित है।

संदर्भ :

1. कुमार, सुरेश (2018), कुम्भ मेला : एक सांस्कृतिक अध्ययन,सरस्वती पब्लिकेशन, वाराणसी।
2. तिवारी, रामनाथ (2020) कुम्भ मेला : इतिहास और वर्तमान, शंकर पब्लिकेशन, मुम्बई।
3. यादव, हरि संह (2015), कुम्भ मेला और भारतीय धार्मिक परम्परा, हिन्दी साहित्य प्रतिष्ठान, इलाहाबाद।
4. शर्मा, श्याम सुन्दर (2016), कुम्भ मेला : दर्शन और विज्ञज्ञन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
5. त्रिपाठी रामनरेश, कुम्भ दर्शन 2001, इलाहाबाद सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ0प्र0।
6. हिन्दुस्तान, प्रयागराज, मंगलवार, 14 जनवरी, 2025
7. कुम्भ अध्ययन में प्रमाणपत्र, स्वअध्ययन सामग्री, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
8. Dubey, D.P. Prayag, The Site of Kumbh Mela, Aryan Books International, New Delhi.
9. https://www.jagaran.com/editorial/apnibaat-kumbh-should-become-confluence-of-social-harmory-the-message-should-spread-across-the- country-23833298.html.